।। श्रीमद्राघवो विजयते ।।

श्रीसीताराम विवाहदर्शन

(क्रियन्ह सहित फल चारि)



भावद्रष्टा एवं प्रवचनकार

धर्मचक्रवर्ती, महामहोपाध्याय, आजीवन कुलाधिपति,
श्रीतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य
स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज
(श्रीचित्रकूटधाम)



धर्मचक्रवर्ती, महामहोपाध्याय, आजीवन कुलाधिपति,
श्रीतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरुरामानन्दाचार्य
स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज
(श्रीचित्रकूटधाम)

श्रीसीताराम विवाह दर्शन

(क्रियन्ह सहित फल चारि)

(पूज्य जगद्गुरु जी के षष्ठ षाण्मासिक पयोव्रत अनुष्ठान के विश्रामोपरान्त श्रीतुलसीपीठ, चित्रकूट में समायोजित नव दिवसीय दिव्य दुर्लभ व्याख्यानमाला)



भावद्रष्टा एवं प्रवचनकार
धर्मचक्रवर्ती, आजीवन कुलाधिपति, महामहोपाध्याय
श्रीतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य
स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज
(चित्रकूटधाम)



प्रकाशक :

श्रीतुलसीपीठ सेवान्यास

आमोदवन, पो० जानकीकुण्ड, चित्रकूटधाम
सतना (म०प्र०)

प्रकाशक :
श्रीतुलसीपीठ सेवान्यास
आमोदवन, पो० जानकीकुण्ड
चित्रकूटधाम
सतना (म०प्र०)
दूरभाष : ०७६७०-६५४७८
०५१९८-२४४१३

❑ प्रथम संस्करण : गोस्वामी श्रीतुलसीदास जयन्ती संवत् २०५८
(२६ जुलाई सन् २००१)

पुस्तक प्राप्ति स्थान
(१) **श्रीतुलसीपीठ,** आमोदवन,
पो० जानकीकुण्ड, चित्रकूटधाम
सतना (म०प्र०)
दूरभाष : ०७६७०-६५४७८

(२) **वसिष्ठायनम्,** रानी गली
भोपतवाला, हरिद्वार (उ०प्र०)
दूरभाष : ०१३३-४६०३२३

न्यौछावर : **१००.०० (एक सौ रुपये मात्र)**

मुद्रक :
साहित्य सेवा प्रेस
१५६, छीपी टैंक (रामा होटल कम्पाउण्ड)
मेरठ (उ०प्र०)
(केवल मुद्रण कार्य)

दो शब्द

श्रीरामं नवनील नीरदनिभं सीतापतिं भावये।
वन्दे श्री भरतं सुशील निरतं श्रीमाण्डवीवल्लभम्।
सेवे लक्ष्मणउर्मिलापतिमहं श्रीरामसेवाव्रतम्
ध्यायामि श्रुतिकीर्तिवल्लभमथो शत्रुघ्नमैशानुगम्।।

कलिपावनावतार अभिनववाल्मीकि कालजयी गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज ने अपने महामहाकाव्य श्रीरामचरितमानस जैसे समर्थ ग्रन्थ से मानव की सर्वाङ्गीण ग्रन्थियों के उद्ग्रन्थन का जैसा सफल एवं सोपज्ञ प्रस्ताव किया है, इससे वे समस्त मानव जाति के, सांस्कृतिक पुरोधा, सामाजिक नेता, साहित्यिक उद्गाता एवं आध्यात्मिक प्रणेता बन गये हैं। इस तथ्य से सभी प्राच्च प्रतीच्य विपश्चिदपश्चिम ऐक्यमत्येन सहमत हैं। श्रीरामचरितमानस जी की सबसे लोकोत्तर विशेषता यही है कि यहाँ सभी को सब कुछ मिल जाता है। इनके अनुशीलन से जहाँ सांख्यवादी सत्कार्यवाद की सत्क्रिया देखता है, योगी योगयुक्तियों की अमूल्य मोतियाँ लूटता है, वैशेषिक अशेष विशेषों से अपनी निश्शेषता का प्रतिभान करता है, नैयायिक स्वयं की तर्ककर्कशविचारचातुरी का आतुरीपूर्वक तुरीय के चरणों में समर्पण करता है, मीमांसक कर्मवाद के जगड्वाल से हटकर नैष्कर्म्य की दीक्षा प्राप्त करता है तथा वेदान्ती अपनी अनादिकाल से उलझी चिदचिद्ग्रन्थियों को सुलझाकर उस वेदान्तवेद्य परतत्व को अर्थपंचक विधि से अञ्जसा समवगत कर ब्रह्मजिज्ञासा के सैद्धान्तिक समाधान का सोपान प्राप्त कर शाश्वत विश्राम सेवधि की निरवधिकता का ऐकान्तिक आनन्द प्राप्त कर निर्भय हो जाता है। वहीं इस मानस भवन में हुलसीहर्षवर्धन की भारती के सहयोग से भक्त अपने भगवान की आरती उतारकर प्रभु श्रीसीतारामजी के श्रीचरणकमलों में सर्वस्व को वारकर 'पायो परम विश्राम' की संभृति में परमानन्द निर्भृत हो जाता है।

मानस जी के अति गम्भीर रहस्यों के चिन्तन में मेरा चित्त प्रायश: अपने समय के तीन चौथाई भाग को सानुराग भूरिभाग के साथ विनियुक्त करता रहा है। श्रीसीताराम जी की कृपा से १९९९ में सम्पन्न हुए तुलसीपीठ में अपने षष्ठ षाण्मासिक पयोव्रत अनुष्ठान के विश्राम पर श्री तुलसीपीठ चित्रकूट में आयोजित चैत्रनवरात्रीय श्रीसीताराम पाटोत्सव तथा श्रीराघवप्राकट्यमहोत्सव के सुमधुर समारोह की अंगभूत नवदिवसीय व्याख्यानमाला में 'क्रियन्ह सहित फल चारि' मानस १/३२५ दोहा व्याख्येय विषय के रूप में प्रस्तुत किया गया। इसमें हमारी लाडली बहूरानी श्री चित्रकूटविहारिणी भगवती श्रीसीता महारानी जी ने श्रीवैष्णवों पर परम करुणा करके मेरे मुख से जिन सर्वजनमंगलकारी आर्ष वाङ्मय के शास्त्रीय तत्त्वों को कथा के माध्यम से सरल शैली में सहजत: सर्वजनसुलभता की दृष्टि से प्रस्फुरित और प्रस्तुत कराया इन्हें कैसिट तथा पाण्डुलिपि के माध्यम से श्रवण कर मैं स्वयं अत्यन्त सुखद आश्चर्य काअनुभव कर रहा हूँ। और सत्य तो यह है कि इस निबन्धात्मक व्याख्यानमाला पर मैं भी 'नाचहिं निज प्रतिबिम्ब निहारी' की स्थिति में पहुँच चुका हूँ। यहाँ की वास्तविकता तो यह है कि मेरे मुख को निमित्त बनाकर स्वयं भगवती जनकनन्दिनी सीताजी ने ही आप सबको आनन्दित करने के लिए ऐसी गम्भीर कथा कही। **इस प्रकार की कथा मैं कभी नहीं कह सकता, यह बात मैं सत्य की शपथ लेकर कह सकता हूँ।**

इस नवदिवसीय व्याख्यानमाला में श्रीसीतारामोपासना के बहुत से ऐसे अनमोल रत्न पिरोये गये हैं भगवती सीता जी के द्वारा कि जिनके गम्भीर चिन्तन से आप सबके साथ मैं भी बहुत उपकृत हूँगा। इसीलिए मैंने अपनी ही श्रीरामकथा में साधिकार प्राप्त की हुई सात्त्विक दक्षिणा की राशि से ही इस व्याख्यान को पुस्तकाकार देने का एवं मुद्रांकित कराने का निर्णय लिया है। मुझे आशा है कि इस ग्रन्थ का गम्भीरता से अनुशीलन कर असंख्य बहन भाई सद्गृहस्थ श्रीवैष्णव, सन्त, विरक्त, अनुरक्त महानुभाव श्रीसीतारामजी की भक्तिसुधा से सम्पोषित होंगे।

दाहिने हाथ की विकलांग विडम्बना से जूझती हुई भी परमादरणीया डा० वन्दना श्रीवास्तव माता जी ने मेरी सम्पूर्ण नवदिवसीय व्याख्यानमाला को कैसिट से बिना किसी संशोधन के स्वाभाविक आनुपूर्वी के सहित लिपिबद्ध किया एतदर्थ सभी श्रीसीताराम भक्तों के साथ मैं उन्मुक्त भाव से उन्हें कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। प्रूफ संशोधन के लिए आयुष्मान् डॉ० सुरेन्द्र शर्मा सुशील तथा पं० क्षेमचन्द्र शर्मा शास्त्री तथा प्रकाशन की जागरूकता के लिए आयुष्मान् प्रभात गौतम को मंगलानुशंसन ज्ञापित करता हूँ।

इतिमङ्गलमाशास्ते

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य

स्वामी रामभद्राचार्य

(चित्रकूटधाम)

।। श्रीमद्राघवो विजयतेतराम् ।।

अथ प्रथम वाक् पुष्पाञ्जलि

श्री तुलसीपीठ आमोदवन, चित्रकूट

दिनाङ्क १८.३.९९

मङ्गलाचरण

(१) आगच्छ वायुसूनो त्वं मया श्रीमानसी कथा।
प्रारभ्यते भवश्रोता गृहाणासनमुत्तमम्।।

(२) कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानाम्।
पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपद प्राप्तये प्रस्थितस्य।।
विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानाम्।
बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम।।

(३) नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गम्,
सीतासमारोपितवामभागम्।
पाणौ महासायकचारुचापम्,
नमामि रामं रघुवंशनाथम्।।

(४) मन्दाकिनीवारि निषिक्तपादः
पादैर्जनानां शमयन् विषादम्।
श्रीचित्रकूटाकलितप्रसादः
स कामदः कल्पतरु र्विभाति।।

(५) श्रीसीतानाथसमारम्भां श्रीरामानन्दार्यमध्यमाम्।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे श्रीगुरुपरम्पराम्।।

(६) श्रीरामपादाम्बुजचञ्चरीकं समुल्लसन्मानसपुण्डरीकम्।
प्रेमैकरूपं शुचि निर्व्यलीकं वन्दामहे वानर वारणेन्द्रम्।।

(७) तुलसीं तुलसीपीठं सीतारामौ च लक्ष्मणम्।
मन्दाकिनीं चित्रकूटं कामदं मारुतिंश्रये।।

।।सीताराम जय सीताराम। सीताराम जय सीताराम।।

रामबाम दिसि जानकी लखन दाहिनी ओर।
ध्यान सकल कल्यानमय सुरतरु तुलसी तोर।।
सियावर रामचन्द्र भगवान की जय हो।
पवनसुत हनुमान जी महाराज की जय हो।
श्री चित्रकूट विहारीविहारिणी जू की जय हो।
अञ्जनानन्दवर्धन प्रभु की जय हो।
कामदगिरि हनुमतचरन मन्दाकिनि को तीर।
ये तीनों छूटे नहीं जब लगि रहे शरीर।।

परिपूर्णतम परात्पर परमात्मा, मर्यादापुरुषोत्तम प्रभु, मैथिलीमनोरम, प्रपन्नपारिजात पादपयोज, श्रीमद्परमहंस परिव्राजकाचार्य, योगीन्द्र, मुनीन्द्र, जेगीयमान, दिव्य निरवधिक निरस्तसकलहेय, मुनिजन सन्धेय, निर्मल यशस्क, प्रभु श्री चित्रकूटविहारी सरकार की महती कृपा और श्री चित्रकूट विहारिणी सरकार जू की अनन्य अनुकम्पा तथा सन्तों की स्निग्ध छत्र-छाया में, अब मैं अपने जीवन के सातवें अध्याय का शुभारम्भ आज से कर रहा हूँ।

एक सीमा तक यह सत्य है कि जब तक प्रभु के रस का बोध नहीं हुआ था, तब तक मरना अच्छा लगता था किन्तु अब तो जीना अच्छा लगता है। अब तो लगता है कि सारे संसार की आयु मुझे ही मिल जाए, तो फिर क्या कहने! चकाचक हो जाए। भुषुण्डि जी की भाँति 'तजौं न तन' की भिक्षा माँगता हूँ। चर्चा बहुत अच्छी है। वास्तव में इतनी गहन और अन्तर्मुख साधना के पश्चात् मुझे गुफा से निकलना नहीं चाहिये था पर अदृष्ट सन्तों ने निकाला तो मैं क्या करूँ? हरिहर यश सुनाने और सुनने के लिए है और बहिर्जगत में भी अन्तर्जगत सा आनन्द प्रस्तुत करने के लिए है।

भगवान की कथा यश के लिए नहीं है, भगवान की कथा ख्याति के लिए नहीं है, भगवान की कथा मिथ्या बड़ाई के लिए नहीं है। जैसे गङ्गाजल से गङ्गा की ही पूजा होती है, उसी प्रकार भगवान की कथा भगवान के लिए ही है और किसी के लिए नहीं

स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम।
भूतभावन भूतेश देव देव जगत्पते।।
गीता अ० १०/२ १५

अर्जुन कहते हैं कि आप अपने से ही अपने को जानते हैं। इसका एक बढ़िया अर्थ यह भी है कि वहाँ आत्मना का अर्थ है आत्मीय, और वेत्थ में 'अन्तर्भावितण्यर्थ' हैं, अर्थात् जब आप चाहते हैं तो अपने लोगों से अपने को जनवा लेते हैं। जब तक आपकी कृपा नहीं होती, तब तक आपको कोई नहीं जान सकता। आप रस रूप हैं और रसरूप होने के कारण अपने रस को चखवाने के लिए जीव को उसी प्रकार की स्वादानुभूति देते हैं, तभी वह आपका रस चख पाता है। रसगुल्ला सुन्दर होता है और बहुत रसीला भी होता है परन्तु नीम के कीड़े को रसगुल्ले के स्वाद का ज्ञान नहीं होता। रसगुल्ले के स्वाद का ज्ञान तो वही जीभ कर सकती है, जिसमें रसज्ञता हो। इसलिए भगवान के रस की अनुभूति उसी को होती है जिस पर भगवान कृपा करके उसको रसवत्ता का ज्ञान करवा देते हैं। मीरा जी कहती हैं—

ए री मैं तो प्रेम दिवानी मेरो दरद न जाने कोय।
ना मैं जानूँ पूजा चन्दन, ना पूजा की रीति।।
मैं अनज़ानी प्रेम दिवानी मेरी पागल प्रीति।
बिहारी मैं तो प्रेम दीवानी मेरो दरद न जाने कोय।।

इस प्रेम का अद्‌भुत नशा होता है। यदि आप मानस जी को निष्ठा से पढ़ें तो एक बात कहने में मैं सङ्कोच नहीं करुँगा और सत्य भी यही है कि भगवान भी बहुत ईर्ष्यालु हैं, मैं तो यही मानता हूँ क्योंकि भगवान का स्वभाव बच्चे के स्वभाव के समान होता है। जैसे, बालक यह अपेक्षा करता है कि प्रत्येक व्यक्ति मुझी को प्रेम करे और किसी को न करे। किसी दूसरे को प्रेम किया तो बालक को क्रोध आ जाता है। उसी प्रकार भगवान को यही लगता है कि जो भी प्रेम करे मुझको ही करे, ऐसा मुझे लग रहा है। चाहे जो कारण हो, मैं नहीं जानता। मैं उतना कैसे कहूँ? वो तो परम स्वतन्त्र हैं परन्तु ऐसा लगता है कि वो तो बालक हैं—

तमद्‌भुतं बालकमम्बुजेक्षणं वक्राणि अलकानि यस्य स बालकः।

जिनके अलक वक्र हैं, टेढ़े हैं, वह बालक है। उनका स्वभाव है कि मुझसे ही प्रेम

करो। जो सम्बन्ध तुमने मुझसे जोड़ा है, वह अन्य किसी से मत जोड़ना, नहीं तो वह जूठा हो जायेगा। क्या हम किसी को जूठे पात्र में भोजन करवाते हैं, कभी नहीं। तो जैसे जूठे बर्तन में भोजन नहीं करवाया जा सकता, उसी प्रकार यदि हमारा भाव जूठा हो जायेगा तो भगवान उस रस को नहीं चखेंगे। उस रस का अनुभव भगवान कैसे करेंगे? तो भक्ति का पहला पक्ष यह है कि हमने भगवान को जिस भाव से स्वीकारा है, वह भाव कहीं दूसरे स्थान पर न हो जाए। नहीं तो यह नाटक मान लिया जाएगा। उदाहरण के लिए जैसे किसी ने भगवान को बेटा मान लिया, तो बिल्कुल ठीक है, अच्छा है परन्तु भगवान को बेटा मानकर यदि तुमने संसार को बेटा मान लिया, तो निश्चित ही वह सम्बन्ध नाटक माना जाएगा। पाँचों सम्बन्धों में तो पूरे सम्बन्ध भगवान से नहीं जोड़े जा सकते और जीव का सामर्थ्य भी नहीं है कि वह पूरे सम्बन्ध भगवान से जोड़े। पाँचों में से कोई एक ही सम्बन्ध भगवान से जोड़ ले, जो भी मानना हो मान ले। एक बहुत अच्छी बात कहूँ, वह यह है कि भगवान को पाने के लिए कोई लौकिक सम्बन्ध उनसे जोड़ना चाहिए। यह ध्यान रखना पड़ेगा कि जिन सम्बन्धों में हम जीने के अभ्यासी हो गए हैं, उनमें से कोई न कोई सम्बन्ध जोड़ना चाहिए।

ज्ञान और भक्ति में एक बहुत बढ़िया अन्तर है कि ज्ञानी भगवान के पास जाता है परन्तु भक्त, भगवान के पास जाता नहीं प्रत्युत भक्त, भगवान को अपने पास बुलाता है। नारद जी, भगवान के पास जाते हैं—

क्षीरसिन्धु गवने मुनिनाथा। जहँ बस श्रीनिवास श्रुतिमाथा।।

परन्तु चित्रकूट के मुनि भगवान के पास जाते नहीं। वहाँ तो दण्डकवन में प्रभु स्वयं आ जाते हैं—

सकल मुनिन्ह के आश्रमहिं जाय जाय सुख दीन्ह।।

ज्ञान और भक्ति में एक यही मौलिक अन्तर है। जब भक्त पुकारता है कि—

आओ नन्दलाल तरस रहे नयना
तरस रहे नयना बरस रहे नयना.
मदनगोपाल ललच रहे नयना
आओ नन्दलाल .....

तब भगवान स्वयं आ जाते हैं। जब भक्त भगवान को बुलाता है, तब वो क्या करें?

और तब उन्हें रोक भी कौन सकता है? एक बार लोगों ने प्रभु से बहुत अच्छा प्रश्न किया कि प्रभो! पुष्पक विमान पहले कुबेर का था, फिर रावण का। देवताओं के भिन्न-भिन्न विमान हैं, आपके पास भी कोई विमान है क्या?

प्रभु ने कहा—हाँ, बहुत बढ़िया विमान है।

लोगों ने पूछा कि आपके पास कौन सा विमान है?

तब भगवान ने कहा कि मेरे विमान के सम्बन्ध में सनत्कुमार आपको बताएंगे। सनत्कुमार ने कहा—

सकलगुणनिधानं योगिभिः स्तूयमानम्।
भुजविजितसमानं राक्षसेन्द्रादिमानम्।
महितवृषभयानं सीतया शोभमानम्।
स्मर हृदय विमानं ब्रह्म रामाभिधानम्।।

यहाँ '**स्मरहृदयविमानं**' में बहुब्रीहि है। हृदय विमाने नहीं है। व्याकरण का ज्ञान न होने के कारण लोग लीप डालते हैं। 'हृदयमेव विमानं यस्य' भक्तों का हृदय ही विमान है जिनका। इस प्रकार सनत्कुमार जी ने कहा कि भक्तों का हृदय ही भगवान् का विमान है।

सती जी के त्याग के पश्चात् भगवान शङ्कर को उत्कट वैराग्य हो गया—

कतहुँ मुनिन्ह उपदेसहिं ज्ञाना। कतहुँ रामगुन करहिं बखाना।।

शिव जी को पूर्ण वैराग्य हो गया—

चिदानन्द सुखधाम सिव विगत मोह मद काम।
बिचरहिं महि धरि हृदय हरि सकल लोक अभिराम।।

शिव जी का पूर्ण वैराग्य देखकर, उनके नियम व प्रेम से प्रभावित होकर भगवान राघवेन्द्र जी प्रकट हुए और प्रभु ने शिव जी से कहा कि मैं आपसे कुछ मागूँ?

शिवजी ने कहा—सरकार, आप मुझसे माँगेंगे?

राघवेन्द्र जी ने कहा—हाँ आज मेरा मन है। आपका बड़ा विरुद सुना है कि आप बड़े दानी हैं। 'दानी कोउ सङ्कर सम नाहीं' इतना बड़ा दानी और कोई हो ही नहीं सकता। अरे—

स्वयं महेशः श्वसुरो नगेशः,
सखाधनेशस्तनयो गणेशः।
तथापि भिक्षाटनमेव शम्भो,
र्बलीयसी केवलमीश्वरेच्छा।।

इतना बड़ा दानी कौन होगा, जिसने सबको देते देते, अपने लिए कुछ भी नहीं रखा और स्वयं श्मशान में रहने लगे। ऐसे महादानी, प्रभु श्री शङ्कर जी ने कहा-"सरकार आपका मन ही है तो माँग लीजिये। देने लायक होगा तो दूँगा।"

राघवेन्द्र जी ने कहा—"देना तो पड़ेगा ही।"

शिवजी ने कहा—"क्या माँगते हैं?"

राघवेन्द्र जी ने कहा—"आप पार्वती जी के साथ विवाह कर लीजिये। यही मैं आपसे माँग रहा हूँ।"

अब बिनती मम सुनहु सिव जो मो पर निज नेहु।
जाय बिबावहु सैलजहि यह मोहि माँगे देहु।।

शिव जी काँप गए! हे राघव, यह आप क्या कह रहे हैं?

राघव ने कहा कि ठीक कह रहा हूँ। मेरा नाम आप जानते हैं कि नहीं जानते?

'स्वभृत्य संसारतरोः कुठारम्।'

देवहूति जी ने, बिन्दु सरोवर के निकट एकान्त में विराजमान जब कपिल जी को निहारा तो उस सुन्दर झाँकी को देखकर कहा—

"तं त्वागताहं शरणं शरण्यम्"

आज मैं शरण्य की शरण में आई हूँ।

पूछा कि कौन सा शरण्य?

तो देवहूति जी ने उत्तर दिया कि—**'स्वभृत्य संसारतरोः कुठारम्'**, अपने भृत्य के संसार वृक्ष को काटने के लिए आप कुल्हाड़ी हैं अर्थात् यह संसार ऐसा है जिसको ज्ञानी नहीं काट सकता। झूठे ही चिल्लाता है ज्ञानी। संसार-वृक्ष को हम तो नहीं काट सकते। भक्त जब प्रभु का हो जाता है, तब प्रभु ही कृपा करके, अपने भक्त के संसार वृक्ष को काटकर फेंक देते हैं। देखिये, एक सीधी सी बात है। ये लोग झूठ बोलते हैं। संसार तन

में कभी नहीं रहता, तन संसार में रहता है। शरीर तो संसार में रहता है पर संसार कहाँ रहता है? मुझे तो लगता है कि संसार मन में रहता है। तो जब संसार मन में रहता है तो इसका समापन कैसे हो? इसका एक ही उपाय है कि राघवेन्द्र सरकार को अपने मन में बसा लो, संसार अपने आप चला जाएगा। सीधी सी बात है कोई शास्त्रार्थ की आवश्यकता नहीं। हमारे मन में जब साँवले सरकार, राघवेन्द्र सरकार या माधवेन्द्र सरकार आ जाएँ और हमारे मन में या तो परम विनीता, परम पुनीता सीमन्तिनी, शिरोमणि, नीलाम्बरपरिधानाविहित रामचन्द्रचारुचरित्रगाना, श्रीरामचन्द्रमुखचन्द्रचकोरी श्री मिथिलेशकिशोरी जी के नूपुर की झङ्कार हो जाए अथवा विगतबाधा, समनुगतानुराधा, राजराजेश्वरी वृषभानुनन्दिनी श्रीकृष्ण हृदय-चन्दन-चन्दिनी राधा रानी की पायल की झङ्कार आ जाए, तब संसार चला जाएगा। बिना कृपा के संसार बिल्कुल नहीं जा सकता। झूठ कहते हैं लोग क्योंकि संसार मन में रहता है। जङ्गल में दो शेर नहीं रहा करते। मन भी तो नालायक वन ही है, **'बसहु निरन्तर जन मन कानन'**, इसमें एक ही उपाय है कि जो इस मन-वन में संसाररूपी वन-बिलार रह रहा है, उसको हटाकर यदि प्रभु रूपी सिंह विराजमान हो जाएँ तो अपने आप संसार चला जाएगा। इसलिए संसार को नष्ट करने के लिए भगवान ही कुठार हैं।

'स्वभृत्यसंसारतरोः कुठारम्।

यह भी लोग झूठ बोलते हैं कि कलियुग आ गया है। कलियुग अब आया है? अरे, कलियुग तो सतत रहता है। कलियुग तो सतयुग में भी था और इस समय भी कृतयुग है। कलियुग में भी त्रेता है और त्रेता में भी कलियुग था। द्वापर में भी कलियुग था और कलियुग में भी द्वापर है।सभी, सभी में हैं। इसका स्वभाव तो पञ्चीकरण की भाँति है। यह तो स्वतन्त्र रूप से दार्शनिक चर्चा का विषय है।

जिस समय हमारे मन में आनन्दकन्द मुकुन्द सततमुनिजन परिपीतचरणारविन्दा-मन्दमकरन्द, सच्चिदानन्द गोविन्द, नन्दनन्दन, ब्रजेन्द्रनन्दन, श्रीराधामुखचन्द्र-निश्चलचकोर, नन्दकिशोर आते हैं, उस समय हमारे मन में द्वापर आ जाता है, तब कलियुग नहीं रहता। जिस समय श्रीचित्रकूटविहारी, सकलमुनि मनोहारी, दण्डकविपिनविहारी, कोदण्डसायकधारी, श्रीरघुनाथ जी हमारे मन में आते हैं, उस समय त्रेता हमारे मन में आ जाता है। इसी प्रकार जब हम किसी देवता का ध्यान या

भजन करते हैं तो कलियुग हमारे मन में नहीं आ सकता। **'कलावन्यगताः प्राणाः'**, हम यह प्रशंसा तो नहीं करते पर आपको आश्वासन देने के लिए बता रहे हैं कि जब हमने षाण्मासिक पयोव्रत किया तो वहाँ कलियुग नहीं आ सका। बहुत आनन्द किया। अरे, जो भजन नहीं करते, वही यह सब कहते हैं। भला, कलियुग को गाली क्यों दी जाए? कितना प्यारा है बेचारा! अन्य युगों में तो लाखों लाखों वर्ष तप करने पर भगवान मिलते थे पर कलियुग में तो श्रीनामदेव जी को मात्र तीन दिनों में ही भगवान मिल गए। कर्माबाई की खिचड़ी खाने में प्रभु ने किसी मन्त्र की अपेक्षा नहीं की। उन्होंने केवल अपनी टूटी-फूटी मारवाड़ी भाषा में एक साधारण लोकगीत का स्थाई ही तो गाया था कि **'जीमो जीमो म्हारा मदन गोपाल कर्माबाई रो खीचड़ लो।'** बस प्रभु ने बालक बनकर कर्माबाई की खिचड़ी खाई। अतः कलियुग तो बहुत अच्छा है।

कलिजुग सम जुग आन नहिं, जो नर कर बिस्वास।
गाइ रामगुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास।।

एक बहुत अच्छी बात बताता हूँ कि रामगुण गाकर व्यक्ति भव तर सकता है, इसमें कोई दो राय नहीं है परन्तु यह बात ध्यान रखनी है कि राम-गुण, राम के लिए ही गाया जाए। यदि भगवान को भगवान के लिए गाया जाए, तब तो भगवान मिलेंगे और यदि भगवान को दूसरों के लिए गाया जाएगा, तो जिसके लिए आप गाएँगे, वह मिल जाएगा। यदि पैसे के लिए भगवान को गाएँगे तो पैसा मिलेगा, यदि ख्याति के लिए भगवान को गाएँगे तो ख्याति मिलेगी, प्रतिष्ठा के लिए गाएँगे तो प्रतिष्ठा मिलेगी और यदि केवल भगवान के लिए भगवान को गाएँगे तो भगवान भी मिलेंगे और कुछ भी मिल जाएगा।

देवहूति जी ने एक बड़ी सुन्दर बात कही, जिसमें बड़ा मर्म छिपा था। देवहूति जी कहती हैं–

अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान्
यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम्।।

भाग० ३/३३/७

टीकाकारों ने कहा कि यहाँ षष्ठी के अर्थ में आर्ष चतुर्थी है। मेरे विचार से चतुर्थी षष्ठी के अर्थ में नहीं है। वह अपने ही अर्थ में है अर्थात् जो भगवान का नाम भगवान

के लिए लेता है, वह धन्य है। गाते तो सभी हैं पर अन्तर केवल इतना है कि मीरा जी केवल गिरिधर गोपाल के लिए गाती थीं और अन्य लोग संसार के मनोरञ्जन के लिए गाते हैं। मीरा जी के नाचने पर गिरिधर गोपाल ताल लगाते थे, क्या अन्य किसी के नाचने पर भगवान ताल लगाते हैं? इसका कारण है कि मीरा जी जगत के लिए नहीं नाचती थीं, वो तो जगदीश के लिए नाचती थीं। जब मीरा जी गाती थीं तो गिरिधर की मुरलिया अपने आप बज उठती थी।—

पग घुँघरू बाँध मीरा नाची रे
लोग कहें मीरा हो गई बावरी, सास कहें कुलनासी रे
पग घुँघरू बाँध मीरा नाची रे।

जब मीरा पग में घुँघरू बाँधकर नाचती थीं तो वो संसार के लिए नहीं नाचती थीं। संसार उन्हें दिखाई ही कहाँ देता था, जो वो संसार के लिए नाचतीं। उन्हें तो कण-कण में गोपाल दिखते हैं, सर्वत्र गोपाल दिखते हैं। उन्हें तो सूर्य की किरणों में गोपाल का पीताम्बर दिखता है, उन्हें चन्द्रमा की किरणों में गोपाल के वक्ष पर लटकती हुई मौक्तिक-माला दिखाती है, उन्हें नभोमण्डल की नीलिमा में गोपाल के नीलसरोरुहदृश्यामलाङ्ग के श्रीविग्रह की झाँकी के दर्शन होते हैं, उन्हें उडुगणों की चमचमाहट में प्रभु के भूषण वसनों की वैचित्री का अनुभव होता है। **जब हमारे साधनों का उपयोग भगवान के लिए होने लगता है, तब निश्चित भगवान हमारे रस के भोक्ता बन जाते हैं और उस समय हम कृतकृत्य हो जाते हैं।**

आपको एक बड़ी सुन्दर बात बता रहा हूँ, इसे आप प्रशंसा मत मानियेगा क्योंकि बात कहने की है और कहने का मन कर रहा है। अभी जब हम अनुष्ठान कर रहे थे तो हमारी बड़ी बहन अर्थात् तुम लोगों की बुआजी से मैंने कहा कि आप तो भोजन किया कीजिये। भोजन में उनकी बड़ी अनियमितता होती थी। मैंने एक दिन उनसे पूछा कि मुकुन्द, क्या बात है? आप भोजन नहीं करतीं! तब उन्होंने जो बात मुझसे कही, वह बहुत सुन्दर थी कि गुरुजी वही भोजन है, जैसे पहले बनाते थे, वैसे ही अब भी बनाते हैं बल्कि पहले तो उपेक्षा से भोजन बनता था और फिर भी कितना स्वाद होता था किन्तु अब भोजन में स्वाद इसलिए नहीं आता क्योंकि इस भोजन को राघव जी नहीं पा रहे हैं।

इस प्रकार जब हमारी चेष्टाओं का अनुमोदन भगवान करने लगते हैं, तभी हम धन्य हो पाते हैं। जब हमारी श्वासों से भगवान को शीतलता का अनुभव होने लगता है,

जब हमारी हिचकियाँ भगवान को हिलानें लग जाएँ, जब हमारा कर-स्पर्श भगवान को सुखदायक लगने लग जाए, जब हमारा स्नान भगवान की मुस्कान का कारण बन जाए, तभी हम धन्य हो पाएँगे। तब तक हमारी धन्यता कभी निश्चित नहीं होगी, जब तक वो भगवान के उपयोग में नहीं आएगी।

एक व्यक्ति ने एक ब्रजबाला से पूछा-अरे पगली, तू इतना बनती-ठनती काहे को है? इतना सजती धजती क्यों है?

तब उस गोपी ने कहा-मैं अपने लिए नहीं सजती हूँ। मैं तो अपने प्रभु के लिए सजती हूँ, जिससे भगवान मेरे शृंगार को देखकर मुस्कुराएँ और प्रसन्न हो जाएँ।

इसलिए, जीवन की वास्तविकता यही है कि हम कोई ऐसी चेष्टा करें, जो हमारे सरकार को अच्छी लग जाए। मीरा जी कहती हैं—

बाला मैं बैरागिन होउँगी।
जेहिं भेषा मेरो साहिब रीझे, सोई भेष धरूँगी।
मैं बैरागिन.....

कितना सुन्दर, कितना मधुर और कितना पावन होता है भगवत्प्रेम और इस भगवत्प्रेम का रस इतना लोकोत्तर है कि उस रस का जिसे अनुभव होता है, वही उस रस का रसास्वादन कर पाता है। उत्तरकाण्ड में जब भरत जी, राघव जी से मिल रहे हैं तो वह मिलन कितना मधुर है! भगवान शङ्कर जी से भगवती पार्वती जी ने कहा कि उस रस का वर्णन कीजिये न! तब शिवजी ने कहा—

बूझत कृपानिधि कुसल भरतहिं बचन बेगि न आवई।
सुनु सिवा सो सुख बचन मन तें भिन्न जान जो पावई।।

अरे, वह सुख तो वचन का विषय नहीं है, मन का भी विषय नहीं है। तो फिर जाने कौन? तब बोले कि 'जो पावई', जिसे मिल जाता है, वही जानता है। इतना मधुर है भगवत्प्रेम का रस। वो तो—

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते।।

गीता ६/२२

इतना अद्भुत सुख है कि उसको पाने के पश्चात् भयङ्कर से भयङ्कर दुःख आने पर

भी भक्त विचलित नहीं होता। मीरा जी बिल्कुल विचलित नहीं हुई थीं क्योंकि उन्हें वह सुख मिल गया था। गिरिधर ने उन्हें अपना लिया था।

एक बार गोस्वामी जी से किसी ने पूछा था कि किसका भजन करना चाहिए? तब गोस्वामी जी ने कहा कि जिसको राम जी अपना बना लें, उसी का भजन करना चाहिये। गोस्वामी जी ने कहा–

सबहिं कहावत राम के, सबहिं राम की आस।
राम कहत जेहिं आपनो, तेहिं भज तुलसीदास।।

राम जी जिसको अपना बना लें, अपना कह दें, उसका भजन करना चाहिये, उसकी सेवा करनी चाहिये। कितनी मधुर बात है।

श्रुति से पूछा कि आप भगवान की पत्नी हैं और पति के सम्बन्ध में जितना अच्छा आप जानेंगी, उतना अच्छा कोई नहीं जान सकता। और लोग तो स्मरण करते हैं। स्मृति भगवान की बेटी है पर श्रुति तो भगवान की पत्नी ही हैं। तो बेटी भी माँ के बताए हुए अर्थ का स्मरण करती है।

स्मर्यते यया सा स्मृतिः।
स्मरणात् स्मृतिः श्रवणात् श्रुतिः।

श्रुति श्रवण करती हैं और स्मृति स्मरण करती हैं। तो जब श्रुति से पूछा गया कि सही-सही बता दीजिये कि भगवान कैसे मिलते हैं? श्रुति ने कहा मैं कभी झूठ नहीं बोलती। सच है कि माँ कभी झूठ नहीं बोलती। पिता तो झूठ बोल भी सकता है। हम तो कह रहे हैं कि भगवान कभी झूठ बोल भी सकते हैं, बोलें, हमें आपत्ति नहीं है क्योंकि हम तो मावड़िया हैं। गुजराती में मातृपक्षी को मावड़िया बोलते हैं। लन्दन के प्रवास में मैंने यही कहा कि बताइये वह कौन सा देश है, जहाँ की भूमि को मातृभूमि कहा जाता है। कौन सा देश है जहाँ के साथ माता शब्द जुड़ा हुआ है? अरे, एक हमारा देश ही तो ऐसा है जहाँ भारत माता का जयघोष किया जाता है। कभी इंग्लैण्ड माता, चीन माता या जापान माता की जय किसी ने बोली है? क्योंकि हम तो मातृपक्षी हैं। हम भगवान को नकार सकते हैं पर श्रुति को नहीं नकार सकते। भगवान से हम कह सकते हैं कि भगवान, हम तभी तक आपको मानेंगे जब तक आप हमारी माँ का आदर करेंगे और यदि भगवान भी हमारी माँ का अपमान करना प्रारम्भ कर देंगे तो हम कहेंगे कि आप

चले ही जाओ। हमें आपकी कोई आवश्यकता नहीं। हम तो कृष्ण को तभी तक मानते हैं, जब तक वो राधा चरणारविन्द के चारण बने रहते हैं। इसलिए भगवान का नाम पद्मावती चरणचारणचक्रवर्ती है। भगवान राम की हमारे मन में तभी तक सत्ता है, जब तक वे सीता मुखचन्द्र के चकोर हैं। यदि वे सीता जी को नकार दें तो हम तो भगवान को नहीं पूछेंगे। हम तो भगवान को तभी तक मानते हैं, जब तक भगवान '**श्रौतपथ**' का अनुगमन करते हैं। भगवान को तभी तक श्रद्धास्पद मानते हैं, जब तक भगवान वेद-मार्ग का अनुगमन करते हैं और जिस दिन भगवान यह कहें कि हम वेदमार्ग का अनुगमन नहीं करेंगे तो हम यह कह देंगे कि ठीक है, और लोग भले ही मानें परन्तु भारतीय तो तुम्हें नहीं मानेंगे।

अतुलित महिमा बेद की तुलसी कीन्ह विचार।
जो निन्दक निन्दित भए विदित बुद्ध अवतार।।

हम तो भगवान को भी सावधान कर देते हैं कि यदि आपने हमारी माँ पर हाथ उठाया तो आपकी कुशल नहीं। इसलिए जब श्रुति से पूछा गया कि सही सही बतलाइये कि भगवान कैसे मिलते हैं? तो श्रुति इतनी प्रसन्न हुईं कि इस मन्त्र को दो बार 'मुण्डक' और 'कठ' में दोहराया। श्रुति ने कहा—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्य
स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्।।

यहाँ आत्मा शब्द परमात्मा परक है। "**आत्मा शरीरे जीवे च जीविते परमात्मनि धृतौ चैव मनीषायां प्रयत्ने मानसे तथा।**"

भगवत्पाद शङ्कराचार्य ने पहले तो थोड़ा सा गड़बड़ किया 'कठ' में पर 'मुण्डक' में आते आते कलम फिसल गई उनकी और उन्होंने भी हमारी ही व्याख्या की। हमने कहा वाह! आ गए हमारे ही मत पर और '**अनन्याश्चिन्तयन्तो माम्**' पर तो वास्तव में बाबा का अद्वैतवाद धूल में मिल गया। शङ्कराचार्य का '**गीताभाष्य**' साक्षी है। अनन्याश्चिन्तयन्तोमाम् पर इतनी सुन्दर व्याख्या लिखी कि ऐसी व्याख्या तो वैष्णव भी नहीं कर सकता। अरे, कितना भी करो भक्ति रस एक ऐसा रस है कि पत्थर को भी

गला ही डालता है। इसी भक्ति रस ने शङ्कराचार्य के हृदय-पत्थर को गला दिया और शङ्कराचार्य झूम कर कह उठे—

भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते।

और अन्त में कहा—**'सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वं सामुद्रो हि तरङ्गः क्वचित् समुद्रो न तारङ्गः।'** अर्थात् हे नाथ, भेद का सर्वथा अभाव होने पर भी इतना तो शाश्वत सत्य है कि मैं आपका अंश हूँ, आप मेरे अंश नहीं हैं। मैं आपसे उत्पन्न हुआ हूँ, आप मुझसे नहीं उत्पन्न हुए हैं क्योंकि तरंग समुद्र से उत्पन्न होता है, तरंग से समुद्र कहीं भी उत्पन्न नहीं होता।

झूम गए शङ्कराचार्य।

तो, जब श्रुति से कहा कि सही सही बताओ कि भगवान कैसे मिलते हैं? तब श्रुति ने कहा—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो

वो प्रवचन से नहीं मिलते। प्रवचनम् का अर्थ होता है अध्यापनम् इसीलिए अध्यापक को प्रवक्ता कहते हैं। प्रवचन से प्रवक्ता शब्द बना है। भगवान प्रवचन से नहीं मिलते! तो फिर मेधा से मिलते हैं क्या? **'न मेधया'** मेधा से भी नहीं मिलते! तो क्या बहुत अधिक श्रवण करने से मिलते हैं? तो कहते हैं—**'न बहुना श्रुतेन'**, बहुत अधिक सुनने से भी नहीं मिलते! तब कहा कि मिलते कैसे हैं? यह बताओ तब श्रुति ने कहा—**''यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः।''**

यहाँ तेन में कर्ता में तृतीया नहीं है, करण में तृतीया है। **'यमेवैष वृणुते'** अर्थात् जिसको भगवान अपना बना लेते हैं 'तेन लभ्यः' अर्थात् उस सन्त की कृपा से भगवान मिलते हैं। जब तक महापुरुषों की कृपा नहीं होती, तब तक भगवान नहीं मिलते। सारा ज्ञान, जप तप सब धरा रह जाता है। भगवान तो सन्तों की कृपा से ही मिलते हैं।

सन्तन के संग लाग रे, तेरी बिगड़ी बनेगी
बिगड़ी बनेगी तेरी सबरी बनेगी। सन्तन....

गणिका की बन गई अजामिल की बन गई
केवट को खुल गयो भाग रे, तेरी बिगड़ी बनेगी। सन्तन....

शबरी की बन गई जटायू की बन गई
हनुमत को खुल गयो भाग रे, तेरी बिगड़ी बनेगी। सन्तन....

गोपिन की बन गई सुदामा की बन गई
कुन्ती को खुल गयो भाग रे तेरी बिगड़ी बनेगी। सन्तन....

कर्मा की बन गई और मीरा की बन गई
रत्ना को खुल गयो भाग रे, तेरी बिगड़ी बनेगी। सन्तन....

तुलसी की बन गई, कबीरा की बन गइ
'गिरिधर' को खुल गयो भाग रे, तेरी बिगड़ी बनेगी। सन्तन....

सन्त कौन होता है? सन्त तो देश, वेष, परिवेश, इन तीनों से ऊपर होता है। कोई आवश्यक नहीं है कि वेष धारण करने पर उसे भगवान का प्रेम मिल ही जाए। सन्त तो उसे ही कहते हैं जो देश, वेश, परिवेश और आवेश से ऊपर हो जाए। हाँ सन्त सुवेश में भी हो सकता है और कुवेश में भी हो सकता है!

कियहु कुबेस साधु सनमानू। जिमि जग जामवन्त हनुमानू।

सन्त का लक्षण तो बहुत स्पष्ट है। कुछ बताने की आवश्यकता नहीं। केवल इतना देख लो कि इसके मन से सुगन्ध आ रही है या दुर्गन्ध आ रही है। कुछ परीक्षण करने का प्रयास तुम्हें नहीं करना है। यह नहीं देखना कि इसके पास कितने आश्रम हैं कितने चेला-चाँटी हैं? कितने मोटर कार और बँगले हैं? केवल इतना ही देखना चाहिए कि उसके पास बैठने पर, उस व्यक्ति के मन से राम-प्रेम या कृष्ण-प्रेम की सुगन्ध आ रही है या काम की दुर्गन्ध आ रही है। यदि काम की दुर्गन्ध आ रही है तो वह महन्त होकर भी सन्त नहीं हो सकता और यदि राम-प्रेम की सुगन्ध आ रही है तो वह गृहस्थ होकर भी करोड़ों-करोड़ों महन्तों से भी श्रेष्ठ हो सकता है।

श्री सदन जी क्या थे? कौन से महन्त बने थे? जगद्गुरु थे क्या? नहीं, इनमें से कुछ भी नहीं थे वो। अपने कुलाचार के अनुसार तो वो केवल मांस बेचते थे। एक सन्त ने उन्हें एक शालग्राम की बटिया दे दी थी। बटखरे के लिए उनके पास कुछ नहीं था। अत: वह शालग्राम की बटिया को बटखरा बनाकर मांस बेचते। एक दिन एक सन्त ने उनके पास जाकर कहा कि, सदन, ये तुम गलत कर रहे हो। शालग्राम भगवान को हमें दे दो। हम इनकी पूजा करेंगे। तुम तो इनसे मांस बेचते हो! उन सन्त के बार-बार आग्रह

करने पर सदन ने शालग्राम भगवान उन्हें दे दिये परन्तु रात भर रोते रहे। इधर रात में ही शालग्राम ने उन सन्त का गला दबाया और कहा कि अरे, नालायक! सदन के बिना मेरा मन नहीं लग रहा है। सदन अपने धर्म के अनुसार मुझे बटखरा बनाकर तौलता है, मुझे बहुत अच्छा लगता है। जब वह मांस तौल लेता है तो अपने प्रेम के आँसुओं से मुझे नहलाकर ठण्डा कर देता है और मैं पवित्र हो जाता हूँ। जब मैं सदन के आँसुओं से नहाता हूँ तो मुझे करोड़ों करोड़ों यमुना जल की शीतलता का अनुभव होता है। सदन की आँखों से बहते आँसुओं की पवित्रता, करोड़ों-करोड़ों गङ्गाओं के जल को भी पीछे छोड़ देती है।

भगवान तो भगवान हैं। भगवान बाहरी सुगन्ध दुर्गन्ध पर दृष्टि नहीं डालते। इसकी अपेक्षा किसके मन से वासना की दुर्गन्ध आ रही है तथा किसके मन से उपासना की सुगन्ध आ रही है, यह देखते हैं। भगवान बहुत प्यारे हैं। बहुत सुन्दर हैं।

रहति न प्रभु चित चूक किये की। सुरति करत सय बार हिये की।।

देखिये, जो जहाँ रहता है, वहाँ की शुद्धता का ज्ञान उसको रहता है। जीव बाहर रहता है, जीव भवन में रहता है, अतः वह सोचता है कि हमारा घर सुन्दर लगे। हमारा घर स्वच्छ हो, अतः वह घर की स्वच्छता का ध्यान रखता है अर्थात् बाहर की शुद्धता पर ध्यान देता है। भगवान तो मूल रूप से भीतर रहते हैं, मन में रहते हैं अतः भगवान को मन की शुद्धता चाहिए, तन की नहीं। तन एक समय मैला भी रहे तो कोई आपत्ति नहीं परन्तु मन शुद्ध होना चाहिए। अरे! जटायु कितना दुर्गन्धपूर्ण, सड़ा माँस खाने वाला **'गीध अधम खग आमिष भोगी'**, तीन-तीन, चार-चार दिन का सड़ा मांस खाने वाला जिसको मक्खियाँ भी नहीं खा सकतीं।, उस पर भी प्रभु इतना प्रेम करते हैं कि उनके मरने के बाद प्रभु कहते हैं कि लक्ष्मण! पता लगाकर ऐसा स्थान बताओ जहाँ किसी का दाह संस्कार न हुआ हो। जहाँ कोई न जलाया गया हो, वहीं जटायु का दाह संस्कार होगा। लक्ष्मण तो शेष नारायण ठहरे। उन्होंने कहा—सारा संसार तो मेरे सिर पर है सरकार! एक इञ्च भी भूमि ऐसी नहीं है, जहाँ किसी का दाह-संस्कार न हुआ हो। तब भगवान ने कहा कि लो, मेरे हाथ पर ही जटायु की चिता लगाओ। यदि कोई ऐसा स्थान नहीं है तो मेरे हाथ पर ही पिताजी का दाह-संस्कार होगा। अतः यहाँ तुलसीदास जी ने एक श्लेषात्मक वाक्य लिखा है—

तिन्हकी क्रिया जथोचित निज कर कीन्हीं राम।

यहाँ 'निज कर कीन्हीं राम' में श्लेष अलङ्कार है। प्रभु ने उनका दाह-संस्कार अपने हाथ से किया और अपने हाथ पर किया। इतना बड़ा भक्त वत्सल कौन होगा और ऐसा भक्त वात्सल्य किसका होगा?

एक बार हमसे किसी ने पूछा, कि आप अनुष्ठान करने क्यों गए? आपको कुछ चाहिए था क्या?

हमने कहा कि अनुष्ठान करने हम अपने मन से गए, आपको काहे को सरदर्द होता है? और मुझे कुछ नहीं चाहिए संसार में। मैं पूर्ण सन्तुष्ट था अपनी उपलब्धियों से। विद्या भी काम भर की है, दाल रोटी मिल जाती हैं पद भी था, जिसके लिए लोग तरसते हैं। नाना प्रकार की उपाधियाँ भी मुझे हस्तगत हैं। सब कुछ ठीक-ठाक था पर अनुष्ठान में जाना तो मेरा अपना आनन्द था। अपना एक रस था। जैसे भूख लगने पर व्यक्ति किसी की प्रतीक्षा नहीं करता, उसी प्रकार रसिक लोग अपने भजन में विलम्ब होने पर तलफलाने लगते हैं और यही होना भी चाहिए। जब रोटी के लिए जीभ तलफती है तो भजन के लिए मन क्यों नहीं तलफता? अन्य प्रकार के नशे की भाँति भगवत्प्रेम भी एक नशा है। यदि एक बार पी लिया तो बस चाहिए ही चाहिए। फिर चाहे जो कुछ हो जाए, उसके बिना फिर वह जी नहीं सकता।

अब आप सोचिये कि भगवान कितने प्यारे हैं। सदन के यहाँ वे मांस तौलने के लिए बटखरा बनना स्वीकार कर सकते हैं पर उन सन्त के यहाँ चाँदी या सोने के सम्पुट में रहना उन्होंने नहीं स्वीकारा।

भगवत्प्रेम का रस ऐसा ही है, जिससे मन कभी तृप्त नहीं होता। इसीलिए तो पृथु जी ने कहा कि भगवन्, यदि आप मुझको कुछ देना ही चाहते हैं तो, ये दो कान हमको भगवान की कथा श्रवण करने में कम पड़ते हैं।

भगवान ने कहा—अच्छा! यदि दो कान कम पड़ते हैं तो बताओ कितने कान दे दूँ?

पृथु जी ने कहा—प्रभो, वैसे तो दो कान ही ठीक हैं परन्तु जब मैं आपकी कथा सुनने लगा करूँ तो आप मुझे दस हजार कान दे दिया करिये। पृथु जी ने कहा—

"न कामये नाथ तदप्यहं क्वचि-
न्न यत्र युष्मच्चरणाम्बुजासवः।
महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युतो
विधत्स्व कर्णायुतमेष मे वरः।।"

हे सरकार, 'कर्णायुतं विधत्स्व' अर्थात् दस हजार कान दे दीजिये, 'एष मे वर:'

भगवान ने कहा—''वैकुण्ठ ले लो, कान लेकर क्या करोगे?''

राजा पृथु ने कहा—''हमें आपका वैकुण्ठ नहीं चाहिए। जहाँ 'महत्तमान्त-र्हृदयान्मुखच्युतः युष्मच्चरणाम्बुजासवः न तद् वैकुण्ठमपि क्वचिद् न कामये', वैकुण्ठ मैं नहीं लूँगा। वह वैकुण्ठ आप किसी और को दे दीजिये।

भगवान ने पूछा क्यों? तब पृथु जी ने बड़ा सुन्दर उत्तर दिया कि जहाँ महात्माओं के मुख-चन्द्र से निर्गलित आपके चरणारविन्द का प्रेम न मिले, तो वह वैकुण्ठ हमें नहीं चाहिए, जो सन्त निरपेक्ष हो। हमें तो शीत प्रसादी चाहिए।

कौन सी शीत प्रसादी? खीर पूड़ी या रोटी दाल?

तब पृथु जी ने कहा, नहीं। वह शीत प्रसादी नहीं चाहिए। हमें तो वह प्रेम चाहिए, जो सन्त जुठार कर देते हैं।

सन्त प्रेम कैसे जुठार कर देंगे? कैसे शीत प्रसादी करके देंगे?

तब पृथु जी ने कहा कि सन्तों के हृदय में उमड़ता हुआ प्रेम जब भगवान की कथा कहते-कहते वाक्यों से निर्झरित हो और उसको मैं अपने कान के दोने से पियूँ, वह प्रेम हमको चाहिये। सन्तों के मुख से निकली हुई कथा रूप शीत प्रसादी को मैं दस हजार अपने कान रूप दोने से पिया करूँ।

राम नाम लड्डू गोपाल नाम घी।
सोने के कटोरे में घोर-घोर पी।।

वह भगवत्प्रेम जिसके लिए कह दिया गया—

न परिलसन्ति केचिदपवर्गमपीष्वरते।
चरण सरोज हंस कुल सङ्ग विसृष्टगृहाः।।

इसलिए श्रुति ने कहा कि मैं सही सही बता रही हूँ 'यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा तनूँ स्वाम्' इसकी व्याख्या हमने अपने भाष्य में लिखी है।

यहाँ करण में तृतीया है। सन्त करण बनता है। भगवान को पाने में सन्त करण है। करण किसे कहते हैं?

'साधकतमं करणं क्रियासिद्धौ प्रकृष्टोपकारकं कारकं करणम्।'

प्रकृष्ट सन्त बहुत बड़ा उपकार करते हैं। सन्त कौन सा उपकार करते हैं? क्या सन्त किसी को बँगला, गाड़ी देते हैं? या सन्त किसी को बेटा या बेटी देते हैं? यह सब बिल्कुल गलत बात है। ऐसी भूल कभी करनी भी नहीं चाहिये। सन्त से संसार माँगने की भूल वैसे ही है जैसे अमृत से मल साफ करने की भूल होती है। भगवत्प्रेमी सन्त से कभी संसार नहीं माँगना चाहिए। सन्त से तो वह माँगो जो चकाचक है। सन्त संसार नहीं दे सकता। और एक बात बताऊँ कि जिसको देने में सन्त दु:खी होता है, उससे तो सर्वनाश हो जाता है। कभी सन्त से वो बात न माँगो जिससे वो दु:खी हो रहा है। सन्त, जिसे हँसते-हँसते दे सके, वही माँगो। सन्त के पास जो होगा, वही तो वो देगा। सन्त एक वस्तु दे सकता है जो उसके पास सदा रहती है। अरे, जो वस्तु हमारे पास नहीं है, उसे हम किसी से माँगकर ही तो देंगे और जब हम दूसरे से माँगेंगे तो हमको कष्ट नहीं होगा क्या? सन्त के पास तो भगवान होते हैं, भगवत्प्रेम होता है। वही माँग लो तो चकाचक हो जाए। इसलिए 'यमेवैष वृणुते' जिसका भगवान वरण कर लेते हैं, उसी की कृपा से प्राप्त हो जाते हैं। और लोगों का तो भगवान भिन्न भिन्न माध्यम से वरण करते हैं, साक्षात् वरण नहीं करते। किसी का मित्र रूप में वरण करते हैं, किसी का पुत्र रूप में वरण करते हैं, परन्तु 'वरण' शब्द जहाँ मुख्य है, रूढ़ नहीं है, जहाँ मुख्य रूढ़ है, गौण नहीं है, रूढ़तया जहाँ सार्वजनीन प्रसिद्ध है, वह है दुलहिन। तो भगवान ने किसको वरण किया है। अरे—

महि पाताल नाक जस ब्यापा। राम बरी सिय भञ्जेहु चापा।।

श्रीराम जी ने भगवती जनकनन्दिनी जी को वरण किया है-राम बरी और कैसे वरण किया है तो कहते हैं—भञ्जेहु चापा। सीता जी ने कहा कि आप मेरा वरण कीजिये। **यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः** अर्थात् तेन महात्मना जैसे यदि सीता जी कृपा कर दें तो साक्षात् भगवान मिल जाएँगे। जब तक बहूरानी जी (सीता जी) की कृपा नहीं होगी, तब तक राघव जी मिल ही नहीं सकते। इसी प्रकार जब तक राधा रानी जी की कृपा नहीं होगी, तब तक भगवान श्री कृष्णचन्द्र भी नहीं मिल सकते।

अनाराध्य राधा पदाम्भोज युग्मम्।
अनासेव्य वृन्दावनीं तद् पदां काम्।।
असम्भाष्य तद्भाव गम्भीर चित्तान्।
कथं श्यामसिन्धो रसस्यावगाहः।।

जब तक राधा रानी जी के चरण कमल का आराधन न हो और जब तक राधा रानी जी के चरण कमल से सेवित वृन्दावन का सेवन न हो और जब तक उनके प्रेम के दीवानों से चर्चा न हो, तब तक कृष्णचन्द्र के रस का आराधन क्या कोई कर सकता है? बिल्कुल गलत बात है। उसी प्रकार जब तक सीता जी के चरणारविन्द का आराधन न हो, तब तक राम जी मिल ही नहीं सकते।

हम दूर देश के नहीं, चित्रकूट के हैं। हमारी कथा चित्रकूट की है और चित्रकूट के लिए है। देखिये, भगवान राम की चार लीलाएँ हैं और हमनें चार विभाग किये हैं–

१. संस्कार लीला

२. शृङ्गार लीला

३. विहार लीला

४. संहार लीला

भगवान श्रीरामचन्द्र जी की संस्कार लीला **अयोध्या में** हुई। सभी संस्कार वहाँ भगवान के हुए–जन्म, नामकरण आदि।

मिथिला में भगवान की **शृङ्गार लीला** हुई। झुमा दिया बड़े बड़े वेदान्तियों को भगवान ने और नचा डाला मिथिला–वासियों को। **'कीन्हे स्वबस नगर नर नारी।'** विनोद में हम कहा करते हैं कि मिथिला में जो नर थे, पुरुष प्रधान थे, ज्ञान प्रधान थे, भगवान ने उनको नारी बना डाला। **'भयहु बिदेह बिदेह बिसेषी'**, जो विदेह था, वह विदेह हो गया। जो विगत देह था वह विशिष्ट देह हो गया। इस प्रकार मिथिला में भगवान ने शृङ्गार–लीला की।

चित्रकूट में भगवान ने विहार लीला की। चित्रकूट तो भगवान की विहार–स्थली है।

राम कथा मन्दाकिनी चित्रकूट चित चारु।
तुलसी सुभग सनेह बन सिय रघुबीर बिहारु।

तो यहाँ (चित्रकूट में) भगवान विहार करते हैं। विहार कहते किसे हैं? **'विहरणं पादविक्षेपः'**, अर्थात् जहाँ धीरे–धीरे चरणों से चलकर, झूम झूमकर आनन्द लिया जाए। चित्रकूट में तो प्रिया–प्रियतम गलबहियाँ किये हुए विहार करते हैं पर इन हीन दृष्टियों से वे नहीं दिखाई पड़ सकते क्योंकि तुम्हारी आँखें जूठी हो चुकी हैं। तुमने इन

आँखों से संसार देखा है, असभ्य सभ्य चित्र देखे हैं, सिनेमा के हीरो हीरोइन देखे हैं। इनको देखने के लिए तो बन्द आँखें चाहियें और वह भी तब जब महत्कृपा हो जाए। तो—

यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः

जिसको भगवान वरण करते हैं, उसी के सामने **'आत्मानं तनुं विवृणुते'**, अपने शरीर को प्रकट कर देते हैं। सीताजी के सामने अपने को प्रकट कर दिया—

लता भवन तें प्रगट भे तेहि अवसरु दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग बिमल बिधु जलद पटल बिलगाइ।।

तो **तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्।'** भगवान श्री राघवेन्द्र जी ने सीता जी के सम्मुख अपने को प्रगट कर दिया।

ज्ञानी के सामने भगवान निकट होते हैं और भक्त के सामने भगवान प्रकट होते हैं। सुतीक्ष्ण जी में दोनों गुण थे। सुतीक्ष्ण जी पहले प्रेमी थे और फिर ज्ञानी थे। भगवान ने कहा कि तुम्हारे साथ मैं दोनों बातें करूँगा। प्रकट भी होऊँगा और निकट भी आऊँगा।

निर्भर प्रेम मगन मुनि ज्ञानी। कहि न जाए सो दसा भवानी।।

सुतीक्ष्ण जी **'निर्भर प्रेम मगन'** प्रेमी हैं और **'मुनि ज्ञानी'** भी हैं। सूत्र ने यह बताया कि भगवान प्रेमी के यहाँ प्रकट होते हैं और ज्ञानी के निकट होते हैं। तो, अब यहाँ दोनों ही पक्ष देखिये—

अतिसय प्रेम देखि रघुबीरा। प्रगटे हृदय हरन भव भीरा।।

सुतीक्ष्ण जी ज्ञानी भी थे अतः भगवान को उनके निकट भी होना था। अतः

तब रघुनाथ निकट चलि आए। देखि दसा निज जन मन भाए।। तो भगवान—

यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः
तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्।

इसलिये निश्चित है कि राघवेन्द्र जी को पाना है तो हमारी बहूरानी जी की शरण लेनी पड़ेगी। जब तक सीता जी की कृपा नहीं होगी, तब तक भगवान राम मिल नहीं सकते। जब तक राधा रानी के कृपा–कटाक्ष का आनन्द नहीं है, तब तक सम्भव ही नहीं कि कृष्ण चन्द्र मिल जाएँ। ब्रजवासी तो कहते हैं कि **बिना राधा के श्याम आधा।**

शूर्पणखा ने यही तो भूल की कि उसने राम जी को पाने के लिए सीताजी को अपना माध्यम नहीं बनाया यदि उसने सीताजी को माध्यम बना लिया होता तो उसे भगवान राम मिल सकते थे। उसने सोचा कि मैं सीताजी को खा जाऊँगी। उसने सीताजी को पत्नी माना और सौतन का भाव अपने भीतर रखकर आक्रामक रुख अपना लिया। भला, सीताजी को नकार कर कोई भगवान को कैसे पा सकता है? तब भगवान ने कहा, लक्ष्मण! इसके नाक, कान,काट लो! भक्ति के बिना क्या भगवान किसी को मिले हैं?अतएव मेरी व्याख्यानमाला की जो भूमिका है, अब यहाँ आकर उसका व्याख्यान से सम्बन्ध जुड़ रहा है। जब यह निश्चित हो जाता है कि **'यमेवैष वृणुते'** जिसका भगवान वरण करते हैं, उसकी कृपा से जीव को प्राप्त हो सकते हैं। तो, भगवान ने सीताजी को वरण किया है और लगता है कि अब दशरथ जी को पूर्ण प्रभु के प्रभुत्व के साथ-साथ पूर्ण प्रभु की प्राप्ति होगी। मिथिला के मण्डप में आज जो पंक्ति आई कि आज दशरथ जी मुदित हो रहे हैं, प्रसन्न हो रहे हैं। दशरथ जी ने जब सीता जी के साथ राम जी को निहारा, माण्डवी जी के साथ भरत जी को देखा, उर्मिला जी के साथ लखनलाल का अवलोकन किया और श्रुतिकीर्ति जी के सहित श्री शत्रुघ्न जी का दर्शन किया तो महाराज अत्यन्त प्रसन्न हुए और ऐसा लगने लगा मानों आज उनको क्रियाओं के सहित फल मिले हैं। अतः गोस्वामी जी ने यहाँ यह दोहा लिखा-

मुदित अवधपति सकल सुत बधुन्ह समेत निहारि।
जनु पाए महिपाल मनि क्रियन्ह सहित फल चारि।।

कितनी सुन्दर उत्प्रेक्षा है कि ऐसा लगने लगा मानों आज दशरथ जी को क्रियाओं सहित फल मिले। इसका भाव यही है कि कभी-कभी फल मिल जाते हैं पर क्रियाएँ नहीं होतीं तो एक प्रकार का डर बना रहता है। फल बिना क्रिया के भग भी सकता है। यदि क्रिया रहेगी तो फल नहीं भग सकता, बार-बार आता रहेगा, नया होता रहेगा। यदि स्रोत है तो नदी का जल घटेगा नहीं और जब स्रोत समाप्त हो जाएगा, तब क्या होगा?

सजल मूल जिन्ह सरितन्हि नाहीं। बरसि गए पुनि तबहिं सुखाहीं।

गङ्गा जी का जल कभी समाप्त नहीं हो सकता क्योंकि वहाँ स्रोत है। अन्य नदियों का जल तो समाप्त हो सकता है क्योंकि वहाँ स्रोत नहीं है और यदि स्रोत ही नहीं है तो जल समाप्त हो सकता है। क्रियाएँ नहीं रहेंगी तो हो सकता है कि अर्थ चला जाए। अर्थ

हमारे सामने से इसलिए चला जाता है क्योंकि वहाँ क्रिया नहीं। कभी व्यापारी चकाचक रहता है और कभी गड़बड़ हो जाता है तो पूरा का पूरा व्यापार डूब जाता है। कभी व्यक्ति धर्मात्मा होता है और कभी नहीं क्योंकि वहाँ धर्म की क्रिया नहीं है। अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष स्थायी तब रहते हैं, जब उनकी क्रियाएँ उनके साथ हों अर्थात् फल की रक्षा, क्रिया करती है। यदि आप चाहते हैं कि राम जी हमारे सामने रहें तो निश्चित सीता जी को रखना पड़ेगा। यदि सीता जी हमारे पास रहेंगी तो निश्चित राम जी को कोई हमसे दूर नहीं कर सकता। अतएव

मुदित अवधपति सकल सुत बधुन्ह समेत निहारि।
जनु पाए महिपाल मनि क्रियन्ह सहित फल चारि।।

गोस्वामी जी ने बड़ी सुन्दर बात लिखी है कि श्रीराम विवाह को गाना चाहिए—

सिय रघुबीर बिबाहु, जे सप्रेम गावहिं सुनहिं।
तिन्ह कहँ सदा उछाहु, मङ्गलायतन राम जसु।।

राम-विवाह गाने वालों को उत्साह मिलेगा, मङ्गल होगा। यह सब फल तो मिलेगा ही परन्तु केवल गाने, सुनने, हँसने-हँसाने से ही काम बनने वाला नहीं। शिव जी ने कहा इस पर थोड़ा विचार भी करो। अतः गोस्वामी जी ने शिवजी के मुख से जो बात कहलवाई, वह बहुत सुन्दर है। सब लोग श्रीराम जी की बारात में आ रहे हैं। नारद जी ने दशरथ जी की ओर से सबको आमन्त्रण दिया है—

भुवन चारिदस भरा उछाहू। जनकसुता रघुबीर बिबाहू।।

सब देवता, मिथिला के मण्डप में विराजमान हो रहे हैं। वहाँ पाँच देवता मुख्य हैं—ब्रह्मा, विष्णु, महेश, कार्तिकेय और इन्द्र। अन्य देवता तो आनन्द कर रहे थे परन्तु जब ब्रह्मा जी ने जनकपुर देखा, तब ब्रह्मा जी को जिज्ञासा हुई कि मेरी कला का भी यहाँ आदर है या नहीं? क्या मेरी कोई कला यहाँ दिखाई पड़ रही है? पर वहाँ कुछ भी नहीं था—**'रचना सकल अलौकिक नाना'**, ब्रह्मा जी को लगा कि मेरी धरती पर यह दूसरे की कला कहाँ से आ गई? मेरी सृष्टि में ये कैसे कैसे परिदृश्य बदल रहे हैं? ऐसे-ऐसे खम्भे, ऐसी-ऐसी स्थितियाँ, ऐसे-ऐसे भवन, जो हमने बनाए नहीं, कहाँ से बने? और किसने बना दिये—

बिधिहि भयहु आचरज बिसेषी। निज करनी कछु कतहुँ न देखी।।

ब्रह्मा जी के इसी संदर्भ से जुड़ी, आज की कलियुग की बात है कि एक बच्चे ने अपनी मम्मी से कहा कि मम्मी जी, हम आपके विवाह का एलबम देखेंगे। पूरी चित्रावली देखने के पश्चात् जैसे उसका यह कहना कि इसमें मेरा चित्र नहीं है। उसी प्रकार शिव जी ने ब्रह्मा जी से यहाँ कहा कि भगवन्, यही हाल तुम्हारा है कि अपने बाप के विवाह में तुम अपनी कारीगरी देखना चाह रहे हो–

सिव समुझाए देव सब जनि आचरज भुलाहु।
हृदय बिचारहु धीर धरि सिय रघुबीर बिबाहु।।

अरे, इस बात पर विचार करो कि–

जिन्ह कर नाम लेत जग माहीं। सकल अमङ्गल मूल नसाहीं।।
करतल होहिं पदारथ चारी। तेहिं सिय राम कहेहु कामारी।।

'हृदय बिचारहु धीर धरि', धैर्य धारण करके इस बात का हृदय से विचार करो। जब तक हृदय से विचारोगे नहीं, तब तक वासना नहीं जाएगी। केवल इतना कहने से नहीं होगा कि हमारी जीजी सीताजी बहुत सुन्दर हैं। हम तो पूर्ण पक्षधर हैं कि सीताजी बड़ी सुन्दर हैं। यह तो विचार कोटि का विषय है, क्योंकि जब तक हम विचारेंगे नहीं, तब तक हमारा कुविचार जाएगा नहीं और जब तक हमारा कुविचार नहीं जाएगा, तब तक भगवान के प्रेम का प्रचार कैसे होगा? अतः 'हृदय बिचारहु धीर धरि सिय रघुबीर बिबाहु।' यह कोई साधारण नायक नायिका का विवाह तो नहीं है। इसीलिए तो मोदलता जी ने कहा कि–

हिय कोहबर के भवनवा हो दुलहिन दुलहनवा।

और यह कोहबर भी साधारण नहीं है। यह तो हृदय का कोहबर है, जहाँ दुलहिन श्री सीताजी और दुलहा श्रीराम जी विराजमान हो जाएँ तो कितना अच्छा हो!

जिन्ह कर नाम लेत जग माहीं। सकल अमङ्गल मूल नसाहीं।।

ध्यान देना होगा, यह विचारकोटि है। भक्ति और भगवान का ग्रन्थि-बन्धन हो रहा हो और हमारा हृदय मिथिला का मण्डप बन जाए, उसमें ज्ञान का दीपक हो, जिसमें भक्ति की दीपशिखा भगवती महारानी सीताजी, राघवेन्द्र जी के साथ विराजमान हों और हृदय में जब उनका मङ्गलमय ग्रन्थि-बन्धन होगा, तब जड़ चेतन की ग्रन्थि अपने

आप छूट जाएगी। **'जड़ चेतनहिं ग्रन्थि पड़ गई।'** ग्रन्थि तो एक ही रहेगी और ग्रन्थि-बन्धन भी एक ही होगा। या चिदचिदात्मक ग्रन्थि-बन्धन हो या चिदानन्दात्मक ग्रन्थि-बन्धन हो, संसार का जो बन्धन है, वह चिदचिदात्मक ग्रन्थि बन्धन है और श्रीसीताराम जी का अथवा राधेश्याम का जो विवाह-चिन्तन है, वह चिदानन्दात्मक ग्रन्थि-बन्धन है। तो, सीताजी चित् हैं और राम जी आनन्द हैं, राधा जी चित् हैं तो कृष्णचन्द्र जी आनन्द हैं। तो, जब तक हृदय में चिदचिदानन्द का ग्रन्थि-बन्धन नहीं, तब तक हृदय चिदचिदात्मक और सत् रहता है और जब हृदय में चिदानन्दात्मक ग्रन्थिबन्धन हो गया, श्री सीताराम जी के विवाह का चिन्तन हुआ तो चिदानन्द आ गया और हृदय से 'अ' कटकर 'सत्' बचा और सत् को जब चिदानन्द से जोड़ा, तो बन गया सच्चिदानन्द। हृदय तब तक असत् है।

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह।।

गीता १७/२८

अर्थात् हे अर्जुन! नास्तिक बुद्धि से किया हुआ होम, दिया हुआ दान, तपा हुआ तप और इसके अतिरिक्त जो भी कर्म किया गया है, वह असत् ही कहा जाता है। वह न तो परलोक में ही फल देता है और न ही यहाँ। तब तक हृदय असत् है जब तक उसमें भगवत् भजन नहीं है।

उमा कहहुँ मैं अनुभव अपना। सत् हरि भजन जगत सब सपना।।

जब हरि भजन होगा तो भजन में विचार होगा। **'भजनं सेवनम्'**, जब सेवन होगा तो हृदय सत् हो जाएगा। जब हृदय सत् हो गया और श्री सीताराम जी हो गए चित् और आनन्द, तो इन तीनों के मिलने से बन गया सच्चिदानन्द और तब—

जय सच्चिदानन्द जग पावन। अस कहि चलेउ मनोज नसावन।।

इसलिए श्रीसीतारामजी के विवाह की स्थिति का चिन्तन करने के लिए सच्चिदानन्द बनना पड़ता है और जब जीवन में सच्चिदानन्द आ जाता है तो आनन्द होता है। इसलिए कहते हैं कि—

हृदय बिचारहु धीर धरि सिय रघुबीर बिबाहु।।

इस पर विचार करो। बहुत से ऐसे भी बड़े-बड़े लोग होते हैं जो मुख से खूब

प्रशंसा करेंगे और जब उनके स्वार्थ में थोड़ी सी भी कमी आई तो सीता जी तो धरी रह गईं एक ओर, और अपना स्वार्थ आ गया सामने और तब सीता जी, राम जी की भक्ति, राधेश्याम की भक्ति कुछ नहीं; गुरु गोविन्द कुछ नहीं। कहते हैं कि जब शालग्राम जी को भूल गए तो भाटा (बैंगन) भूनने में क्या देर लगती है। यह प्रवृत्ति हमारी तब जायेगी, जब हमारे विचार में भगवान आ जाएँगे। भक्ति-योग तब होता है जब भगवान हमारे विचार में आ जाते हैं और जब हमारा विचार भगवान में जाता है तब ज्ञान होता है। भगवान ही जब हमारे विचार में आ जाते हैं तो भक्ति हो जाती है।

वेदान्त में अद्वैतवादियों के यहाँ भगवान वृत्यारूढ़ होते हैं परन्तु हमारे यहाँ भगवान वृत्यारूढ़ नहीं होते। यह सिद्धान्त अवैदिक एकदेशिक है। हमारे यहाँ तो भगवान वृत्ति में नहीं, प्रवृत्ति में आरुढ़ हो जाते हैं। वो तो—

या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप—
प्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितो - क्षणमार्जनादौ।
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो
धन्या ब्रजस्त्रिय उरुक्रम चित्तयानाः।।

श्रीमद्भा० १०/४४/१५

श्री मथुरा की कुलाङ्गनाएँ कह रही हैं कि जो गौवों के दुहने के समय, धान कूटते समय, दधि मन्थन करते समय, बालकों को उबटन लगाते हुए शिशुओं के झूले झुलाते समय तथा रोते हुए बच्चे को चुप कराते समय, उन्हें नहलाते समय, पोंछते समय, अर्थात् अपनी प्रत्येक प्रवृत्ति में अश्रुपूर्ण कण्ठ होकर, गदगद स्वर में इन्हीं परमात्मा श्रीकृष्ण को गाती रहती हैं तथा जिनके हृदय-विमान में अपने श्रीचरणों की थिरकन के साथ श्री रासविहारी सरकार ही निरन्तर विराजमान रहते हैं, वे प्रेममार्ग की आचार्या श्री ब्रजाङ्गनाएँ धन्य हैं।

गोपियों के दोहन में अर्थात् गोपियाँ गाय दुह रही हैं और भगवान साथ हैं। गोपियों की प्रवृत्ति में भगवान आ गए। भगवान तो गोपियों के हृदय में भी आए और गोपियों के निलय में भी आए। भगवान गोपियों के तन में आए, मन में आए, वचन में भी आए। गोपियों के वसन में भी आए, भूषण में भी आए। अरे! गोपियों के भवन में भी आए भगवान और उन्होंने उनका दही चुराया और गोपियों ने खूब गुलूची लगाकर थुथुर दिया। कितना सुन्दर दृश्य है! क्यों आए भगवान? वहाँ क्या करेगा वेदान्त?

फलव्याप्यत्वमेवास्य शास्त्रकृतभिर्निराकृतम्।

अर्थात् शास्त्रकारों ने ब्रह्म की फल व्याप्यता का निषेध किया है। अद्वैत वेदान्ती बोलता रहा पर गोपियों ने कहा—

परमिमुपदेशमादृयध्वम्
निगमवनेषुनितान्तखेदखिन्नाः।
विचिनुतभवनेषु वल्लवीना
मुपनिषदर्थमुलूखले निबद्धम्।।

अद्वैत वेदान्ती से गोपी बोली कि अरे संन्यासी इस उपदेश का आदर करो। हे निगमवनों में घूमकर थके हुए लोगो! अरे, ब्रह्म तुमको वहाँ नहीं मिलेगा।

वेदान्तियों ने पूछा कि कहाँ मिलेगा?

तब गोपियों ने कहा कि अरे, उलूखले निबद्धम्' यशोदा ने उलूखल में बाँध रखा है। वहीं मिलेगा उपनिषदर्थ तुम्हारा। वहीं मिलेगा तुम्हारा-**'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'**। अरे, श्रुतियों के पास ब्रह्म थोड़े ही मिलता है। पत्नी की गोद में थोड़े ही बैठता है, वो तो माँ की गोद में बैठता है। माँ थुथुरती (मारती) भी है और गुलूची भी लगाती है। माँ ने तो बाँध दिया। अब उनका साहस हो तो छुडाएँ। वो तो इतना ही कह रहे हैं कि—

बाँधो मत मइया कसम कखाय ले
लकुटि कसम मोहे, कमली कसम मइया
मुरली मधुर याकी कसम कराय ले
बाँधो मत.....

कन्हैया के इतना कहने पर भी वह नहीं मानतीं और बाँध देती हैं

सोइ अविछिन्न ब्रह्म जसुमति हठि
बाँध्यो सकत न छोरी।

बलराम जी क्रुद्ध हुए कि अरे मैया। तू मेरे ब्रह्म को बाँध रही है? यह ठीक नहीं कर रही है तू।

मैया ने कहा—मैं तो बाँध रही हूँ, तू क्या कर लेगा? जो तेरो मन होय सो कर ले।

बलराम जी ने कहा कि मैं शेष हूँ।

मैया ने कहा कि सबरे शेष, गणेश, मेरे ही यहाँ आते हैं। फिर बोलीं कि तेरे रमेश को तो मैंने बाँध दिया, अब तुझे चिमटे से पकड़कर आग में डाल दूँगी!

अब, भगवान ने इशारा किया कि भैया, चुप रहो। यहाँ तुम्हारा हल मूसल नहीं चलेगा।

यह तो भगवान की प्रेम परतन्त्रता है। देखो, जीव और ईश्वर दोनों ही परतन्त्र हैं पर दोनों में एक सबसे बड़ा अन्तर यह है कि जीव काम परतन्त्र होता है और परमात्मा प्रेम परतन्त्र होते हैं। परतन्त्रता दोनों की है। नहीं तो, जिनके चिन्तन से चिद्‌चिदात्मक ग्रन्थि छूट जाती है, उन्हीं को आज मिथिलानियों ने बाँध दिया। अठोंगर विधि, मिथिला में होती है। उस विधि से हाथ में मूसल पकड़ाकर धान भी कुटवाया और उसी मूसल का अभ्यास होने के कारण, भगवान ने कहा कि मिथिला में मूसल पकड़ने का बहुत आनन्द रहा। चलो, फिर द्वापर में, बलराम के रूप में जरा हल मूसल का अभ्यास कर लेते हैं। जब मिथिला में, भगवान ने मूसल लेकर धान कूटा, तो मिथिलानियाँ गाने लगीं–

चितचोखा आजु बँधैलन हे।
सब सान गुमान गँवैलन हे।
चितचोखा.....
कमल करन सोहे ललित मुसरवा
आठ बेरी धान कुटौलन हे।
चितचोखा.....

यह मिथिला की पारम्परिक रचना है। मिथिलानियों ने कह दिया कि आज मैंने इनको बाँधा, इनके कर-कमल में मूसल पकड़वाया और राघवेन्द्र जी से आठ बार धान कुटवाया। मिथिलानियों का आठ बार धान कुटवाने में एक दर्शन है क्योंकि वे जानती हैं कि चित् को अचित् से अलग करना बहुत कठिन है। ये जीव रूप चित् प्रकृति के आठ बन्धनों से बँधा हुआ है। ये जीव चावल के समान है। चावल ही पकने पर भात हो जाता है। भात को संस्कृत भाषा में भक्त कहते हैं। भक्त में प्रकृति के आठ परदे होते हैं–

१. भूमि अभिमान

२. जलाभिमान

३. तेजोऽभिमान

४. वायु अभिमान

५. आकाशाभिमान

६. मनोऽभिमान

७. बुद्धि अभिमान

८. अहङ्काराभिमान

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनोबुद्धिरेव च।
अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।।

गीता ७/४

अतः मिथिलानियाँ कहतीहैं कि हे प्रभो, आप ज्ञान रूप मूसल का आठ बार प्रयोग करके, जीव को प्रकृति के आठों बन्धनों से मुक्त कर दीजिये, जिससे वे आपके चरणों में बँध जाएँ।

श्रेयः श्रुतिं भक्तिमुदस्यते विभो
क्लिष्यन्ति ये केवल बोध लब्धये।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते
नान्यद् यथा स्थूलतुषावघातिनाम्।।

भाग० १०/१४/४

श्रीमद्भागवत् में वत्स-हरण लीला के क्रम में भगवान श्रीकृष्ण के ऐश्वर्य-दर्शन से सृष्टि-रचना के अभिमान के चूर-चूर हो जाने पर प्रभु से क्षमा माँगते हुए ब्रह्मा जी कहते हैं कि हे कन्हैया! जो लोग परम श्रेय रूप मोक्ष की जननी ऐसी आपकी भक्ति को छोड़कर, आप श्री के प्रेम से शून्य नीरस ज्ञान की प्राप्ति के लिए यत्न करते हैं, उनका वह प्रयास उनके लिए उसी प्रकार क्लेशकर सिद्ध होता है जैसे धान की भूसी कूटने वालों को श्रम के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलता।

इसलिए, आज परमात्मा श्रीराम, सीताजी से ग्रन्थिबन्धन करके, स्वयं चिदानन्द होकर और हृदय के सदंश को मिलाकर सच्चिदानन्द हो चुके हैं और उस सच्चिदानन्द का दशरथ जी आनन्दानुभव कर रहे हैं। सदंश से साधुओं का परित्राण, चिदंश से दुष्कृति का नाश और आनन्दांश से धर्म की संस्थापना हो गई।

अवतार का प्रयोजन पूर्ण हो गया।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।

गीता ४/८

अत: दशरथ जी प्रसन्न हैं।

मुदित अवधपति सकल सुत बधुन्ह समेत निहारि।
जनु पाए महिपाल मनि क्रियन्ह सहित फल चारि।।

।।सियावर रामचन्द्र की जय।।

शेष चर्चा कल की जाएगी। चिन्तन करते रहिये।

सीताराम जय सीताराम। सीता राम जय सीता राम।

प्रथम वाक् पुष्पाञ्जलि सम्पन्न।

।। श्रीमद्राघवो विजयतेतराम् ।।

अथ द्वितीय वाक् पुष्पाञ्जलि

श्री तुलसीपीठ आमोदवन, चित्रकूट

दिनाङ्क १९.३.९९

मङ्गलाचरण

(१) आगच्छ वायुसूनोत्वं स्वर्णशैलाभ विग्रहः।
रामायणकथा श्रोता गृहाणासनमुत्तमम्।।

(२) कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानाम्।
पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपद प्राप्तये प्रस्थितस्य।।
विश्रामस्थानमेकं कविवर वचसां जीवनं सज्जनानाम्
बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम।।

श्रीरामचन्द्र रघुपुङ्गव राजवर्य,
राजेन्द्र राम रघुनायक राघवेश।
राजाधिराज रघुनन्दन रामभद्र,
दासोऽहमद्य भवतः शरणागतोऽस्मि।।

शरणं मिथिलेश कन्यका,
शरणं मे रघुवंशभूषणः।
शरणं पुनरेव तावुभौ
शरणं नान्यदुपैमि दैवतम्।।

मन्दाकिनी पयःपूर सिक्तपादाम्बुजाय च।
राघवाय नमस्तस्मै श्रीचित्रकूटविहारिणे।।

तुलसीं तुलसीपीठं सीतारामौ च लक्ष्मणम्।
मन्दाकिनीं चित्रकूटं कामदं मारुतिं स्तुवे।।

श्री सीतानाथ समारम्भां श्रीरामानन्दार्यमध्यमाम्।
अस्मदाचार्य पर्यन्तां वन्दे श्रीगुरुपरम्पराम्।।

जयति कवि कुमुद चन्द्रो हुलसीहर्षवर्धनस्तुलसी।
सुजन चकोर कदम्बो यत्कविता कौमुदीं पिबति।।

।। सीताराम जय सीताराम।। सीताराम जय सीताराम।।

श्रीगुरुचरण सरोज रज निज मन मुकुर सुधारि।
बरनउँ रघुबर बिमल जसु जो दायक फल चारि।।

।।सियावर रामचन्द्र भगवान की जय।।

रामकथा मन्दाकिनी चित्रकूट चित चारु।
तुलसी सुभग सनेह बन सिय रघुवीर विहारु।।

।।गोस्वामी तुलसीदास की जय।।

कामदगिरि हनुमत चरन मन्दाकिनि को तीर।
ये तीनों छूटें नहीं जब लगि रहे सरीर।।

।।पवनसुत हनुमान की जय।।
।।सीताराम जय सीताराम।।
।।सीताराम जय सीताराम।।

परिपूर्णतम परात्पर परमात्मा, आप्तकाम, पूर्णकाम, परम निष्काम आत्माराम, सकल जन मनोभिराम, सकल हृदयाभिराम, लोक लोचनाभिराम, कोटि मन्मथाभिराम, नील सरोरुहश्याम, इन्द्रनीलमणिश्याम, नीलतामरसश्याम, नीलजम्बूफलश्याम, सजलनीलघनश्याम, नीलातिशिपुष्पश्याम, नीलकेकिगलश्याम, परब्रह्म परमधाम, परम पवित्र, परम विचित्र, कारुणिक निर्व्यलीक, शङ्कर मानस पुण्डरीक, मोचित भक्त-भव-बन्धन, कौसल्यानन्दवर्धन, वेदवेदान्तगम्य, परात्पर परब्रह्म, निरस्तसमस्तदूषण, समर निहतखरदूषण, दिनकर कुलभूषण, भूषण-भूषण, दूषण-दूषण, तापत्रय दूषण, लङ्काधिष्ठित विभीषण, सरयू तरलतरङ्गविक्षालित पादारविन्द, निस्यन्दमान प्रेम मकरन्द, विलुब्ध-मुनिमनोमिलिन्द, वृन्द-वृन्दारकागणजेगीयमान गुणगणगौरव, भग्नभक्त रौरव,

परिकलित विशुद्ध वैभव, सतत नव नव अभिनव जलधर सुन्दर, भव वारिधि मन्दर, निखिल गुण-गण मन्दिर, सर्व प्रकार सुन्दर, कोटि-कोटि कन्दर्प कमनीय, स्वाभिराम रमणीय, राजाधिराज महाराज भूपाल चक्रवर्तीचक्र चूड़ामणि, श्रीमद् चित्रकूट रजः कण विभूषित, परम भावन, परम पावन, भूतभावन भाग्यभूषित, भव्य-भाल, परम निर्मल, कोटि-कोटि परमहंस, परिव्राजकाचार्य, योगीन्द्र, मुनीन्द्र, निखिल विमलात्म महात्म पोपूज्यमान, परम पावन, कामारिसमभ्यर्चित, पाद-पद्म, पद्मामयर्चित सकल सुख सद्म, निसर्ग सुन्दर, मोहितमदन, कलिमलकदन, शोभासदन, वन्जवदन, राजीव लोचन, भ्राजित भाल गोरोचन, तापत्रय मोचन, घनदर्प, कन्दर्प, सोदर्य-सौन्दर्य, हृद्य-निरवद्य रूप, सकलकलाकलापककलन, श्याम सुन्दर प्रभु मैथिली मनोरम, मर्यादा पुरुषोत्तम, श्री चित्रकूट विहारी, श्री राघवेन्द्र सरकार की भुवन पावनी कृपा एवं असमौर्ध्वानन्द सम्पन्न, प्रत्युत्पन्न प्रपन्न पारिजात, वारिजातनयन समुदञ्चित, मङ्गलमय सौन्दर्य माधुरी धूर्यस्थित, सकल सीमन्तिनीगण समर्च्यमान, परम-पावन, चर्चनीय, समर्चनीय, कोटि कोटि निखिल निलिम्प नागरी, निटिल निचित सिन्दूर, नमस्या नमस्य, वरिवस्या सम्पन्न, श्रीरामचन्द्र मुखचन्द्र चकोरी, श्री मिथिलेश किशोरी, जनक नन्दिनी, जगज्जननी अर्थात् बहूरानी जी की परम पावनी अनुकम्पा से आज हम एक ऐसे उदात्त चरित्र की चर्चा करेंगे, जहाँ यह कहना पड़ेगा कि जहाँ मेघ-डम्बर है पर आडम्बर नहीं, जहाँ प्रसाद है पर अवसाद नहीं, जहाँ प्रपन्नता है, पर विपन्नता नहीं, जहाँ सौन्दर्य है पर उसका उद्रेक नहीं, जहाँ आनन्द है पर शोक का निस्यन्द नहीं।

एक बार जयदेव जी से किसी ने पूछा कि आप कवियों को कोई काम धन्धा नहीं है क्या?

वैसे आज के कवियों की बात मैं नहीं करता। ठीक है, जैसा भी है पर वास्तव में कवि है कौन? मञ्चों पर मदपान करके कविता नहीं कही जाती। जब तक कथनी और करनी में सारूप्य नहीं होता, तब तक कोई कवि बन ही नहीं सकता। कवि बनने के लिए कथनी और करनी में सारूप्य आवश्यक है। कवि तो अपनी भौतिक परिस्थिति से ऊपर उठकर उस परमानन्द की स्थिति में पहुँच जाता है, जहाँ यह कहा जाता है—

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते।।

इसलिये तो मैंने लिखा कि—

कवि जीवन ने आप व्यथा अपने हित बोई।
कवि के मन ने स्वयं शान्ति अपनी ही खोई।
लगे बाण हा किसे और घायल हो कोई।
कवि की दुर्गति देख स्वयं कविता ही रोई।

एक बार जब जयदेव जी से पूछा गया कि आपको कोई काम धन्धा नहीं है क्या? आप तो केवल राघव को ही गाते हैं, रामभद्र को ही गाते हैं।

तब जयदेव जी ने एक बहुत सुन्दर बात कही कि, हम क्या करें? हमारा कोई दोष नहीं, ये सारा दोष श्रीरामजी के गुणगणों का है कि जो एक बार चख लेता है, छोड़ ही नहीं पाता है—

कवीनां को दोषः स च गुणगणानामवगुणः।

प्रभु जिसके हृदय में उतर जाते हैं, जब तक बाबा नहीं बना लेते, छोड़ते ही नहीं हैं। इसलिए लगता है कि नरसी मेहता ने इसी भाव भूमिका में गाया होगा—

आँख म्हारी उघड़ै त्याँ सीताराम देखूँ।
धन्य म्हारो जीवन कृपा एनी लेखूँ।
गीता रामायण म्हारी अन्तर नी आँखों।
प्रभु ये दीधी छे मने उड्वानी पाँखों।।

नरसी मेहता कहते हैं कि हे परमात्मा! जहाँ मेरी आँखें खुलें, वहाँ मैं श्री सीताराम जी को ही देखूँ। ऐसी स्थिति में मेरा जीवन धन्य बन जाए और मैं प्रत्येक परिस्थिति में परमात्मा की कृपा का अनुभव करूँ। गीता और रामायण मेरी भीतर की आँखें हैं। प्रभु ने मुझे उड़ने के लिए दो पंख दिये हैं। गीता रूप पंख से मैं ज्ञान के आकाश में उड़ सकता हूँ और रामायण रूप पंख से उड़कर भक्ति माता की गोद में जा सकता हूँ।

इस प्रकार प्रभु तो जिसके मन में उतरते हैं तो बस उतर ही जाते हैं—**'स च गुणगणानामवगुणः।'** संस्कृत में गुण का अर्थ होता है—रस्सी। प्रश्न है कि वह निर्गुण ही बने रहते, सगुण क्यों बनें? तो इसका बड़ा अच्छा उत्तर है। अरे, रस्सी की आवश्यकता तो तब पड़ती है, जब कोई कुएँ में गिर पड़ता है और उस व्यक्ति को बाहर निकलने के लिए आधारभूत रस्सी की आवश्यकता पड़ती है। जब बाहर से कोई व्यक्ति रस्सी फेंक देता है तो भीतर वाला व्यक्ति उसी रस्सी के सहारे से बाहर निकल आता है। इसी प्रकार

संसार के कुएँ में पड़े हुए हम जैसे कोटि-कोटि पतित यदि निकलना चाहें तो निश्चित प्रभु की गुण रूपी रस्सी पकड़ लें, तो बाहर से प्रभु उस रस्सी को खींच लेंगे और हम उनके चरणों में चले जाएँगे। इस प्रकार प्रभु के गुण गणों के सहारे हम प्रभु के पास तक पहुँच सकते हैं। इसलिए उनका सगुणत्व समीचीन है। इसलिए वेदान्तदेशिक ने कहा था—

'निर्विशेषे ब्रह्मणि न किमपि प्रमाणमुपलभामहे
सर्वेषामपि शास्त्राणां सविशेषविषयत्वात्।''

यह बहुत प्रासंगिक नहीं है कि शङ्कराचार्य ने भगवान को निर्धर्मक कहा। अब न जाने कैसे कहा? पर इसका खण्डन मैंने अपने भाष्य में लिखा है। भगवान निर्धर्मक नहीं हैं। भगवान धर्म से ऊपर हैं, बिल्कुल ठीक बात है पर भगवान में सभी धर्म हैं। भगवान कौन हैं?

''एककालावच्छेदेन, एकसंसर्गावच्छेदेन, एकाधिकरणतावच्छेदेन, सकलविरुद्धधर्माश्रयतावच्छेदकतावत्व'', भगवान में है।

जो एक साथ, एक ही समय, सम्पूर्ण विरुद्ध धर्मों को स्वीकार कर लेता है, वह भगवान होता है। इसीलिए तो हम उनका मङ्गलमय चरित्र श्रवण करते हैं। नहीं तो, क्या आवश्यकता है कथा सुनने की और जगद्गुरु जी को मस्ती में कथा कहने की। वास्तव में कथा कहने की वस्तु नहीं, पीने की वस्तु है। धन्य हैं वे जो कथा को पीते हैं और उनसे भी धन्य वे हैं जो कथा को पी पीकर, कथा को ही जीते हैं। कथा को जीना बहुत कठिन है। हमारे साहित्य में दो महापुरुष ऐसे हुए हैं, जिनके नाम को यदि उलट दो तो एक दूसरे का नाम बन जाता है। एक को हम कहते हैं कपि और इसको उलट दो तो बन जाता है पिक। कपि हैं हनुमान जी महाराज और पिक हैं महर्षि वाल्मीकि भगवान- **'वन्दे वाल्मीकि कोकिलम्'** कपि का अर्थ है वानर और पिक का अर्थ है कोयल। एक कपि है और एक पिक है।

कपि माने—'कायन् पिबति', जो कहते कहते पीता है, वह कपि है।

पिक माने—पिबन् कायति, जो पीते पीते गाता है, वह पिक है।

यही तो सौष्ठव है और यही कथा का हार्द है। मस्ती भी उसी को आती है, जो गोविन्द के चरणों में अपनी हस्ती लुटा दिया करता है। यह मस्ती सबको नहीं आया

करती। भगवान तो कहते हैं कि जब तक तुम्हारे पास ईगो अर्थात् अहं रहेगा, तो मैं कह दूँगा-आई गो, मैं जाता हूँ। तू अपना ईगो सँभाल मन में तो दो में से एक ही रहेगा, या तो ईगो ही रहेगा या गोविन्द रहेंगे। जिस प्रकार जंगल में दो शेर नहीं रहा करते, उसी प्रकार एक ही हृदय में अभिमान और भगवान एक साथ नहीं रह सकते क्योंकि दोनों परस्पर विरोधी हैं—

'ईश्वरस्यापि दैन्यप्रियत्वात् अभिमानद्वेषित्वात् च।'

ईश्वर को दैन्य प्रिय है। ईश्वर को द्वेष केवल अभिमान से है। वे चिढ़ते किसी से नहीं हैं। वे चिढ़ते हैं तो केवल अभिमान से चिढ़ते हैं। जीवन में सबसे बड़ा राक्षस तो हमारा अभिमान ही है। इसको छोड़ना तो बहुत कठिन है क्योंकि ये फिर कभी भी आ जाएगा। इसलिए अभिमान को गला देना चाहिए। इसलिए 'तुम सारिखे गलित अभिमाना।' यहाँ रहित अभिमाना ठीक नहीं। अभिमान को गलाना चाहिए। जब गल जायेगा तब नहीं आएगा। गलाने के लिए तो जल चाहिए तो जल भगवद् प्रेम ही है। भगवद् प्रेमामृत से धीरे धीरे गलकर, जब यह समाप्तप्राय हो जाता है, तब जीव को अद्‌भुत आनन्द आता है।

आइये चलते हैं उस महामहिम की चर्चा के लिए, जो हमने दोहा लिया है, आप जान ही रहे होंगे। बड़ा सुन्दर दोहा है—

मुदित अवधपति सकलसुत बधुन्ह समेत निहारि।
जनु पाए महिपाल मनि क्रियन्ह सहित फल चारि।।

लोग मुझसे कहा करते हैं कि आप संस्कृत में लिखते हैं, क्या अवधी में नहीं लिख सकते? तब मैंने कहा कि बात ऐसी है कि मैं यदि चाहूँ तो प्रयास करके संस्कृत में उस प्रकार की कविता लिख सकता हूँ, जैसी और लोग लिखते आए हैं। केवल तीन लोगों का अनुकरण करने की मेरी स्थिति नहीं बन पाती। तीन महापुरुषों का अनुकरण मैं नहीं कर सकूँगा और मैं ईश्वर से प्रार्थना भी करता हूँ कि ऐसा दुर्भाग्य मुझे मत दें। मैं वेदव्यास नहीं बनना चाहता, मैं वाल्मीकि नहीं बनना चाहता, मैं तुलसीदास नहीं बन सकता और सब बन सकता हूँ और दिखाऊँगा। वृहत्त्रयी की कल्पना अभी मैंने साकार करके दिखाई। वृहत्त्रयी के समकक्ष मैंने अभी **'भार्गवराघवीयम्'** प्रस्तुत किया है। भारवि, श्रीहर्ष और माघ बनना बहुत सरल है। पर मैं आपको सही बताऊँ कि वाल्मीकि

और व्यास को तो मैं आदरणीय मानता हूँ और मानता ही रहूँगा परन्तु तुलसीदास बनना सरल नहीं, उतना ही कठिन है जितना कि एक साधारण सी चींटी के लिए आकाश को चूम लेना। इतना कठिन है कि मैं कोटि कोटि जन्म धारण करूँ तो भी तुलसीदास जी के चरणधूलि के सेवन की पात्रता मुझमें तो नहीं आएगी। आप लोगों में आ रही है तो बहुत अच्छी बात है। कुछ लोग युगतुलसी बनते हैं, कुछ लोग अभिनव तुलसीदास बन जाते हैं। मैंने कहा कि भैया, अब मैं तुम्हें दण्डवत् कर लूँगा। कालिदास सरस्वती के वरदपुत्र माने जाते हैं पर गोस्वामी तुलसीदास जी की गहराइयों को तो वे भी नहीं छू सके, तो तुम और हम कौन होते हैं? कालिदास ने कहा—

सञ्चारिणी दीपशिखेव रात्रौ

कालिदास की दीपशिखा सञ्चारिणी है किन्तु गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा कि सञ्चारिणी दीपशिखा ठीक नहीं होती। रामचरितमानस के बालकाण्ड के दो सौ तीसवें (२३०वें) दोहे की सातवीं पंक्ति में गोस्वामी जी ने कहा कि मेरी दीपशिखा, छविगृह की दीपशिखा है—

सुन्दरता कहुँ सुन्दर करई। छविगृह दीपसिखा जनु बरई।।

गोस्वामी जी की दीपशिखा छविगृह में नियन्त्रित दीपशिखा है।

जब कालिदास ने शकुन्तला के नख-शिख सौन्दर्य का वर्णन किया तो उन्होंने कहा—'**अनाघ्रातं पुष्पम्**' इस छन्द को मैं गा नहीं रहा हूँ क्योंकि यह प्राकृत छन्द है और मैं प्राकृत छन्दों को गाने के पक्ष में हूँ नहीं।

कीन्हें प्राकृत जन गुनगाना। सिर धुनि गिरा लगत पछिताना।।

प्राकृत जनों का गुणगान करने पर सरस्वती रोती है कि किस राक्षस के मैं पल्ले पड़ गई। हमारी सरस्वती प्राकृत जनों को गाने के लिए थोड़े ही है।

एक बार इन्दिरा गाँधी जी जो तत्कालीन प्रधानमंत्री थीं, उनके पी०ए० ने मुझसे कहा कि-आप तो विद्यार्थी हैं, मैडम आपसे बहुत प्रसन्न हैं। आप उन पर शतक (सौ श्लोक) लिख दीजिये तो कम से कम पच्चीस हजार रुपया तो दे ही देंगी।

मैंने कहा—मेरी सरस्वती ऐसा काम करेगी? जाकर कह दो कि मैं भूखों मरना स्वीकार करता हूँ पर अपने राघव और माधव के अतिरिक्त संसार में किसी व्यक्ति पर

कविता कहना स्वीकार नहीं कर सकता। यह कवि का धर्म नहीं है।

महाभिमान बहुत बुरा है पर स्वाभिमान बहुत उत्कृष्ट है। जिसके जीवन में स्वाभिमान नहीं है, वह कुछ भी नहीं कर सकता। स्वाभिमान का अर्थ है—स्व पर अभिमान। हमारे 'स्व' तो भगवान हैं। जब कार, बँगला, घरवाली पर अभिमान हो सकता है तो हमको तो अपने भगवान पर अभिमान है। बनारसी भाषा में कह सकते हैं—

जवनु सब जग है झुकइ ऊ माथ कैसे
जेकर चेला रघुनाथ ऊ अनाथ कैसे

जिसके जीवन में प्रभु ही आ गए, वह जगत से क्या अपेक्षा करेगा?

किं सेव्यते सुमनसां मनसापि गन्धः
कस्तूरिका जननशक्तिभृथा मृगेण।
निर्माय नूतनमुदाहरणानुरूपं भावम्
काव्यं मयात्र निहितं न परस्य किञ्चित्।।

देखो, अभाव तब तक बना रहता है, जब तक भाव में भगवान नहीं आ जाते और जब भगवान भाव में आ जाते हैं तो सारे अभावों के प्रासाद अपने आप ढह जाते हैं। तब कोई अभाव रह ही नहीं जाता। भाव को संसार की आँखों से देखा नहीं जा सकता। व्याकरण में आता है कि 'अयं भाव पदार्थः', अर्थात् भाव को देखा नहीं जाता, भाव अनुभूत होता है। भाव तो अनुभाव्य होता है। उसका अनुभव होता है और वह चाक्षुष् साक्षात्कार का विषय नहीं बनता।

श्रीरामचरितमानस जी के अरण्यकाण्ड के ग्यारहवें दोहे की इक्कीसवीं पंक्ति मुझे बहुत भाती है और सबको भानी चाहिए। सुतीक्ष्ण जी राघव जी से कहते हैं—

अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे।।

गोस्वामी जी ने कहा कि ऐसा अभिमान हमारे मन से भूलकर भी नहीं जाना चाहिए कि मैं सेवक हूँ और भगवान मेरे स्वामी हैं। मैं राघव का हूँ और राघव मेरे हैं—

हम तो हमारे राघव जू के, राघव जू हमारे हैं।

ऐसा अभिमान तो हमें होना ही चाहिए—'अस अभिमान जाइ जनि भोरे', यहाँ 'भोरे' शब्द में श्लेष है। भोरे का अर्थ भूलकर भी और भोरे का अर्थ ज्ञान के प्रभात के

होने पर भी है अर्थात् सबेरा होने पर भी यह अभिमान नहीं जाना चाहिए। हम ज्ञान स्वीकारना चाहते हैं पर इतना अन्धकार हमें चाहिए अर्थात् हमें सूर्योदय का सवेरा नहीं चाहिए। हमें तो पौ फटती हुई हो पर थोड़ा-थोड़ा सा अन्धकार भी चाहिए पर वह अन्धकार भगवदभिमानात्मक होना चाहिए कि मैं राघव का और राघव मेरे हैं। इतना तो होना ही चाहिए—**अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे।।**

जब काव्य की समीक्षा की जाती है तो प्रबन्ध काव्यों की चर्चा होती है और प्रबन्धकाव्य ही महाकाव्य बन जाता है। एक दिन मैंने विचार किया कि मैं मानस जी को क्या कहूँ? क्योंकि एक ही प्रबन्धकाव्य, महाकाव्य बनता है और मानसकार कहते हैं कि **'सप्त प्रबन्ध सुभग सोपाना'** मेरा एक-एक सोपान एक-एक प्रबन्धकाव्य है और इस प्रकार इसमें एक साथ सात-सात प्रबन्धों का सङ्कलन है, तो आप इसे क्या कहेंगे? मैं तो यह कहता हूँ कि और तो महाकाव्य होते हैं पर श्रीराम चरितमानस जी तो 'महा-महाकाव्य' है। यह तो सात महाकाव्यों का सङ्कलन है। श्रीरामचरितमानस का वक्तव्य कोई गड़रियों का गीत नहीं है। यह तो सारस्वत भगवत्समर्चन है। भगवान का सारस्वत समर्चन है। ग्राम्य भाषा में निबद्ध होने पर भी यह 'ग्राम्य-गीत' नहीं है, यह तो राम्-गीत है।

नौ दिन के व्याख्यान का जो मैंने वर्ण्य विषय चुना है, कल उसी वर्ण्य विषय की भूमिका प्रस्तुत की थी उसी का उपोद्‌बलन प्रस्तुत किया। इस विषय पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए। अत: गोस्वामी जी ने कहा कि श्री सीताराम जी के विवाह को आप विचार कर देखिये—

हृदय बिचारहु धीर धरि सिय रघुबीर बिबाहु।।

श्रीसीताराम जी के विवाह को हृदय में विचारने से गोस्वामी जी का तात्पर्य यही है कि हम धैर्यपूर्वक विचारते नहीं हैं। देखिये, एक बात बताऊँ हमारा टेन्शन क्यों नहीं जाता? वास्तव में टेन्शन तो तभी समाप्त होगा, जब हमारा अटैन्शन ठाकुर जी के चरणों में आ जाएगा। ये अटेन्शन तो तभी आएगा जब उनसे हमारा इण्टेन्शन होगा और इण्टैन्शन तब होगा, जब हमारा उन पर अट्रैक्शन हो और अट्रैक्शन तो तभी होता है, जब अफेक्शन हो और उनसे हमारा ऐक्शन हो और संसार से रिऐक्शन हो। कोई आलङ्कारिक बात नहीं कह रहा हूँ। यह अनुभूत है। उनसे हमारा ऐक्शन तो तब होगा जब उनसे हमारा

कोई कनेक्शन जुड़े और कनेक्शन तो तब ही जुड़ेगा जब उनसे हमारा कोई इण्टरनल रिलेशन हो जाए और यह सम्बन्ध तो तब ही सम्भव होगा जब धार्मिक कथाओं में सन्तों के द्वारा हमारा ऐडमीशन कर लिया जाए और सन्त तो हमको तब ही ऐडमिट करेंगे, जब हम उनको कुछ कमीशन देंगे क्योंकि आजकल कमीशन का युग है और सन्तों को तो हमें डिवोशन का कमीशन देना होगा। इसलिए हमें इन बातों पर विचार करना चाहिए।

मिथिला का अत्यन्त सुन्दर मण्डप है। श्रीरामचरितमानस जी के बालकाण्ड के दोहा क्रमाङ्क तीन सौ चौबीस (३२४) से ऊपर, जब छन्दों की चर्चा चली, जिनमें श्रीरामविवाह का वर्णन चल रहा है। तब महाकवि से पूछा गया कि आपको मिथिला का मण्डप कैसा लग रहा है? तब उन्होंने कहा कि मिथिला का मण्डप मुझे मिथिला का मण्डप नहीं, जीव का हृदय लग रहा है जिसमें जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीया ये चारों दर्शन की अवस्थाएँ, अपने अपने विभुओं के साथ विराज रही हैं–

सुन्दरी सुन्दर बरन्ह सह सब एक मण्डप राजहीं।
जनु जीव उर चारिउ अवस्था विभुन सहित विराजहीं।

तब पूछा कि चक्रवर्ती जी अर्थात् दशरथ जी कैसे लग रहे हैं? तब गोस्वामी जी ने कहा–

मुदित अवधपति सकल सुत बधुन्ह समेत निहारि।
जनु पाए महिपाल मनि क्रियन्ह सहित फल चारि।।

बहुत सुन्दर दोहा है। अवधपति दशरथ जी महाराज आज वधुओं के सहित अपने चारों पुत्रों को देखकर इतने प्रसन्न हो रहे हैं मानों उनको क्रियाओं सहित चारों फल मिल चुके हैं। कितनी सुन्दर उत्प्रेक्षा यहाँ की गई है और वास्तव में कवि इसी को कहते हैं–

या लोकत्रय साधिनि चतुरता सा चातुरी चातुरी।

जब काव्यप्रकाशकार अर्थात् मम्मटाचार्य ने **काव्यप्रकाश** का मङ्गलाचरण प्रारम्भ किया तो उन्होंने और किसी की वन्दना नहीं की। उन्होंने कहा कि कवि की भारती अर्थात् सरस्वती की जय हो। सरस्वती माने वाणी। सरस्वती तो बहुत लोगों के पास होती है। खल के पास भी सरस्वती होती है। **'सरस्वती ज्ञान खले यथा सति'**। इस प्रकार मम्मटाचार्य ने सब सरस्वतियों की वन्दना नहीं की। उन्होंने कहा कि कवि की

सरस्वती की जय हो। जैसा कि उन्होंने इस आर्या में लिखा—

नियतिकृत नियमरहितां ह्लादैकमयीमनन्यपरतन्त्राम्।
नवरसरुचिरां निर्मितिमादधति भारती कवेर्जयति।।

कहते हैं कि कवि की भारती नियतिकृत नियम से रहित होती है, उसमें प्रकृति के नियम नहीं लागा करते क्योंकि प्रकृति का नियम है कि इसमें हर्ष भी है, शोक भी है, सुख भी है और दु:ख भी है। ये द्वन्द्वात्मक होती है। विधाता की सृष्टि में सत्व, रज और तम है परन्तु कवि की वाणी में 'ह्लादैकमयीम्', एकमात्र 'ह्लाद' ही उसका विषय है। वहाँ सुख दुख कुछ नहीं है। वह तो केवल परमानन्दमयी होती है। प्रकृति के नियम में तो छ: रस होते हैं किन्तु इसमें तो नौ रस होते हैं 'शान्तोऽपिनवमोरस:। आगे चलकर मैंने विचार किया, उसमें यह सिद्ध किया है कि रसों के दो भेद हैं—

१. सामान्य रस

२. विशेष रस

सामान्य रस में नौ (९) रस होते हैं पर विशेष रस में तीन और रस होते हैं—

१. वत्सल रस

२. प्रेम रस

३. भक्ति रस

गोस्वामी जी ने कहा कि—

रामचरित जे सुनत अघाहीं। रस विशेष जाना तिन्ह नाहीं।।

जो रामचरितमानस जी सुनकर अघाएँगे तो जान लो कि उन्हें विशेष रस का अभी ज्ञान नहीं है। उन्हें केवल नौ रसों का ही ज्ञान है। 'रस विशेष जाना तिन्ह नाहीं'। विशेष रस का जब तक ज्ञान नहीं होता, तब तक उसे रामचरितमानस जी में आनन्द नहीं आता। इस विशेष रस का ज्ञान पुस्तकों से तो होता नहीं, वो तो—

रहूगणैतत् तपसा न याति,
न चेज्यया निर्वपणाद्ग्रहाद्वा।
नच्छन्दसा नैव जलाग्नि सूर्ये,
विना महत्पाद रजोऽभिषेकम्।।

वो तपस्या से नहीं मिलता, यज्ञ से नहीं मिलता, वह निर्वपण से नहीं मिलता, वह गृह स्नान से नहीं मिलता, वह अग्नि, सूर्य की उपासना से नहीं मिलता, वह तो केवल सन्तों के चरणारविन्द की धूलि के अभिषेक से मिल जाता है। महापुरुषों के चरणों में बैठकर, उनकी आराधना करके उनके मुखारविन्द से निस्यन्दमान भागवत्प्रेम-पीयूष का पान करके जब निर्गत निखिल कल्मषतयानितान्तनिर्मल स्वान्तता प्राप्त हो जाती है तो व्यक्ति के हृदय में भगवदीय रस के परिज्ञान की पात्रता आती है। चक्रवर्ती जी बहुत प्रसन्न हैं। गोस्वामी जी ने बड़ी सुन्दर उत्प्रेक्षा की—

जनु पाए महिपाल मनि क्रियन्ह सहित फल चारि।।

आइये देखें, कितना सुन्दर वातावरण है! आज हम भगवान कामद के बिल्कुल सामने बैठे हैं और भगवान कामदेश्वर कामद हैं। कामद अर्थात् काम को देने वाला, बिल्कुल गलत है। 'कामं द्यति खण्डयति,' जो हमारे वासनात्मक काम को खण्डित कर डालता है और भगवदात्मक कामना को देता है। 'कामं द्यति कं ब्रह्माणं, अं विष्णुं, मं शिवं, ददाति इति कामदः' जो ब्रह्मा को भी दे सकता है, विष्णु को भी दे सकता है औ शिव को भी दे सकता है, वह हमारा कामद है। तो यह कोई साधारण है क्या?

एक व्यक्ति ने मुझसे कहा कि आप सरस्वती को माता क्यों नहीं कहते ?

मैंने कहा कि मैं सरस्वती को माता क्यों कहूँ ? वो तो हमारी बहूरानी हैं। मैंने कहा कि मैं तो चित्रकूट में रहता हूँ और मैं तो चित्रकूट तुलसीपीठ का रामानन्दाचार्य हूँ। अन्य स्थानों पर तो सरस्वती माता हैं पर हमारे चित्रकूट की तो सरस्वती माता नहीं बहूरानी हैं। हमारी अनुसूया माता ने दिमाग ठण्डे करवा दिये। हण्डे बड़े-बड़े मँजवाए साधुओं के। सरस्वती अपने घर में भक्तों के लिये हैं –

या कुन्देन्दुतुषारहार धवला या शुभ्रवस्त्रावृता
या वीणावरदण्डमण्डित करा या श्वेत पद्मासना।
या ब्रह्माच्युतशङ्करप्रभृतिभिर्देवैःसदा वन्दिता
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेष जाड्यापहा।।

तो अन्यत्र होंगी कुन्देन्दुतुषारहार धवला, पर हमारे यहाँ तो पुत्रवधू बनाया अनुसूया जी ने। सरस्वती, लक्ष्मी और पार्वती तीनों ही पुत्रवधू बनकर आईं। इसलिये कामदेश्वर कोई साधारण पर्वत नहीं है।

जय जय कामद जय जय राम
जय जय अनुसूया चित्रकूट धाम।
जय मन्दाकिनि सरित ललाम
जय जय कामद चित्रकूट धाम।
जय जय सीता लक्ष्मण राम
जय जय लक्ष्मण सीता राम।
जय जय कामद चित्रकूट धाम।

आज चक्रवर्ती जी चारों बहुओं के साथ साथ अपने चारों पुत्रों को प्रसन्नतापूर्वक निहार रहे हैं। इतने आनन्दमग्न हैं-

मुदित अवधपति सकल सुत बधुन्ह समेत निहारि।
जनु पाए महिपाल मनि क्रियन्ह सहित फल चारि।।

कितनी प्रसन्नता है उनको। आइये, अब चर्चा करें कि कौन सी चार क्रियाएँ हैं और कौन से चार फल हैं। आप जानते हैं कि शास्त्र ने चार फल कहे हैं। कुछ लोग धर्म से प्रारम्भ करते हैं पर तुलसीदास जी अर्थ से प्रारम्भ कर रहे हैं- अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष। रामचरितमानसकार ने यहाँ प्रतिज्ञा की है –

ग्रन्थग्रन्थिरिहक्वचित् क्वचिदपिन्यासिप्रयत्नान्मया।
प्राज्ञमन्यमनाहठेनपठिती मास्मिन् खलः खेलतु।
श्रद्धाराध्य गुरुश्लथीकृतदृढग्रन्थि समासादयत्
त्वेतत्काव्य रसोर्मिमज्जन सुखव्या सज्जनं सज्जना।।

उन्होंने कहा यहाँ पर बड़े-बड़े प्रयत्नों से ग्रन्थों की ग्रन्थियाँ रखी गई हैं। जो अपने को बुद्धिमान् मानते हैं और पढ़ने की बुद्धि नहीं रखते, हठ से पढ़ना चाहते हैं, ऐसे खलों को यहाँ खेलने का अधिकार नहीं है। जिन्होंने गुरुजनों की श्रद्धा से आराधना की है और गुरुजनों की कृपा से जिनकी हृदयस्थ ग्रन्थियाँ शिथिल हो गई हैं, ऐसे महा महत्तम जन ही इस काव्य के रसोर्मिमज्जन का व्यासज्जन प्राप्त कर सकते हैं।

अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष ये चार फल हैं। इस पर बड़ा विवाद टीकाकारों ने चलाया और गीताप्रेस की तो स्वयंभू व्याख्या है। वो तो कहते हैं कि **अर्थ की क्रिया यज्ञ-क्रिया है और धर्म की क्रिया श्रद्धा है। काम की क्रिया 'योग-क्रिया और**

भोग-क्रिया' है और मोक्ष की क्रिया ज्ञान है। परन्तु उनको इतना ज्ञान नहीं है कि यहाँ काम शब्द किस अर्थ में आया है? यह चर्चा का विषय है और यदि मैं ही चर्चा नहीं करूँगा तो आप जानेंगे कैसे? यदि आप जानेंगे नहीं तो धीरे-धीरे आपके जीवन से भारतीय मूल्य चले जाएँगे। सब कुछ विदेशों से लाया जा सकता है पर वैदिक ज्ञान विदेशों से नहीं लाया जा सकता। यह ज्ञान तो हमारे ही बस का है और हमसे ही मिलेगा। जहाँ वैदिक ज्ञान की व्याख्या होगी, **जहाँ वेदाः प्रमाणम् कहा जाएगा, वहाँ चित्रकूट तुलसी पीठ ही प्रमाण बनेगा।**

यहाँ 'काम' क्या है? आइये चर्चा करते हैं। **श्रीमद्भागवत** जी के प्रथम स्कन्ध के दूसरे अध्याय में इन चारों की एक तालिका है।

धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते।
नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः।।
कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता।
जीवस्य तत्व जिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः।। १/२/१०

धर्म का लक्ष्य है अपवर्ग अर्थात् मोक्ष। सूत जी कहते हैं कि हे ऋषियों! जिसका मोक्ष ही लक्ष्य है ऐसे धर्म का प्रयोजन अर्थ प्राप्ति के लिये नहीं है। निवृत्ति लक्षण और प्रपत्ति लक्षण, धर्म, का फल है, विषयों से वैराग्य। इसी प्रकार धर्ममूलक अर्थ का फलभूत काम, लाभ के लिये नहीं है। धर्ममूलक अर्थ सम्बन्धी काम भगवत प्राप्ति की इच्छा ही है और वह मोक्ष का साधक है। इसी प्रकार काम का तात्पर्य इन्द्रियों की प्रीति अर्थात् विषय सुख के सेवन में नहीं है, उसका लाभ केवल जीवन निर्वाह कर लेने में है अर्थात् प्रभु को पाने के लिये जीने की इच्छा करना ही काम का तात्पर्य है। जीव का भी लक्ष्य है ब्रह्म की जिज्ञासा। अनेक सकाम कर्म करके स्वर्ग आदि की प्राप्ति जीव का लक्ष्य नहीं है।

यह अपवर्ग है क्या ? आप जानते हैं कि अ पवर्ग अर्थात् जहाँ पर पवर्ग नहीं है, उसे ही अपवर्ग कहते हैं। पवर्ग में पाँच अक्षर होते हैं- प, फ, ब, भ और म। जहाँ ये पाँचों नहीं हैं, उसे अपवर्ग अर्थात् मोक्ष कहते हैं। 'न विद्यते पवर्गः यस्मिन् स अपवर्गः।'

प-पाप-पुण्य। जहाँ ये दोनों न हों।
फ-फल। जहाँ कर्म का फल न हो।
ब-बन्धन। जहाँ भव-बन्धन न हो।

भ–भय।　　जहाँ भय न हो।

म–मरण।　　जहाँ मरण न हो।

यह है अपवर्ग। धर्म का फल है अपवर्ग अर्थात् मोक्ष। धर्म का विश्राम है मोक्ष और अर्थ का विश्राम है धर्म। **'अर्थस्य धर्मैः कान्तस्य'**। अर्थ का उपयोग धर्म के साथ होना चाहिये। यदि हमारा अर्थ धर्म के साथ नहीं जुड़ेगा, तब तो वह अनर्थ हो जायेगा। अर्थ को धर्म का अनुगामी होना चाहिये। धर्म को मोक्ष का अनुगामी होना चाहिये और काम को धर्म से अविरुद्ध होना चाहिये।

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।।

गीता ७/११

काम को धर्म से अविरुद्ध होना चाहिये। यदि काम धर्म से विरुद्ध हो जाएगा, तब अनर्थ हो जाएगा। काम और मोक्ष ये दोनों साध्य हैं। संस्कृत साहित्य में 'काम' के दो अर्थ आए हैं। दो अर्थों में 'काम' को देखा जाता है। एक तो स्त्री–पुरुष के समागम को 'काम' कहते हैं परन्तु वह पुरुषार्थ नहीं है। इसलिये गीता जी में दोनों ही बातें पृथक्–पृथक् कही गई हैं।

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।
और फिर कहा– प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः।।

जहाँ प्रजनन क्रिया होती है, उसे कन्दर्प कहते हैं। यहाँ 'काम' से अभिप्राय अभीप्सित वस्तुओं की प्राप्ति है।

काम्यते इति कामः 'कमु कान्तौ' कान्तिरिहेच्छा।

अर्थात् हम भिन्न–भिन्न वस्तुओं की इच्छा करते हैं। हमारी उन इच्छाओं के विषय को 'काम' कहते हैं। जैसे हम इच्छा करते हैं कि भोजन मिले, वस्त्र मिले, भिन्न–भिन्न वस्तुएं मिलें अर्थात् जीवनोपयोगी वस्तुएं मिलें पर अन्ततोगत्वा काम धन्यता को तब प्राप्त होता है जब हमारी इच्छा के विषय श्रीराम बन जाते हैं और हमारा काम होता है कि हमें श्रीराम मिल जाएँ। श्री सीता जी कहती हैं –

तनि हमरौ सगुनवा विचारु ज्योतिषी।
कखनौ मिलते रघुनन्दन उचारु ज्योतिषी।

यह 'मैथिली' भाषा में निबद्ध गीत है। सीता जी ने एक ज्योतिषी से पूछा कि मेरा

सगुन विचारो कि मुझे मेरे राघव जी कब मिलेंगे ? यही 'काम' पुरुषार्थ है।

पुरुषेण अर्थ्यते इति पुरुषार्थः

किसी स्त्री को पाना 'काम' नहीं है। यह तो प्रारब्ध है, मिल ही जाएगा।

कामं च दास्ये न तु काम काम्यया।
यथोत्तमश्लोक जनाश्रया रतिः।।

भागवत ९/४/२०

श्रीमद्भागवत जी के नवम स्कन्ध के चतुर्थ अध्याय के बीसवें श्लोक में अम्बरीष जी की रहनी का वर्णन किया जा रहा था। जीवन में सबसे बड़ी बात तब होती है जब भगवान के प्रेम में हमारी आँखें गीली हो जाएँ, जब भगवान के प्रेम में हमारी वाणी गदगद हो जाए, जब भगवान के प्रेम में हमारा मन तन्मयीभाव को प्राप्त करके, संसार की सारी इच्छाएँ भुला दे, उसी समय जीवन में धन्यता आती है। एक ब्रजनारी प्रभु को पाने के लिए तलफ रही है। ब्रजनारी यमुना पार है और आनन्दकन्दमुकुन्द सतत मुनिजनपरिपीत चरणारविन्दामन्दमकरन्द सच्चिदानन्द करुणाकन्द गोविन्दनन्दनन्दन, ब्रजनन्दन, अतिशयकुसुमोपमेय, कान्ति, यमुनाकूलकदम्बमध्यवर्ती, नवगोपवधू विलासशाली वनमाली शिखिपिच्छमौलि गोवर्धनधर गिरिधर को पाने के लिए दुखी होकर वह कहती है–

कन्हैया ले चल पल्ली पार
जहाँ बिराजे राधा रानी अलबेली सरकार।
तन मन धन सब तेरे अर्पण
बुद्धि सहित मन तेरे अर्पण
यह जीवन भी तेरे अर्पण
मैं तेरे चरणों की दासी, तू मेरा प्राण अधार
कन्हैया ले चल पल्ली पार।
कुल की शान मिटा बैठी हूँ
लज्जा मान गँवा बैठी हूँ
अपना आप लुटा बैठी हूँ,
साँवरिया मैं तेरी रागिनी, तू मेरा मल्हार

कन्हैया ले चल पल्ली पार।
जग की कुछ परवाह नहीं है
कोई सूझती राह नहीं है
तेरे सिवा कोई चाह नहीं है
बहुत हुई अब हार चुकी मैं, क्यों छोड़ी मझधार
कन्हैया ले चल पल्ली पार।
आनन्द घन जहाँ बरस रहा है
पत्ता पत्ता हरष रहा है
भक्त तुम्हारा तरस रहा है
मेरे माझी मेरे नाविक कर दे बेड़ा पार
कन्हैया ले चल पल्ली पार।

यह 'काम' है, जहाँ भक्त भगवान को पाने के लिए तरस रहा है। उस ब्रजनारी के यह कहते-कहते तो कन्हैया, एक छोटे से केवट के बालक का रूप धारण करके, छोटी सी नौका को लेकर आ गए और उससे बोले गोपियों! क्या कह रही हो? कहाँ जानों है तुम्हें?

ब्रजवनिताओं ने कहा कि हमें बरसाने जानो है, राधा रानी के चरणारविन्द के दर्शन करने के लिए।

कन्हैया ने कहा—तो रो काहे को रही हो?

गोपियाँ बोलीं—हमारे पास कोई साधन नहीं है।

कन्हैया ने कहा—चलो, चलो! तुम सबन को पार कर दूँगो।

गोपियों ने कहा—नाव है?

कन्हैया ने कहा—हाँ छोटी सी नाव है।

गोपियों ने देखा तो कहा कि समझ गए हम।

शीर्णा तरीः सरिदियञ्च गभीर नीराः
पक्षोऽसितो जलधरैः रजनी निरुद्धा।
बाला वयं सकलमित्थमनर्थ हेतुः,
श्रेयानयं त्वमसि माधव कर्णधारः।।

हे प्रभो! **शीर्णातरी:** ये नाव पुरानी हो गई है। **'सरिदियञ्चगभीरनीरा:'**, और यह नदी गम्भीर जल से युक्त है। अगाध जल इसमें भरा है। यमुना भगवती कलिन्दजा अपनी तरल कोटि कोटि अभङ्गावर्तमण्डित उमङ्गित तरङ्गों से प्रभु के चरणारविन्द के प्रक्षालनार्थ लिप्सावती हो रही हैं। **'पक्षोऽसितो'**, अन्धेरा पाख है। **'जलधरै: रजनी निरुद्धा'**, बादलों से रात घिर गई है अर्थात् अँधेरी रात में बादल छा गए हैं। **'बाला वयम्'** हम सब बालिकाएँ हैं, तैरना भी नहीं जानतीं। कभी भी नाव डूब सकती है। सब तो उपद्रव ही उपद्रव है पर एक ही अनुकूलता है कि इस विषम परिस्थिति में हमारी नैय्या के खिवैय्या तुम हो हे माधव! जब तुम हमारी नैय्या के खिवैय्या हो तो अब हम नहीं डूबेंगे। जिसकी नैय्या के खिवैय्या कन्हैया बन जाते हैं, वह कभी भी डूबता नहीं। यह **'काम'** है। ऐसा काम जो राम और श्याम को पाकर ही विश्रान्त हो, वह पुरुषार्थ है। इसलिए **'उज्ज्वल नीलमणिकार'** ने कहा—**'प्रेमैव गोपरामाणां काम इत्यगमत्प्रथाम्'** गोपियों का निर्मल निष्कलङ्क प्रेम ही काम की व्याख्या को प्राप्त कर गया। अत: गोपियों का प्रेम ही काम है।

त्वत्सुन्दरस्मित निरीक्षण तीव्रकाम।
तप्तात्म नाम पुरुषभूषण देहि दास्यम्।।

काम का फल भोग नहीं है—

कामं च दास्ये न तु काम काम्यया।
यथोत्तमश्लोक जनाश्रया रति:।।

इसलिए प्रस्तुत उत्प्रेक्षा में गोस्वामी जी ने शत्रुघ्नलाल को **'अर्थ'** माना। शत्रुघ्न जी **अर्थ** हैं। लखनलाल जी **धर्म** हैं। भैय्या भरत जी ही **काम** हैं। काम की व्याख्या समझने के लिए भरत जी को समझना होगा और भगवान राम ही मोक्ष हैं। अब आप अपने विषय के मार्ग पर उपस्थित हो गए हैं। जैसा कि हम कह चुके हैं कि जहाँ काम विश्रान्त होता है, वहीं राम आते हैं।

अक्षरों के माध्यम से बताऊँ कि काम में तीन अक्षर दिखाई पड़ रहे हैं—क, आ और म = काम। व्यञ्जन वर्णमाला में **क** पहला अक्षर है और स्वरों में **अ** पहला अक्षर है। तो जब क और अ को मिलाया तो संख्या बन गई दो (२) व्यञ्जन वर्णमाला में **म** पच्चीसवाँ (२५) अक्षर है। इस प्रकार पच्चीस और दो मिलकर बन गए सत्ताईस

(२७) अर्थात् काम सत्ताइस पर समाप्त हो रहा है। संयोग से राम का जो पहला अक्षर र है, वह व्यञ्जन वर्णमाला का सत्ताईसवाँ ही अक्षर है। अर्थात् जहाँ काम समाप्त होता है, वहीं राम का प्रारम्भ होता है।

सांसारिक काम जीरो (ZERO) है और हमारे राम हीरो हैं। हीरो शब्द की Spelling है–

HERO

H से Handsome

E से Educated

R से Regular

O से Obedient

हीरो किसे कहते है? जिसमें ये चारों गुण होते हैं और हमारे राम में ये चारों गुण सबसे अधिक हैं। एक वही तो हीरो हैं और बाकी सब तो जीरो हैं। इतने सुन्दर, हैण्डसम हीरो को देखकर शूर्पणखा ने हैण्ड्सअप कर दिया। शूर्पणखा, जो एक विदेशी महिला थी, उसने देखा–वह मञ्जुल मञ्जुल मुस्कान, गोल–गोल कपोलों पर रोलम्बायमान, कोटि कोटि चिकुर निकुरम्ब को तिरस्कृत करने वाली अलकावलि, मन्द–मन्द मुस्कान से उभरे हुए कपोलों के प्रान्तर से निकलती हुई दिव्य कोटि–कोटि विद्युच्छटा सौदामिनी को विनिन्दित करने वाली दाडिम बीजराज को तिरस्कृत करने करने वाली वह दन्तावली और उस पर वह मधुर मधुर मुस्कुरान, कोटि–कोटि शारद शर्वरीश किरण किरणोद्भूत कीलालालिव्यालीढ सम्भूत मङ्गलमय मुखचन्द्र की अभूतपूर्व, अवर्णनीय, असमौर्ध्वानन्द सम्पन्न सुषमा, वक्षस्थल पर विराज़मान श्वेत पुष्पों की माला, सुन्दर नीला नीला सा वह श्रीविग्रह और उस पर पीला पीला सा वह वल्कल इतना सुन्दर लग रहा है जैसे तीसी के फूल पर किसी ने सरसों का पराग लेप दिया हो और प्रभु की वह मधुर–मधुर मुस्कान, सलोनी चितवन, मीठी दृष्टि, जो भावकों के ऊपर कृपा की वृष्टि एवं निर्मल निष्कलङ्क मानुषों में आनन्द की संसृष्टि तथा काव्य रसिकों के जीवन में एक अभूतपूर्व संश्लिष्टि कर रही है। शूर्पणखा तो राघव को देखते ही झूम गई–

पञ्चवटी सो गई इक बारा। देखि बिकल भई जुगल कुमारा।।

झूमकर बोली–आई लव यू राघव! मैं आपसे प्रेम करती हूँ।

हमारा राघव बेचारा सीधा साधा भारतीय। आज का उद्दण्ड भारतीय होता तो न जाने क्या होता? मैं तो कहता हूँ कि माई राघव इज नॉट ए परसन बट ही इज़ पर्सनेलिटी बाई हिमसेल्फ (My Raghav is not a person but he is a personality by himself) हमारा राघव व्यक्ति नहीं व्यक्तित्व है।

शूर्पणखा राघव के समक्ष यह प्रस्ताव रखती है–

तुम सम पुरुष न मो सम नारी। यह सँजोग बिधि रचा बिचारी।।

अब देखिये भारतीय युवक को–

सीतहिं चितइ कही प्रभु बाता। अहइ कुमार मोर लघु भ्राता।।

इतनी सुन्दर चरित्र की व्याख्या जगत में कभी भी नहीं हो पाई। हम सौभाग्यशाली हैं कि हमारे यहाँ रामचरितमानस जी जैसे लोकोत्तर ग्रन्थ का प्रणयन हुआ किन्तु दुर्भाग्यशाली इस मायने में हैं कि निन्यानबे प्रतिशत (९९%) लोगों ने इसका पारायण भी नहीं किया। वास्तव में उत्तरी ध्रुव से लेकर दक्षिणी ध्रुव तक, संयुक्त राष्ट्र संघ में उसकी तालिका में, वर्तमान के आज के परिदृश्य में एक सौ पच्चासी (१८५) देशों का नाम है, उनमें से अब तक जितने भी साहित्यिक ग्रन्थ उपलब्ध हैं, यह कहा जा सकता है कि उन सबमें जितनी सुन्दर चरित्र की व्याख्या रामचरितमानस जी में हुई है, आज तक के इतिहास में ऐसी व्याख्या करने के लिए किसी माँ ने ऐसे लाल को जन्म ही नहीं दिया। इतनी सुन्दर चरित्र की व्याख्या अन्यत्र कहीं हुई ही नहीं। हुलसीहर्षवर्धन तुलसी प्रभु के सामने तो वाल्मीकि कालिदास सब पीछे छूट जाते हैं और उन्हीं को आज के वक्ता बाबा तुलसी कहते हैं जो उचित नहीं है। अपने पूर्वजों का आदर करना सीखो। किसी वस्तु का आनन्द लेने के लिए पहले उस वस्तु के आदर का उपादान आना चाहिए।

इसी प्रकार 'ई' (E) का अर्थ है एजूकेटेड (Educated) श्रीराम जैसी शिक्षा किसकी हो सकती है–

गुरु गृह गए पढ़न रघुराई। अलपकाल विद्या सब आई।।

इसी प्रकार और (R) का अर्थ है रेग्युलर (Regular) श्रीराम जैसा समय का पालक और कौन होगा–

समय जान गुरु आयसु पाई। लेन प्रसून चले दोउ भाई।।

ओ (O) का अर्थ है ओबीडिएण्ट (Obedient) प्रभु जैसा आज्ञाकारी कौन होगा भला!

हम पितु बचन मान बन आए।।

देखिये, क्या सुन्दर व्याख्या गोस्वामी जी करते हैं। गोस्वामी जी कहते हैं कि मैंने उत्प्रेक्षा की है कि **शत्रुघ्न जी अर्थ, लक्ष्मण जी धर्म, भरत जी काम और राम जी मोक्ष हैं।** मोक्ष क्या है? यह जानने के लिए भगवान राम जी का जीवन देख लो, समझ में आ जाएगा। काम क्या है? यह जानने के लिए भरत जी को देखो तो समझ में आ जाएगा कि काम क्या है? यह काम है पुरुषार्थ और पुरुष को पुरुषार्थ की इच्छा करनी चाहिए। श्रीमद्भागवत जी के प्रथम स्कन्ध के पाँचवें अध्याय के अट्ठारहवें श्लोक में भगवान वेदव्यास जी ने कहा—

तस्यैव हेतोः प्रयतेत कोविदो
न लभ्यते यद्भ्रमतामुपर्यधः।
तल्लभ्यते दुःखवदन्यतः सुखम्
कालेन सर्वत्र गभीररंहसा।।

भागवत १/५/१८

बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि वह उसी वस्तु की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करे, जो तिनके से लेकर ब्रह्मा पर्यन्त समस्त ऊँची नीची योनियों में कर्मों के फलस्वरूप आने–जाने पर भी स्वयं प्राप्त नहीं होती। संसार के विषय सुख तो जैसे बिना चेष्टा के दुःख मिलते हैं वैसे ही कर्म के फलस्वरूप में अचिन्त्यगति समय के फेर से सबको सर्वत्र स्वभाव से ही मिल जाते हैं।

व्यक्ति को उसी के लिए यत्न करना चाहिए जो हमारे प्रारब्ध से नहीं मिल सकता। एक बार मैंने अपने एक ज्योतिषी मित्र से पूछा कि मेरे हाथ में रामजी के दर्शन की रेखा लिखी है? तब उन्होंने कहा कि गुरुजी, सब कुछ हाथ में लिखा रहता है केवल भगवान के दर्शन की बात नहीं लिखी जाती क्योंकि और सब तो कर्मसाध्य है परन्तु भगवान का दर्शन तो उनकी कृपा से ही हो सकता है, वह तो कृपासाध्य है, कर्म साध्य नहीं। इसलिए हमको उसके लिए यत्न करना चाहिए, जो हमारे प्रारब्ध से नहीं मिलता। सम्पत्ति हमारे प्रारब्ध से मिलेगी ही मिलेगी, यदि हम न चाहें तो भी मिलेगी। सुख के

बाद दुख और दुख के बाद सुख आएगा ही। जैसे रात के बाद दिन का आना अनिवार्य है और दिन के पश्चात् रात का आना सत्य है, हमारे चाहने या न चाहने से कोई अन्तर नहीं पड़ता। तो जिसको आना ही है, उसके लिए यत्न क्यों करें? हाँ जिसका आना निश्चित नहीं है, यत्न तो उसके लिए करना चाहिए। भगवान का प्रेम हमारा सबसे बड़ा पुरुषार्थ है और इसको पाने के लिए हमें यत्न करना चाहिए। रामचरितमानस जी में कहा गया है—

सखा परम परमारथ एहू। मन क्रम बचन राम पद नेहू।।

अयोध्याकाण्ड में दोहा क्र० तिरानबे (९३) की छठवीं पंक्ति में कुमार लक्ष्मण निषाद को समझाते हुए कहते हैं कि सखा! मोक्ष तो परमार्थ है और प्रभु-प्रेम, परम परमार्थ है—

सन्महत् परमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः।

मन से, कर्म से, वाणी से, श्रीराम के चरणों में प्रेम बहुत कठिन है। मैं तो यह मानता हूँ कि भगवान का मिलना सरल है पर भगवान का प्रेम मिलना बहुत कठिन है। ये प्रेम सबको नहीं मिलता। यह तो मीरा को मिल सकता है, जो यह कहने को तैयार है—

बाला मैं बैरागिन हूँगी।
जेहिं भेषा मेरो साहिब रीझै, सोई भेष धरूँगी
मैं बैरागिन हूँगी।

भगवान तो बैरागिन को ही मिल सकते हैं। जिसके जीवन में संसार की किसी भी वस्तु के प्रति थोड़ा सा भी राग होगा, वह भगवदनुराग का बिल्कुल भी अधिकारी नहीं हो सकता। यह संसार का राग खटाई और भगवदनुराग दूध है। जैसे दूध में खटाई पड़ते ही दूध फट जाता है, उसी प्रकार भगवद् प्रेम के साथ यदि संसार जुड़ गया, तब कुछ नहीं हो सकता। सिंहनी का दूध स्वर्णपात्र में ही ठहर सकता है। इसी प्रकार भगवद्विरह से तपकर, जिसका हृदय सोना हो गया, वहीं भगवदनुराग ठहर पाता है।

हमारे राघवेन्द्र सरकार की सुन्दरता पर मुग्ध शूर्पणखा, जब सीता जी का अपमान करने पर तुल गई, तब प्रभु ने उसको दण्डित किया। तब शूर्पणखा खरदूषण को लाई जो जीरो हैं। अरे, नायक तो हमारे राम ही हो सकते हैं। मैं जरा आनन्द ले रहा हूँ। अब, चौबीस (२४) अवतारों में इतना गर्व तो चित्रकूट को प्राप्त है कि चित्रकूट-विहारी ही

महाकाव्य का नायक बन सकता है।

राजे भी देखे महाराजे भी देखे
मेरे राम जैसा कोई राजा न देखा
त्यागी भी देखे महात्यागी भी देखे
मेरे राम जैसा कोई त्यागी न देखा, मेरे राम जैसा।।
देवता भी देखे महादेवता भी देखे
मेरे राम जैसा कोई देवता न देखा, मेरे राम जैसा।

खरदूषण की चौदह सहस्र सेना, आवेश में उद्धत होकर, उस अनन्त सौन्दर्य माधुर्य, प्रशान्त महासागर की कल्लोलिनी समुज्ज्वलित मङ्गलमय, कोटि कोटि कन्दर्प लोचन, लोभनीया सुषमा के उस पारावार के कल्लोल का समास्वादन करती हुई चकित हुई। उनके हाथ से बाण गिरने लगे। सैनिकों ने सोचा कि लगता है कि आज जरा ज्यादा ही छन गई होगी, इसलिए गिर रहे हैं बाण। सैनिकों ने पूछा–आज ज्यादा शराब पी ली है क्या, महाराज!

खरदूषण ने कहा–वास्तव में अब तक 'रम' पीते थे पर आज 'राम' पी लिया है। रम पीने वाले भी गिरते हैं और राम पीने वाले भी गिरते हैं, किन्तु रम पीने वाले गिरते हैं नाले में और राम पीने वाले गिरते हैं राम जी के चरणों में–

चरन परेउ प्रेमाकुल त्राहि त्राहि भगवन्त।

दोनों ही प्रकार के छानने वाले झूमते हैं। शराब तो दोनों होती हैं पर राम की शराब अद्‌भुत होती है। खरदूषण ने कहा–

नाग असुर सुर नर मुनि जेते। देखे जिते हते हम तेते।
हम भरि जनम सुनहु सब भाई। देखी असि नहिं सुन्दरताई।।

खरदूषण को लगा कि ऐसी सुन्दरता हमने नहीं देखी। अब, खरदूषण को अपने कर्त्तव्य का बोध हो रहा है–

जद्यपि भगिनी कीन्ह कुरूपा। बध लायक नहिं पुरुष अनूपा।।

खरदूषण नें कह दिया कि इनका सौन्दर्य इतना पावन है कि ये तो गलत कर ही नहीं सकते। निश्चित रूप से गलती हमारी बहन ने ही की होगी। यह तो हुई राम जी के व्यक्तित्व के आकर्षण की बात। यह रही हमारे हीरो राम के एच फॉर हैण्डसम की व्याख्या।

हीरो शब्द में एच के बाद जो ई शब्द आता है, जिससे हमने अर्थ लिया है एजूकेटेड (Educated) से।

गुरु गृह गए पढ़न रघुराई। अलप काल सब विद्या आई।।

सकल विद्याओं के ज्ञाता राघवेन्द्र जी के समान तो कोई विद्वान हो ही नहीं सकता।

उत्तरोत्तर युक्तीनां वक्ता वाचस्पतिर्यथा।

हीरो शब्द का अगला अक्षर है आर (R) जिससे तात्पर्य है रेग्युलर (Regular) राम जी जितना रेग्युलर कोई हो नहीं सकता—

प्रातकाल उठिके रघुनाथा। मात पिता गुरु नावहिं माथा।

हीरो शब्द का अन्तिम अक्षर है ओ (O) जिससे तात्पर्य है Obedient अर्थात् आज्ञाकारी। राघव जी से अधिक आज्ञाकारी कौन हो सकता है। दुनिया जानती है कि एक बार पिता ने वन जाने को कह दिया, तो वन को भगवान चले गए। आज के बेटों और दशरथ जी के बेटों में यही तो अन्तर है कि आज बाप तरसता है कि मेरा बेटा एक बार तो मेरा कहना मान लेता और राम के पिता तरस गए कि एक बार ही मेरा बेटा मेरी बात टाल देता। इसीलिए तो वो शङ्कर भगवान से प्रार्थना करते हैं कि—

सुमिरि महेसहिं कहहिं निहोरी। बिनती सुनहु सदा सिव मोरी।।
आसुतोष तुम अवढर दानी। आरति हरहु दीन जनु जानी।।
तुम्ह प्रेरक सबके हृदय सो मति रामहि देहु।
बचनु मोर तजि रहहिं घर परिहरि सील सनेहु।।

मानस २/४४

कितना बढ़िया बेटा है! दशरथ जी कहते हैं, हे शिवजी! आप राम जी की बुद्धि को ऐसा कर दीजिये कि वो मेरी बात टालकर घर में ही रहें। मेरे कान तरस रहे हैं कि वो एक बार यह कह दें कि मैं यह काम नहीं करूँगा। इसीलिए तो उस भावुक बाप को यह कह देना पड़ा कि—

हा रघुनन्दन प्रान पिरीते। तुम बिनु जियत बहुत दिन बीते।।

छः दिन ही उनके लिए बहुत थे। राघव जी ने भी गीतावली रामायण में भरत जी से कह दिया था कि भैय्या! मैं पिताजी से उऋण नहीं हो सकता—

निज कर खाल खींच या तनु की, जौं पितु पद पांहुनिहुँ बनाऊँ।
तौं नहिं उऋण होउँ दरसथ तें, कैसे ताके बचन मेटि पति पाऊँ।।

आज के कवि और गोस्वामी जी में यही अन्तर है कि आज का कवि अपने सन्तोष के लिए कविता लिखता है पर गोस्वामी जी की कविता अपने सन्तोष के लिए तो है ही परन्तु उनका स्व बहुत व्यापक है। वह समस्त संसार के सन्तोष के लिए है। उनकी कविता जीवन की कला सिखाती है। जीवन कैसे जियें, यदि यह सीखना है तो रामचरितमानस से सीखिये। इसलिए हमारे राम जी हीरो हैं।

ऐसे राघवेन्द्र राम को, जो पाने की उत्कट इच्छा है, वही यहाँ काम शब्द से व्यवहित हुई है। काम शब्द का पदच्छेद है क+आम। आम शब्द का संस्कृत में अर्थ होता है कच्चा। कं आमं यस्मिन् सः कामः। जहाँ संसार का सुख कच्चा पड़ जाता है, उस भगवत्प्राप्ति की इच्छा को काम कहते हैं। जहाँ संसार के पदार्थ बाधक नहीं बन पाते। कितनी सुन्दर काम की व्याख्या है। काम की व्याख्या सुनाकर विराम लूँगा। बहुत मन करता है कहने का। एक बार किसी ने मुझसे कहा कि जगद्गुरु जी, आप तो इतनी व्याख्या करते हैं।

मैंने कहा कि और लोग तो कथा सुनाते हैं संसार को परन्तु मैं तो संसार को नहीं सुनाता क्योंकि मेरी आँखों के सामने संसार है ही नहीं, तो मैं संसार को क्या सुनाऊँ? मैं यह घोषित करता हूँ कि कथा मुझे इसलिए अच्छी लगती है क्योंकि जो भगवान के दर्शन योगियों को समाधि में होते होंगे, मैं नहीं जानता। मैं यह कह रहा हूँ कि वही दर्शन मुझे कथा में, भगवान के होते हैं। कथा तो हमारी वास्तविकता है और इसमें हम अपने भगवान को निहारते हैं।

देखिये, काम की कितनी सुन्दर व्याख्या है! राज्य देने की बात कही गई। सत्ता किसको नहीं चाहिये? सत्ता में क्या क्या समझौते नहीं होते। सारे के सारे सिद्धान्त धरे के धरे रह जाते हैं। सत्ता एक ऐसी राक्षसी है परन्तु अवध का राज्य सौंपा जा रहा है, इस प्रसङ्ग को देखकर कालिदास झूम गए। यद्यपि कालिदास बहुत कम झूमते हैं और जब वो झूम जाएँ, तो समझो बहुत बड़ी बात हो गई। जो जीवन भर प्राकृत नारी के ही सौन्दर्य पर झूमा, वह 'राम' में झूम गया, बड़ा सौभाग्य है उसका। लगता है कालिदास का भाग्य केवल एक ही बार कुछ क्षण के लिए खुला। कालिदास कुछ क्षण के लिए

झूमे और गोस्वामी तुलसीदास जी का एक भी क्षण ऐसा नहीं गया, जब वे नहीं झूमे, यही दोनों का अन्तर है। कालिदास क्षणभर को राममय बने और तुलसीदास जी का प्रत्येक क्षण ही राममय रहा। रघुवंश महाकाव्य के तेरहवें सर्ग के तिहत्तवें श्लोक में कालिदास झूमे, जब भरत जी ने सीताजी को प्रणाम किया, तब कालिदास ने कहा—

लङ्केश्वरप्रणतिभङ्गदृढ़व्रतं तद्,
वन्द्यं युगं चरणयोर्जनकात्मजायाः।
ज्येष्ठानुवृत्तिजटिलञ्च शिरोऽस्य साधो,-
रन्योन्य पावनमभूदुभयं समेत्य।।

आज मैंने दो वस्तुएँ अलौकिक देखीं, भरत के जैसा संसार में मैनें किसी का सिर नहीं देखा और सीता जी के जैसा संसार में किसी का चरण नहीं देखा। जनकात्मजा के वे चरण, जिन्होंने त्रिलोक दुर्लभ लङ्का के राज्य को ठुकरा दिया।

लङ्कापति ने कहा—सीते! एक बार मुझे देख लो! लंङ्का का सारा साम्राज्य तुम्हारे चरणों के आश्रित रहेगा। मन्दोदरी आदि अनेक अनिन्द्य सुन्दरियाँ तुम्हारे चरणों की धूल चाटने को तरसेंगीं।

सीता ने कहा—नहीं, मैं अवध की सीता हूँ। भारत की नारी हूँ—

चरणेनापि सव्येन न स्पृशेयं निशाचरम्।

अरे रावण, मैं तुझे बाएँ चरण से भी नहीं छू सकती। यह व्यक्तित्व है हमारी बहूरानी का, जिन्होंने रावण के राज्य को अपने चरण से ठुकरा दिया—

न मानुषी राक्षसस्य पत्नी भवितुमर्हति।
कामं खादत मां सर्वा न करिष्यामि वो वचः।।

अरे, जिसने अग्नि को चुनौती दी। उन्होंने रावण को कभी भी सकारात्मक उत्तर दिया ही नहीं, सदा ही नकारात्मक उत्तर दिया।

सीता जी ने अग्नि से कहा—यदि मेरे मन में, मन, वाणी, शरीर से, सपने में भी राम के अतिरिक्त कोई नहीं आया, तब तुम चन्दन बनो। यह सीताजी ने नहीं कहा कि यदि मैंने राम के अतिरिक्त किसी को जाना हो, तो मुझे जला दो। अरे, जब जाना ही नहीं, तो जाना हो, ऐसा क्यों कहेंगी सीताजी? सीताजी ने सम्भावना में भी सकारात्मकता नहीं स्वीकारी। हमारी सीता जी जैसी जगत में कोई नारी होगी? सीताजी के गुण ही ऐसे हैं।

तो सीताजी के जैसे चरण किसी के नहीं और भरत जी जैसा सिर किसी का नहीं। सीताजी के चरण ने यदि रावण का राज्य ठुकराया तो भरत के सिर ने अयोध्या का राज्य ठुकराया और दोनों ही राज्य ठुकराने वाले देवर और भाभी, एक दूसरे से मिले। भारी के चरण से जब देवर का सिर मिला तो–**'अन्योन्यपावनमभूदुभयं समेत्य'**

मोहि राजु हठि दैहहु जबहीं। रसा रसातल जैहहि तबहीं।।

अद्‌भुत है। क्या विचित्र बात है! आप काम की व्याख्या देखिये–

आपनि दारुन दीनता कहेउँ सबन्हि सिरु नाइ।
बिनु देखे रघुनाथ पद जिय की जरनि न जाय।।

अर्थात् भगवत् चरणारविन्द दिदृक्षा ही काम है। भगवान के चरण कमलों को देखने की तलफन ही काम है और उसी काम ने जब शरीर धारण कर लिया तो वही भरत बन गया। अर्थात् भगवान के चरणारविन्द को देखने की जो तलफन थी, उसी ने भरत का शरीर धारण कर लिया। अर्थात् भगवद् चरणारविन्द दिदृक्षावच्छिन्न चैतन्य ही भरत है। उस चैतन्य की अवच्छेदिका भगवद् चरणारविन्द दिदृक्षा है। भरत चित्रकूट के लिए चल दिये–

भरत चले चित्रकूट हो रामा राम को मनाने
राम को मनाने भाभी सीता को रिझाने
राम को मनाने माता सीता को लिवाने। भरत.....
तन पुलकित अति सजल नयन भर
सिर पर लसे जटाजूट हो रामा, राम को मनाने। भरत.....
राम को मनाने, भैय्या लखन को लिवाने। भरत.....
छन विलपत छन प्रेम मगन मन
मन कर धीरज छूट हो रामा, राम को मनाने। भरत.....
रामभद्र आचारज सुमिरत,
लाभ जनम कर लूट हो रामा, राम को मनाने। भरत....

इस प्रकार यहाँ स्पष्ट हो गया कि वह काम यहाँ पुरुषार्थ नहीं है, जिसको हम आज जान रहे हैं। भगवद् चरणारविन्द दिदृक्षा अर्थात् भगवान के चरणारविन्द को देखने की इच्छा ही काम है और यही पुरुषार्थ है।

मुदित अवधपति सकल सुत बधुन्ह समेत निहारि।
जनु पाए महिपाल मनि क्रियन्ह सहित फल चारि।।

शेष चर्चा कल की जाएगी।
सियावर रामचन्द्र की जय।
पवन सुत हनुमान की जय।
द्वितीय वाक् पुष्पाञ्जलि सम्पूर्ण

।।श्री राघवः शन्तनोतु।।

।। श्रीमद्राघवो विजयतेतराम् ।।

अथ तृतीय वाक् पुष्पाञ्जलि

श्री तुलसीपीठ आमोदवन, चित्रकूट

दिनाङ्क २०.३.९९

मङ्गलाचरण

आगच्छवायुसूनो त्वं मया रामायणी कथा।
प्रारभ्यते भव श्रोता गृहाणासनमुत्तमम्।।

जोरी रहे जुग जोरी बनी रहे
वन आमोद ललित मन्दिर महँ
प्रभु सँग जनक किशोरी बनी रहे। जोरी रहे.....
तुलसीपीठ विहार करत नित
भाव विभाव विभोरी बनी रहे। जोरी रहे.....
मरकत कनक जलद दामिनि की
सुषमा सहस करोरी बनी रहे। जोरी रहे.....
चित्रकूट शुचि कानन आनन
राघव चन्द्र चकोरी बनी रहे। जोरी रहे.....
'रामभद्र' आचारज सरवस
नयनन नित चित चोरी बनी रहे। जोरी रहे.....

जानीमः परमं तत्वं कौसल्योत्सङ्ग लालितम्।
धूलि धूसर सर्वाङ्गं राघवं लघुविग्रहम्।।

श्री रामचन्द्र रघुपुङ्गव राजवर्य
राजेन्द्र राम रघुनायक राघवेश।
राजाधिराज रघुनन्दन रामभद्र
दासोऽहमद्य भवतः शरणागतोऽस्मि।।

शरणं मिथिलेशकन्यका शरणं मे रघुवंश भूषणः।
शरणं पुनरेवतावुभौ शरणं नान्यदुपैमिदैवतम्।।

जयति कविकुमुदचन्द्रो हुलसीहर्षवर्धनस्तुलसी।
सुजनचकोरकदम्बो यत्कविताकौमुदीं पिबति।।

श्री सीतानाथ समारम्भां श्री रामानन्दार्यमध्यमाम्।
अस्मदाचार्य पर्यन्तां वन्दे श्रीगुरुपरम्पराम्।।

सीताराम जय सीताराम सीताराम जय सीताराम।
सीताराम जय सीताराम सीताराम जय सीताराम।

श्रीगुरुचरन सरोज रज निज मन मुकुर सुधारि।
बरनउँ रघुवर बिमल जसु जो दायक फल चारि।।

।। सियावर रामचन्द्र भगवान की जय।।

श्री चित्रकूट बिहारी बिहारिणी जू की जय।।

जय सभी को बोलनी चाहिए।

एतन्निर्विद्यमानानां इच्छितामकुतो भयम्।
योगिनां नृपनिर्णीतं हरेर्नामानुकीर्तनम्।।

अशरण-शरण, परिकलित राजीव चरण, भक्त भयसङ्कटशोक हरण, कारण करण, तारण-तरण, नवल राजीवचरण, मैथिलीहृदयाभरण, अकारण करुणा वरुणालय, चिन्मय, नित्य, विशुद्ध बुद्ध, परिपूर्णतम परात्पर परमात्मा जगदीश्वर, सर्वाधार, सर्वशरण्य, सर्वस्वरूप, सर्वेश्वर भगवान श्रीराम ही अन्ततोगत्वा एकमात्र गन्तव्य हैं। इसलिये आइये, बड़ी सुन्दर चर्चा के साथ, बड़ी तन्मयता को, अन्तरङ्ग तरङ्गों के साथ तीन घण्टे के लिए अब हम उस निरवधिक निरस्तसकलहेयगुणप्रत्यनीक, असमौर्ध्वानन्दसम्पन्न, समस्त-कल्याण गुणगणैकनिलय, भारतभारतीसर्वस्व उस परमप्रभु के चरणारविन्द मकरन्द सीकर के समास्वादन की पात्रता प्राप्त करने का प्रयास करें। देखिये एक बड़ी सुन्दर बात है कि अन्य तीर्थों या अन्य स्थानों में श्रोता दूसरे होते हैं और वक्ता दूसरे होते हैं परन्तु हमारा आपका सौभाग्य है कि इस चित्रकूट में श्रोता हनुमान जी तो हैं ही परन्तु सबसे बड़े हर्ष की बात तो यह है कि चित्रकूट में भगवान राम निरन्तर स्वयं श्रोता होते हैं।

वेदी पर मुनि साधु समाजू। सीय सहित राजत रघुराजू।।

और यहाँ तो—

तुलसी तरुवर विविध सुहाए। कहुँ कहुँ सिय कहुँ लखन लगाए।।

अनेक तुलसी के वृक्षों को बड़ी बहूरानी जी ने लगाया।

वट छाया बेदिका सुहाई। सिय निज पानि सरोज बनाई।।

अपने कर कमलों से हमारी सीताजी ने सुन्दर सी वेदिका बनाई है। अयोध्या की राजरानी हमारे चित्रकूट में इतनी सहज बनीं कि अपने कर कमलों से मन्दाकिनी से जल लाकर तुलसी के बिरवे सींचे। दूर से भरत जी ने जब यह देखा, अरे! भाभी माँ क्या कर रही हैं? उनका हृदय चीत्कार कर उठा—

योऽस्याः करः श्राम्यति दर्पणेति,
सनैति खेदं कलशं वहन्त्या।
कष्टं वनं स्त्रीजनसौ कुमार्यम्,
समं लताभिः कठिनी करोति।।

अरे! जिन जगज्जननी जनकनन्दिनी जी के हाथ दर्पण उठाने में भी थक जाते थे, आज वही सीताजी अपने दोनों कर कमलों से, मन्दाकिनी जल से पूरित घड़े उठा उठाकर ला रही हैं। उनको थकान नहीं होती क्या? मिथिलाधिराज ने उन्हें कितने प्रेम से पाला!

कभी-कभी मिथिला वालों से मेरी नोक-झोंक हो जाया करती है। हम मिथिला वालों से कहते हैं कि तुम्हारे यहाँ से अधिक सम्मान हमारे यहाँ सीताजी का हुआ। मिथिला में तो फुलवारी में सीताजी पैदल चलकर आई थीं।

पूजन गौरि सखी लै आईं। करत प्रकास फिरत फुलवाई।।

मिथिला में तो सीताजी पैदल चलीं पर हमारी अयोध्या में तो बड़ी अम्मा कौसल्या जी ने बहूरानी जी को पैदल चलने ही नहीं दिया—

पलँग पीठ तजि गोद हिंडोरा। सिय न दीन्ह पग अवनि कठोरा।।

सीताजी का अवध में कितना सम्मान है! भगवती कौसल्या जी पहले उन्हें पलँग पर बैठाती हैं फिर भोजन के समय उन्हें गोद में लेकर पाटे पर बैठाती हैं और फिर गोद

में लेकर उन्हें घुमाती हैं और फिर हिण्डोले में लेकर डाल देती हैं। अर्थात् सीताजी को मिथिला से आए बारह वर्ष हो गए और इतने वर्षों में भगवती कौसल्या जी ने, एक भी क्षण सीताजी को पृथ्वी पर चरण रखने ही नहीं दिया।

आप कहेंगे कि फिर सीताजी का वनवास कैसे हुआ? यह बात बिल्कुल गलत है। इसका खण्डन मैंने लिखा है **'सीता निर्वासन नहीं'** नामक पुस्तक में। सीताजी के द्वितीय वनवास की कल्पना बिल्कुल निराधार है, अशास्त्रीय है और इसी आधार पर मैंने बड़ा अनुसन्धानात्मक ग्रन्थ लिखा था कि बहूरानी जी का वनवास कैसा?

उमा रमा ब्रह्मादि वन्दिता। जगदम्बा सन्ततमनिन्दिता।।

सन्ततमनिन्दिता, सीताजी की कभी निन्दा हुई ही नहीं। यह तो एक राक्षस कवि था गुणाढ्य, जिसने अपने पाली भाषा में बड्डुकहा नामक ग्रन्थ में भगवान राम को लाञ्छित करने के लिए सीता वनवास की कथा जोड़ी और बिना समझे बूझे जैनों का पक्षपाती होने के कारण आचार्य **क्षेमेन्द्र** ने उसको **रामायण मञ्जरी** में लिपिबद्ध किया औंर इस कथा को वाल्मीकि रामायण में उत्तरकाण्ड के रूप में जोड़ दिया गया। उत्तरकाण्ड तो वाल्मीकि रामायण में था ही नहीं। 'युद्धकाण्ड' तक में ही वाल्मीकि रामायण की कथा समाप्त हो रही थी। इसलिए, हमारी सीताजी का वनवास कभी हुआ ही नहीं। लव-कुश का जन्म श्रीअयोध्या में ही हुआ—

कौसल्यादि सासु गृह माहीं। सेवहिं तिन्हहिं मानु मद नाहीं।।

सबसे परिहास की बात तो यह है कि उत्तरकाण्ड में वाल्मीकि रामायण में यह बात आई है कि जब सीताजी का वनवास हो गया और रामचन्द्र जी अश्वमेध यज्ञ कर रहे थे, तो वहाँ लिखा है कि सीताजी की सोने की प्रतिमा बनवाकर उसमें प्राण-प्रतिष्ठा की गई। अब आप उन मूर्ख चूड़ामणियों से पूछिये कि प्राण प्रतिष्ठा होती कब है? क्या किसी जीवित व्यक्ति की प्राण प्रतिष्ठा की जाती है? जो देवत्व को प्राप्त हो गया हो, उसी की तो प्राण-प्रतिष्ठा होगी। यदि सीताजी वनवास में विराज रही हैं तो उनकी प्राण-प्रतिष्ठा सोने की मूर्ति में कैसे की जा सकती है? आप एक अश्वमेध यज्ञ की बात करते हैं, स्वयं स्पष्ट है कि **'कोटिन्ह बाजिमेध प्रभु कीन्हा।'** भगवान राम ने करोड़ों अश्वमेध यज्ञ किये थे और 'वाल्मीकि रामायण' के युद्धकाण्ड में भगवान राम ने प्रतिज्ञा की थी—

विशुद्धा त्रिषु लोकेषु मैथिली जनकात्मजा।
न विहातुं मया शक्या कीर्तिरात्मवता यथा।।
६/११८/२०

अग्नि के सामने भगवान राम ने ये प्रतिज्ञा की थी कि सीताजी को मैं उसी प्रकार नहीं छोड़ सकता, जिस प्रकार कोई यशस्वी अपनी कीर्ति को नहीं छोड़ता। एक ओर अग्नि के समक्ष भगवान राम सीताजी के सर्वदा स्वीकारत्व की प्रतिज्ञा करते हैं तो दूसरी ओर क्या एक धोबी के कहने से छोड़ देंगे? यह कौन सी बात हुई कि धोबी के कहने से छोड़ दो और दर्जी के कहने से स्वीकार कर लो? यदि आप यह कहें कि यह प्रजा रञ्जन का आदर्श है, तो यह कौन सा प्रजा रञ्जन हुआ? यदि किसी उल्लू ने यह कह दिया कि आज सूर्यनारायण उदित नहीं हुए, तो क्या प्रजा अर्घ्य देना बन्द कर देगी? प्रजारञ्जन से तात्पर्य यह है कि यदि प्रजा न्यायोचित बात कहे, तो राजा उसे स्वीकार कर ले।

इसलिए किसी भी तर्क पर सीताजी का द्वितीय वनवास सिद्ध नहीं होता और आश्चर्य की बात तो यह है कि दस हजार वर्ष तक तो किसी ने कुछ नहीं कहा और दस हजार वर्षों के बाद धोबी के मन में यह बात क्यों सूझी? इसका एक सबसे बढ़िया तर्क आप लोगों को बताता हूँ, महर्षि वाल्मीकि लिखते हैं कि—

ददृशुस्तां विशालाक्षीं पतन्तीं हव्यवाहनम्।
सीतां सर्वाणि भूतानि रुक्मवेदिनिभां तदा।।
वा०रा०/१६/११६/३२

सोने से बनी हुई वेदी के समान कान्तिमती, विशाल लोचना सीतादेवी को उस समय सम्पूर्ण भूतों ने आग में गिरते देखा।

जब सीताजी की अग्नि परीक्षा हो रही थी तो उस दृश्य को संसार के सब लोगों ने देखा, तब संसार में धोबी नहीं था क्या? उस समय वह धूमकेतू सो रहा था क्या, जो उसने नहीं देखा। इसलिए पौर्वापर्य के प्रसङ्गों की पर्यालोचना से यह बिल्कुल सिद्ध हो जाता है कि हमारी बहूरानी जी का द्वितीय वनवास हुआ ही नहीं।

आज समस्या यह है कि लोग पढ़ते ही नहीं हैं। सुन सुनकर इनका जीवन बीत जाता है। किसी ने कहा कि कौआ कान ले जा रहा है, तो पहले कान छूकर नहीं देखेंगे और

कौए पर गोली चला देंगे। किसी ने कुछ कह दिया तो उसके पीछे पड़ गए। अरे पहले वस्तुस्थिति तो देखो कि शास्त्र क्या कहते हैं। यद्यपि मेरी बात से बहुत से लोग असन्तुष्ट होते हैं परन्तु हम तो कहते है, ठीक है। हम तो शास्त्रज्ञ हैं। शास्त्र को न्याय देना हमारा धर्म है। बहुत सी बहनें रामायण जी का पाठ इसलिए नहीं करतीं कि जब हमारी सीताजी को प्रभु ने निकाल दिया तो रामायण जी को क्यों पढ़ा जाए? यह बात बिल्कुल गलत है। मैं इस बात का आप लोगों को विश्वास दिलाता हूँ कि नारी जगत का राम जी ने जितना सम्मान किया है, उतना सम्मान नारियों को, त्रिलोक में किसी ने नहीं दिया। यदि राम जी ने नारी–जगत का सम्मान न किया होता तो अयोध्याकाण्ड तक ही रामायण होती। अरण्यकाण्ड से आगे कथा बढ़ाने का तात्पर्य यह है कि नारी जगत का सम्मान किया है प्रभु श्रीराम ने।

क्या आप यह सोचते हैं कि सीताजी का हरण रावण ने किया? बिल्कुल गलत है। रावण सीताजी का हरण कर ही नहीं सकता था। उसने तो सीताजी की परछाईं का हरण किया था। बिल्कुल सरल बोल रहा हूँ, जिससे आप समझ जाएँ। आपके सामने मैं क्या पाण्डित्य दिखाऊँ। हाँ, यदि पाण्डित्य दिदृक्षा हो तो फिर क्या कहना! मैं आपको विश्वास दिलात हूँ कि जिस सिंहासन पर मैं बैठा हूँ, वह मेरा सिंहासन नहीं है, यह हमारी आचार्य परम्परा से प्राप्त सिंहासन है, आद्य रामानन्दाचार्य का सिंहासन है और स्वयं सीताजी ने ही, आद्य रामानन्दाचार्य की परम्परा को चलाया। हमारी प्रथम आचार्या सीताजी हैं। मैं उस सम्पूर्ण आचार्यत्व की दुहाई देकर कह रहा हूँ कि राम कथा में यह द्वितीय सीता बनवास हुआ ही नहीं, यह जोड़ा गया है। मैं यह बात इसलिए स्पष्ट कर रहा हूँ कि जिससे रामजी के प्रति कोई सन्देह न रह जाए। वेद्व्यास जी ने प्रतिज्ञा पूर्वक कहा कि—

यन्न भारते तन्न भारते।

अर्थात् जो महाभारत में नहीं है, वह भारतवर्ष में कभी घटा ही नहीं, यह वेदव्यास जी कह रहे हैं और सौभाग्य से सीता वनवास महाभारत में नहीं लिखा गया। यह ब्रह्मास्त्र है। यदि वेदव्यास जी यह प्रतिज्ञा करते हैं कि '**यन्न भारते तन्न भारते**' तो मैं भी प्रतिज्ञा करता हूँ कि '**यन्न मानसे तन्न मानसे**' अर्थात् जो श्रीरामचरितमानस में नहीं लिखा गया, वह आज तक के मानव के मानस में कभी नहीं आया। इसलिए एक नियम है कि प्रत्येक ग्रन्थ के आरम्भ में एक सूची होती है। यदि विषयसूची न हो तो वह ग्रन्थ,

ग्रन्थ नहीं माना जाता और विषयसूची में जितना लिखा रहता है, ग्रन्थ में बस उतना ही लिखा हुआ होता है। यदि उससे अतिरिक्त लिखा जाए, तो जान लो कि वह **क्षेपक** है। श्री वाल्मीकि रामायण की विषयसूची है **मूलरामायण**। मूलरामायण को सौ श्लोकों में, नारद जी ने वाल्मीकि जी को सुनाया। संयोग देखिये कि उस सारी रामकथा की विषयसूची मूलरामायण में लिखी है परन्तु सीता वनवास उस विषयसूची में कहीं नहीं लिखा है। इस तर्क से भी यह सिद्ध होता है कि सीताजी का दूसरा वनवास नहीं हुआ था।

एक बहुत अच्छी बात बताता हूँ कि प्राचीन ग्रन्थों की एक परम्परा है कि जब ग्रन्थ समाप्त होता है तो उसकी 'फलश्रुति' लिखी जाती है कि ऐसा करने से यह फल मिलेगा। जैसे सत्यनारायण कथा में फलश्रुति है। दुर्गासप्तशी में फलश्रुति है—

सर्वाबाधा विनिर्मुक्तो धनधान्य सुतान्वितः।
मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः।।

इसी प्रकार वाल्कीकि रामायण के युद्धकाण्ड में ही फलश्रुति लिख दी गई है—

एवमेतत् पुरावृत्तमाख्यानं भद्रमस्तु वः।
अभ्याहरत विश्रब्धं बलं विष्णोश्च वर्धताम्।।

महर्षि वाल्मीकि जी कहते हैं कि इतना ही इतिहास पहले घटा, जो मैंने लिखा है (**एवमेतत् पुरावृत्तमाख्यानम्**) इसको (**विश्रब्धं अभ्याहरत**) तुम लोग विश्वासपूर्वक गाओ। '**वः भद्रमस्तु**' तुम लोगों का कल्याण होवे और '**बलं विष्णोश्च वर्धताम्**' और भगवान राघवेन्द्र का बल निरन्तर बढ़ता रहे।

यदि युद्धकाण्ड में ही उन्होंने प्रतिज्ञा ली कि इतना ही घटा है, जो मैंने लिखा है, तो फिर दाल भात में मूसरचन्द की भाँति, यह उत्तरकाण्ड कहाँ से फाट पड़ा। इस तथ्य से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि सीताजी का दूसरा वनवास हुआ ही नहीं। यह तो रामजी को बदनाम करने के लिए मूर्खों द्वारा रचा गया एक षड़यन्त्र है पर राम जी क्यों बदनाम होंगे? वह तो नित्य शाश्वत हैं—

राम तुम्हारा वृत्त स्वयं ही काव्य है।
कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है।।

ऐसे श्रीरामचन्द्र जी की आराधना करिये और विश्वासपूर्वक श्रीरामचरितमानस जी

का पाठ करिये। यह तो रामायण है। रामायण माने होता है राम का अयन। यहाँ यदि राम के अयन की बात होती तो रामभद्रायण या रामचन्द्रायण लिखा जाता। संस्कृत में सीताजी का नाम है रामा। तो इस प्रकार **रामाया: अयनं इति रामायणम्** अर्थात् रामा माने सीताजी का ही अयन अर्थात् घर है।

कृत्स्नं रामायणं काव्यं सीतायाश्चरितं महत्।

सम्पूर्ण रामायण काव्य सीताजी का चरित्र है। इसलिए यह रामायण है और सीताजी का घर है। **'रमयति रामचन्द्रं या सा रामा'** इसलिए, यहाँ पर रामा कहा नहीं तो **'सीतायनम'** भी कह सकते थे, पर उनको आनन्द नहीं आ रहा था। उनको ओजस्विता लानी थी अत: णत्व कर दिया। उन्हें तो सीताजी को एक वीर कन्या, वीर वधू, वीर भार्या के रूप में प्रस्तुत करना था। सीता सामान्य स्त्री तो थी नहीं। जिस धनुष को बड़े-बड़े धुरन्धर नहीं उठा सके उसको वो घोड़ा बनाकर खींचा करती थीं, उसी धनुष को बारम्बार पृथ्वी पर घसीटती थीं। तभी तो जनक जी ने जब यह देखा कि इतनी शक्तिमती, यह तो कोई अलौकिक कन्या है। तब जनक जी ने यह कह दिया कि जो इस धनुष को तोड़ेगा, उसी के साथ इस कन्या का विवाह होगा। इसलिए गोस्वामी जी ने सीताजी का परिचय लिखते हुए कहा—

बाम भाग सोभति अनुकूला। आदि सक्ति छवि निधि जग मूला।।
जासु अंस उपजहिं गुन खानी। अगनित उमा रमा ब्रह्माणी।।
भृकुटि विलास जासु जग होई। राम बाम दिसि सीता सोई।।

सीताजी का कितना सुन्दर परिचय दे रहे हैं कि **'बाम भाग सोभति अनुकूला'** कितना विरोधाभास है यहाँ पर कि कोई भी व्यक्ति वाम भाग में आकर अनुकूल नहीं रहता, वह प्रतिकूल होता है किन्तु धन्य हैं जनकनन्दिनीजी, जो राघव के वामभाग में रहकर भी अनुकूल हैं, प्रतिकूल नहीं। अब प्रश्न हुआ कैसे? तब गोस्वामी जी ने कहा—**'आदि सक्ति छवि निधि जगमूला'**, वह आदिशक्ति हैं, सौन्दर्य की निधि हैं और जगत का मूल कारण हैं। आगे कहते हैं कि वह साधारण नहीं है—**जासु अंस उपजहिं गुन खानी'** यहाँ गीता प्रेस ने बहुत अनुचित लिखा है कि **'अगनित लच्छि उमा ब्रह्माणी'** पर सही पाठ है **'अगनित उमा रमा ब्रह्माणी'** इनके एक एक अंश से करोड़ों-करोड़ों पार्वतियों, करोड़ों-करोड़ों लक्ष्मियों और करोड़ों-करोड़ों सरस्वतियों

का जन्म होता है। इनके भ्रूभङ्ग मात्र से सारे संसार का सृजन होता है, **'रामबाम दिसि सीता सोई'**, वही भगवती जनकनन्दिनी, जगज्जनी श्री राघवेन्द्र सरकार के वामभाग में विराज रही हैं **"सीतासमारोपितवामभागम्'**, यह ध्यान रखने की बात है। लक्ष्मी और सीता में एक ही तो अन्तर है कि लक्ष्मी नारायण के वाम भाग में नहीं रहतीं प्रत्युत लक्ष्मी जी नारायण के दाहिने भाग में रहती हैं। सीताजी राम जी के वामभाग में इसलिए रहती हैं, जिससे कोई भी जीव भूलकर भी रामजी के वाम भाग में न जा सके अर्थात् राम जी के विरुद्ध नहीं जा सके। जीव के राम-विरोध को दूर करने के लिए, भगवती सीताजी निरन्तर राघवेन्द्र जी के वाम भाग में विराजमान रहती हैं। वे कहती हैं कि हे जीव! मैं प्रभु के वाम भाग में आ गई हूँ क्योंकि मैं तो प्रभु के वामभाग में रहकर भी अनुकूल रह सकती हूँ किन्तु तुम्हारा सामर्थ्य नहीं कि तुम उनके वामभाग में आकर अनुकूल रह सको। अत: तुम प्रभु के दाहिनी ओर ही रहा करो। कितना सुन्दर है—

भृकुटि विलास जासु जग होई। राम बाम दिसि सीता सोई।।

चित्रकूट उपासना की पूर्णता है। अयोध्या में केवल रामजी की उपासना है—

जपहिं राम उर ध्यान धरि सुन्दर स्याम सरीर।

मिथिला में श्रीसीता और रामजी की उपासना है किन्तु हमारा चित्रकूट ऐसा है, जहाँ राम सीता और लक्ष्मण इन तीनों की उपासना है। यदि इस प्रकार कहें तो अच्छा लगेगा कि अयोध्या में अद्वैतोपासना है। मिथिला में वेदान्ती होने पर भी द्वैतोपासना है किन्तु चित्रकूट ऐसा है, जहाँ विशिष्टाद्वैतोपासना है, अर्थात् त्रैतोपासना है—

राम बाम दिसि जानकी लखन दाहिनी ओर।
ध्यान सकल कल्यानमय सुरतरु तुलसी तोर।।

श्रीरामचन्द्र जी के वामभाग में जनकनन्दिनी जी, दाहिने भाग में श्री लक्ष्मण जी और दोनों के बीच में भगवान राम, यह विशिष्टाद्वैतोपासना है। चिदचिद्विशिष्टाद्वैत है।

'विशिष्टञ्च विशिष्टञ्च विशिष्टे तयोरद्वैतं विशिष्टाद्वैतम्' हमारे यहाँ दो ब्रह्म हैं—

१.कार्य ब्रह्म

२.कारण ब्रह्म

प्रकट ब्रह्म और अप्रकट ब्रह्म। श्रीरामचन्द्र जी अप्रकट ब्रह्म हैं और श्रीसीताजी प्रकट ब्रह्म हैं। दोनों विशिष्ट हैं। चिदचिदविशिष्ट रामचन्द्र जी भी हैं और चिदचिदविशिष्ट श्रीसीताजी भी हैं। रामचन्द्र जी, सीताजी और लक्ष्मण जी से विशिष्ट हैं और सीताजी लक्ष्मण और हनुमान जी से विशिष्ट हैं। दोनों ही चिदचिदविशिष्ट हैं। इसलिए उन सीता राम का अद्वैत ही विशिष्टाद्वैत है—

गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।

यह दार्शनिक विषय है। किसीको सम्मान देने के लिए हम कहते हैं कि यह विशिष्ट अतिथि हैं, विशिष्ट लोग हैं और यदि आप विशिष्ट नहीं कहेंगे तो आपको अशिष्ट कह दिया जाएगा। जब तक हम किसी को विशिष्ट नहीं कहेंगे तो हमारी शिष्टता कैसे प्रमाणित होगी? यदि विशिष्ट के बिना शिष्टता प्रमाणित नहीं हो सकती तो विशिष्टाद्वैत के बिना उपासना की शिष्टता कैसे? इसलिए हमारी उपासना का जो तात्पर्य है, वह विशिष्टाद्वैत है। यदि बिना विशेषण के सामान्य जीव नहीं मुस्कुराता तो विशेषण के बिना परमात्मा कैसे प्रसन्न रहेंगे? विशेषण तो लोगों को इतना प्रिय होता है कि कभी-कभी धर्मसङ्कट हो जाता है। मान लो किसी का नाम श्रीराम है, तो श्री शब्द तो स्वयं आदरवाचक है पर विशेषण देना आवश्यक है तो वहाँ श्रीयुत श्रीराम कहना पड़ता है। विशेषण के बिना विशेष्य का आनन्द कैसा? इसलिए विशेषण के बिना कुछ भी नहीं हो पाता। विशेषण तो विभूषण है। सौभाग्य से परमात्मा के दो विशेषण हैं—

१. जीव और

२. प्रकृति

अब देखिये कि विशेषण किसे कहते हैं? **'विद्यमानत्वे सति इतर व्यावर्तकत्वं विशेषणत्वम्'** जो विद्यमान होकर इतर का व्यावर्तक होता है, वह विशेषण है।

एक बड़ी सुन्दर बात आपको बता रहा हूँ कि सीताजी के कारण ही रामजी में इतर व्यावर्तकत्व घट पाता है। इसीलिए तो हम सीताराम कहते हैं। यदि हम सीताराम नहीं कहेंगे, तो राम शब्द से कोई बलराम समझ लेगा अथवा राम शब्द से कोई परशुराम समझ लेगा, तो बलराम और परशुराम से व्यावर्तन करने के लिए **'सीताराम'** कहा जाता है। इसलिए सीता ही राम का व्यावर्तन करती हैं—सीता के राम। रामचन्द्र सीता

के हैं, रामचन्द्र सीता के लिए हैं, रामचन्द्र सीता में हैं, रामचन्द्र सीता के द्वारा हैं, रामचन्द्र सीताश्रित हैं और अन्ततोगत्वा सीता ही राम हैं और राम ही सीता हैं।

'रामस्सीता जानकी रामचन्द्रो नित्यानन्दं ये च पश्यन्ति धीराः।

वास्तव में, सीताराम शब्द ही पूर्ण है और सीता राम ही पूर्णब्रह्म हैं। अब, मैं एक यौक्तिक चर्चा कर रहा हूँ। ब्रह्म शब्द में ब, र, ह और म, ये चार अक्षर दिखाई पड़ रहे हैं।

ब — व्यञ्जन वर्णमाला का तेईसवाँ (२३) अक्षर है।

र— व्यञ्जन वर्णमाला का सत्ताईसवाँ (२७) अक्षर है।

ह— व्यञ्जन वर्णमाला का तैंतीसवाँ (३३) अक्षर है।

म— व्यञ्जन वर्णमाला का पच्चीसवाँ (२५) अक्षर है।

कुल संख्या एक सौ आठ (१०८)

इस प्रकार यह एक माला पूरी हो गई। अब, इसी प्रकार सीताराम शब्द में अक्षरों की गणना करते हैं।

इसी प्रकार सीता शब्द में स, ई, त और आ ये चार अक्षर हैं। और राम शब्द में र, अ और म ये तीन अक्षर हैं।

स— व्यञ्जन वर्णमाला का बत्तीसवाँ (३२) अक्षर है।

ई— स्वर वर्णमाला का चौथा (०४) अक्षर है।

त— व्यञ्जन वर्णमाला का सोलहवाँ (१६) अक्षर है।

आ— स्वर वर्णमाला का दूसरा (०२) अक्षर है।

सीता शब्द में कुल संख्या चौवन (५४) हुई।

इसी प्रकार राम शब्द में देखते हैं।

र— व्यञ्जन वर्णमाला का सत्ताईसवाँ (२७) अक्षर है।

आ— स्वर वर्णमाला का दूसरा (०२) अक्षर है।

म— व्यञ्जन वर्णमाला का पच्चीसवाँ (२५) अक्षर है।

इस प्रकार राम शब्द में कुल संख्या ५४ हुई।

सीता की चौवन संख्या (५४) में राम की चौवन संख्या (५४) संख्या जुड़कर, कुल संख्या बन गई–एक सौ आठ (१०८) एक माला पूरी हो गई।

चौवन पर सीता और चौवन पर राम, कितनी सुन्दर जोड़ी है–

सीता राम मनोहर जोरी। दसरथनन्दन जनक किसोरी।।

सीताराम ही पूर्ण ब्रह्म हैं। जो रामावतार में सीता वही कृष्णावतार में राधा, जो रामावतार में राम, वही कृष्णावतार के श्याम। जो रामावतार का चित्रकूट, वही कृष्णावतार का वृन्दावन। वृन्दावन में भगवान कृष्ण ने कितना सुन्दर रास किया था पर कृष्ण जी से पूछते कि रास कहाँ से सीखा भगवान ने? शास्त्र साक्षी है कि चित्रकूट में भगवान राम ने साढ़े निन्यानबे (९९½) महारास किये। निन्यानबे (९९) महारास पूरे हो चुके थे। सौवें (१००) महारास की तैय्यारी चल रही थी कि तब तक जयन्त ने रुकावट डाल दी और जयन्त को दण्ड देने के लिए आधा रास वहीं पर रुक गया। वही आधा महारास, भगवान कृष्ण ने रास बिहारी के रूप में आकर, पूरा किया। इस प्रकार साढ़े निन्यानबे रास चित्रकूट में और आधा रास वृन्दावन में हुआ।

एक बार चुनि कुसुम सुहाए। निज कर भूषन राम बनाए।।
सीतहिं पहिराए प्रभु सादर। बैठे फटिक शिला पर सुन्दर।।

गोस्वामी जी कहते हैं कि मैं निन्यानबे बार की चर्चा नहीं कर रहा हूँ, केवल एक बार की चर्चा कर रहा हूँ क्योंकि निन्यानबे बार तो सीताजी का शृंगार देवाङ्गनाओं ने किया था किन्तु इस बार सीताजी से राघवेन्द्र जी ने कहा–**"प्रिया जी! आज आपको मैं सजाऊँगा।"** प्रेम की रीति को तो राघवेन्द्र जी जानते हैं।

मैंने निवेदन किया है कि भारतीय संस्कृति में वाइफ नहीं हुआ करती। हमारे यहाँ तो पत्नी होती है, जो पति को पतन ने बचाती है। एक बार विदेश (इण्डोनेशिया) के एक व्यक्ति ने मुझसे पूछा कि भारत में लोग पत्नी का नाम क्यों नहीं लेते?

तब मैंने कहा कि सात जनम तक भी तुम भारतीय मूल की भावना को नहीं समझ सकते क्योंकि इसके पीछे एक तथ्य है कि भारतीय संस्कृति में पत्नी, पति की आत्मा होती है और आत्मा का संसार में नाम नहीं हुआ करता।

एक नव परिणीता वधु झोंपड़ी में रहकर भी अपने घर की रानी है और विदेश की नारी राजमहलों में रहकर भी नौकरानी है। वह नौ की रानी है, एक की नहीं है यार।

झोंपड़ी में एक नव परिणीता वधु है। अन्योन्याश्रित आनन्द है। उसके घर में आग लग गई। घर जल रहा है। आग बुझाने के लिए जल चाहिए, तो वह घड़ा भरकर जल लाती है और उसका पति उसके हाथ से जल लेता है, वह मुस्कुराती है। पति जल वहीं डाल देता है, आगे बढ़ ही नहीं पाता है। पूरा घर जल गया। लोगों ने कहा कि तुम लोग बड़े पागल हो। तब उसने कहा कि हम बहुत अच्छे हैं। अच्छा ही है जो आग लगी और घर जला। कम से कम मैंने अपने प्राणधन प्रियतम के हाथों में हँस-हँसकर घड़ा देने का सौभाग्य तो पा लिया। क्या प्रेम है! इस प्रेम की तुलना तुम कहीं और से करो! तब उसने **'बरवै'** में कहा—

आगि लागि घर जरिगा विधि भल कीन्ह।
पी के हाथ घड़िलवा हँसि हँसि दीन्ह।।

संसार में भौतिकवाद से प्रेम की तुलना नहीं हो सकती। प्रेम में काम नहीं हुआ करता, प्रेम में वासना नहीं हुआ करती। प्रेम में तो उपासना होती है। इसलिए—

एक बार चुनि कुसुम सुहाए। निज कर भूषण राम बनाए।।

कितना सुन्दर लिखा है कि अपने हाथों से प्रभु ने सुन्दर सुन्दर कुसुम चुने। यहाँ राम ही लिखा है गोस्वामी जी ने, प्रभु या ईश्वर नहीं लिखा। यहाँ तो सब ईश्वरता धरी रह गई। इसलिए **'राम बनाए'** इस प्रकार लिखा। **'रमयति इति रामः'** अपनी प्रियतमा का रमण करना है, उन्हें रमाना है। अतः एक सच्चे रसिक, आदर्श पति, प्रभु श्री राघवेन्द्र अपने हाथों से फूल चुन रहे हैं और उन सुन्दर सुन्दर फूलों से माथबेन्दी, कर्णफूल, बेसर, कङ्कण, अँगूठी, केयूर, कण्ठा, हँसली, हार, सुन्दर सुन्दर, दिव्य-दिव्य आभूषण अपने हाथों से अपनी प्रिया जू के लिए बना रहे हैं **'निज कर भूषण राम बनाए।''** यहाँ श्लेष है। एक तो अपने हाथों से आभूषण बनाए और दूसरा अर्थ यह है कि भगवान राम ने अपने को ही सीताजी का आभूषण बना दिया।

श्रवसो कुण्डलमक्षणो रञ्जनमुरसो महेन्द्र मणिदाम।
मिथिलाधिप तनयायाः मण्डनमखिलं हरिर्जयति।।

स्वयं रामचन्द्र जी, सीताजी के आभूषण बन गए क्योंकि जनकनन्दिनी जी विजातीय स्पर्श नहीं सह सकतीं। वह रामजी के अतिरिक्त किसी को छू नहीं सकतीं। राघव ने कहा—प्रिया जी, आज मैं आपका आभूषण बन जाता हूँ तो सीताजी की बिंदिया भी

राघव जी बने, सीताजी का सुरमा भी राघव जी बने, सीताजी का कर्णफूल भी राघव जी बने, सीताजी के बेसर भी राघव जी बने, सीताजी के कपोलप्रान्त के पुष्पगुच्छ भी राघव जी बने, सीताजी का कण्ठहार भी राघव बने। सब कुछ राघव बने।

एक बार चुनि कुसुम सुहाए। निज कर भूषन राम बनाए।।

आपको एक आनन्द की बात बताऊँ कि मेरी किसी से चर्चा हो रही थी कि जब रामचन्द्र जी वनवास में हैं तो वनवास में तो प्रभुवल्कलाम्बर पहनते हैं **'वल्कल बसन जटिल तनु स्यामा'** परन्तु 'अरण्यकाण्ड' अर्थात् 'वनकाण्ड' का जब तुलसीदास जी मङ्गलाचरण लिखते हैं तो वे लिखते हैं–

सान्द्रानन्दपयोदसौभगतनुं पीताम्बरं सुन्दरम्।

वनकाण्ड का प्रसङ्ग है और लिखा है **'पीताम्बरं सुन्दरम्'** तो वन में पीताम्बर कहाँ से आ गया? अयोध्या में होते तो ठीक था किन्तु यह तो वल्कलाम्बर है। **'वल्कलाम्बरं सुन्दरम्'** भी लिख सकते थे। किन्तु गोस्वामी जी कहें और उसमें रहस्य न हो, यह सम्भव ही नहीं है। मुझे भी धर्मसङ्कट हुआ तो मैंने कहा–बहूरानी जी, आप सही-सही बता ही दीजिये। बात यह है कि यहाँ पर **'सीतालक्ष्मणसंयुतं पथिगतम्'** वर्णन आया है। रामचन्द्र जी, सीताजी और लक्ष्मण जी के साथ वनमार्ग में जा रहे हैं। अरण्यकाण्ड के मङ्गलाचरण में उसी झाँकी का चित्रण किया गया है। उस समय घनीभूत आनन्द के बादल के समान उनके शरीर की शोभा है। आनन्द भाव पदार्थ है, स्थूल पदार्थ नहीं। घनीभूत आनन्द ही यदि कदाचित् बादल बने तो उसको भी सौभाग्य दे रहा है शरीर जिसका अर्थात् इतना सुन्दर है भगवान का शरीर। यहाँ तक **'सान्द्रानन्दपयोदसौभगतनुम्'** यह स्पष्ट हो गया। आगे लिखते हैं कि–**'पीताम्बरं सुन्दरम्'** बात यह है कि प्रभु आगे-आगे जा रहे हैं। सूर्य नारायण की किरणें प्रभु के कपोलों को चूम रही हैं। सीताजी को लगता है कि प्रभु को धूप लग रही होगी। इसलिए उन्होंने अपने सीधे पल्ले की साड़ी का आँचल उठाकर प्रभु के सिर पर डाल दिया। गोस्वामी जी ने देखा तो कहा–अरे! ये देखो पीताम्बरम्। सीताजी का एक नाम पीता भी है अर्थात् पीले वर्ण वाली। **'पीतायाः सीतायाः अम्बरं अञ्चलं यस्मिन्'** और, आज तो पीत वर्ण वाली सीताजी का अम्बर माने आँचल रामचन्द्र जी के ऊपर लिपटा रहा है। कितनी सुन्दर बात है कि पति के सिर पर, उसके कष्ट निवारणार्थ प्रेयसी अपना

आँचल डाल रही है। यह सब देखकर कितना मधुर भाव आया होगा, वह तो राघव ही जाने। प्रिया-प्रियतम की बात है। मानों भगवती जी ने कहा कि प्रभो, जब तक इस धरती पर सीता वर्तमान है तब तक आपको धूप नहीं लगने देगी स्वयं सह लेगी। यह मेरी तेरी जनम-जनम की प्रीति है। वास्तव में, यही प्रीति है सञ्जीवनी मानवता की, और यही प्रीति है सर्जिका देवत्व की। जब भगवती जी इतना प्रेम करती हैं उनको, तभी तो राघव जी ने भी—

एक बार चुनि कुसुम सुहाए। निज कर भूषण राम बनाए।।
सीतहिं पहिराए प्रभु सादर। बैठे फटिक शिला पर सुन्दर।।

कितना सुन्दर दृश्य है! ऐसी भगवती और ऐसे हमारे भगवान! जो केवल भगवान नहीं हैं। भगवान बनना सरल है। भगवान होने के कारण भगवत्व कठिन नहीं है जितना नरत्व कठिन है। इसलिए वाल्मीकि जी ने नारद जी से पूछा कि मुझे नर बतलाइये। तब नारद जी ने कहा—

मुने वक्ष्याम्यहं बुद्ध्वा तैर्युक्तः श्रूयतां नरः।

मैं आपको यह समझकर बताऊँगा, शीघ्रता में नहीं बताऊँगा अर्थात् नारायण ने भी भले ही बहुत से अवतार लिये हों परन्तु मानवता का जितना पूर्णतम शृंगार प्रभु ने रामावतार में किया, उतना अन्य किसी अवतार में कर ही नहीं पाए। अन्य अवतारों में तो केवल साधुओं की रक्षा की, दुष्टों का विनाश किया और धर्म की स्थापना की—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।

यह कहना पड़ेगा कि भगवान राम ने रामावतार में इन सबके साथ-साथ मानवता को भी सजाया और सँवारा। मानवता का मूल है प्रेम। यदि किसी ने प्रेम को नहीं सँवारा तो कुछ कर ही नहीं सकता। जो प्रेम से लोगों को सिञ्चित नहीं करता, वह भगवान को पा ही नहीं सकता। आइये, ऐसी परिस्थिति में जो मेरा वर्णी विषय है, इन्हीं सीताराम जी के विवाह के बिन्दु को लेकर—

मुदित अवधपति सकल सुत बधुन्ह समेत निहारि।
जनु पाए महिपाल मनि क्रियन्ह सहित फल चारि।।

मिथिला का मण्डप है। मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष की पञ्चमी है, मङ्गलवार का दिन है

मङ्गलमूल लगन दिनु आवा। हिम ऋतु अगहन मास सुहावा।।

देखिये, कोई कितना भी बड़ा कवि क्यों न हो जाए पर जब तक उसकी कविता सार्वभौम नहीं होती, तब तक उसको शान्ति प्राप्त नहीं होती, चाहे कोई कुछ भी कर ले। लोग शेक्सपियर को बहुत बड़ा कवि मानते हैं परन्तु मुझे यह कहते हुए गर्व हो रहा है और आपको भी होगा, आप बहुत प्रसन्न होंगे कि विश्व के ऐतिहासिक धरातल और साहित्यिक धरातल पर भी, आज से दस वर्ष पहले बाइबिल का बहुत बड़ा स्थान था। लगभग बीस सौ भाषाओं में उसका अनुवाद हुआ था। सौभाग्य आया कि हमारी गीता जी उससे बढ़ीं और बाईस सौ (२२००) भाषाओं में, पाँच वर्ष पहले गीताजी का अनुवाद देखा गया। अभी कुछ ही दिनों की बात है, आप सबका और हमारा सौभाग्य है कि श्रीरामचरितमानस जी का पच्चीस सौ (२५००) भाषाओं में भावानुवाद हुआ। शेक्सपियर और मिल्टन बड़े-बड़े कवि धरे रह गए। कामायनी और पल्लव को किसी ने पूछा भी नहीं क्योंकि ये परमात्मा से नहीं जुड़े, सर्वहित इनकी दृष्टि में नहीं था। ये काल्पनिक हैं और कल्पना शाश्वत नहीं होती, भावना शाश्वत होती है। जब कवि के जीवन में भावपक्ष की प्रवणता हो जाती है, तब कविता गङ्गा बन जाती है। वाल्मीकि, वेदव्यास सबको पीछे छोड़ा, हमारे चित्रकूट के सामान्य से साधु ने। एक महाशय जी ने मुझसे पूछा कि चित्रकूट में कोई साहित्य उपलब्ध है? मैंने कहा कि चित्रकूट में तुलसीदास के अतिरिक्त कुछ नहीं है और तुलसीदास से ही चित्रकूट की पहचान है। चित्रकूट ही तुलसीदास है और तुलसीदास ही चित्रकूट है। कवियों के हृदय में तो त्रिकूट होता है और तुलसीदास जी के हृदय में चित्रकूट है। चित्रकूट चिन्मय होता है, त्रिकूट थोड़े ही चिन्मय होता है। त्रिकूट तो नष्ट होगा। हृदय में है काम, क्रोध, लोभ का कूट ही त्रिकूट है। तुलसीदास जी के हृदय में तो त्रिकूट नहीं, चित्रकूट है।

राम कथा मन्दाकिनी चित्रकूट चित चारु।
तुलसी सुभग सनेह बन सिय रघुबीर बिहारु।।

रामकथा मन्दाकिनी है और उनका चित ही चित्रकूट है। पूछा गया कि आप कौन हैं? तो कहते हैं कि मैं तुलसी का बिरवा हूँ—'**तुलसी सुभग सनेह बन**', और वहाँ विहार कौन कर रहा है? तो कहते हैं—'**सिय रघुबीर बिहारु**'।

देखिये, एक ओर ऐसे प्रभु श्रीराम और श्री सीता, दूसरी ओर श्री भरत और श्री

माण्डवी, तीसरी ओर श्री लक्ष्मण और श्री उर्मिला जी और चौथी ओर श्री शत्रुघ्न जी और श्री श्रुतिकीर्ति जी उपस्थित हो रहे हैं। इस प्रकार ये चार युग्म उपस्थित हो रहे हैं, जिनमें बहुत वैचित्र्य है। श्रीसीताराम जी और श्री भरत माण्डवी जी, ये दोनों युग्म एक से हैं। इधर सीताजी गौरवर्ण की और श्रीराम जी श्याम वर्ण के हैं और उधर माण्डवी जी गौरवर्ण की और भरत जी श्याम वर्ण के हैं। दूसरी ओर क्रम थोड़ा उलटा हो गया है। उर्मिला जी श्याम तो लक्ष्मण जी गौर हैं और इसी प्रकार श्रुतिकीर्ति जी श्याम वर्ण की हैं और शत्रुघ्न लाल जी गौर वर्ण के हैं। यह थोड़ा सा अन्तर है कि एक ओर दोनों पति श्याम तो पत्नियाँ गौर और दूसरी ओर दोनों पत्नियाँ श्याम तो दोनों पति गौर। बड़ी सुन्दर जोड़ियाँ हैं। मिथिला के प्रसिद्ध कवि श्री स्नेहलता जी ने बड़ा सुन्दर गाया है, अब तो वे नित्य लीला विहार प्राप्त कर गए—

हिय कोहबर के भवनवा हो दुलहिन दुलहनवा।

कितना दार्शनिक है। हृदय ही कोहबर का भवन है और यहाँ भी—

जनु जीव उर चारिउ अवस्था विभुन सहित विराजहीं।

जीव का हृदय ही मिथिला का मण्डप है और वह मण्डप बहुत सुन्दर है, उसमें तीन-तीन आवरण हैं, चारों ओर दीपक जल रहे हैं और साथ-साथ आनन्द की बात है कि श्रीरामचरितमानस में तीन दीपशिखाओं का वर्णन है—

सोऽहमस्मि इति वृत्ति अखण्डा। दीपसिखा सोइ परम प्रचण्डा।।

सोऽहमस्मि इत्याकारिका जो वृत्ति है, जीव और ब्रह्म की जो अभेदाकारिका वृत्ति है, यह भी दीपशिखा है और यह बुझेगी।

दूसरी दीपशिखा है मोह की—

'दीपसिखा सम जुवत तन

तीसरी दीपशिखा है—

सुन्दरता कहुँ सुन्दर करई। छविगृह दीपसिखा जनु बरई।।

सीताजी स्वयं दीपशिखा हैं और राम, भरत सब दीप हैं। तो ऐसी दीपशिखा व दीप जिस मण्डप में विराजमान हों, उसकी शोभा का वर्णन कहाँ तक किया जाए?

क्या आपने कभी इस बात पर विचार किया है कि सभी तीर्थों में पौर्णमासी का

महत्त्व है, पर हमारे चित्रकूट में अमावस्या का महत्व है। अमावस्या को तो लोग अशुभ मानते हैं फिर चित्रकूट में इसका इतना महत्त्व क्यों है? इसका उत्तर बड़ा मधुर है। संस्कृत में '**अमा**' शब्द का अर्थ है एक साथ और '**वस्या**' का अर्थ है रहना। जिस तिथि में एक साथ सूर्य और चन्द्रमा रहें, उस तिथि को अमावस्या कहते हैं। ('अमा सह वसत: सूर्य चन्द्रौ यस्यां सा अमावस्या) जिस प्रकार अमावस्या के दिन एक साथ सूर्य चन्द्रमा रहते हैं, उसी प्रकार रामरूप सूर्य और भरत रूप चन्द्रमा, चित्रकूट में एक साथ मिलते हैं। अत: अमावस्या, राम रूप सूर्य और भरत रूप चन्द्रमा के सम्मिलन का स्मरण कराती है। चित्रकूट को समझने के लिए साधना करनी पड़ेगी, भोगवादी दृष्टि को समाप्त करना पड़ेगा, चित्रकूट की धूल धारण करनी पड़ेगी, महापुरुषों के चरणों में बैठना पड़ेगा और चित्रकूट की शिलाओं को जल से नहीं आँसुओं से धोना पड़ेगा। परन्तु–

चित्रकूट जनु अचल अहेरी।

चित्रकूट तो उछलने का आनन्द का स्थान है। यहाँ की गलियाँ, यहाँ के झरने, मन्दाकिनी का स्वर, पक्षियों का कूजन, मधुकरों का गुञ्जन, यह हमारे किसी अतीत, वर्तमान और सार्वकालिक सत्ता का स्मरण कराते रहते हैं। हम चित्रकूट में दीपावली इसीलिए तो मनाते हैं क्योंकि चित्रकूट जैसी दीपावली कहीं की हो ही नहीं सकती। इतनी समीचीन दीपावली कहीं की नहीं हो सकती क्योंकि दीपावली का विच्छेद है दीप+अवली। अवली का अर्थ होता है कतार, पंक्ति, समूह। चित्रकूट में तो वास्तव में दीपों की अवली है। बड़े-बड़े दीपक चित्रकूट में हैं। चार पाँच दीपक मैं गिना रहा हूँ।

१. **पहला दीपक** – रामचन्द्र जी स्वयं दीपक हैं–

निरखि वदन कहि भूप रजाई। रघुकुल दीपहिं चले लवाई।।
गए जनक रघुनाथ समीपा। सनमाने सब रघुकुल दीपा।।

२. **दूसरा दीपक**–

जानेहु सदा भरत कुलदीपा। बार-बार मोहि कहेहुँ महीपा।।

३. **तीसरा दीपक**–

राम नाम मणि दीप धरि जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहरेहु जौं चाहसि उजियार।।

४. चौथा दीपक—ज्ञान का

एहिं विधि लेसिय-दीप, तेज राशि विज्ञानमय।

५. पाँचवाँ दीपक—

रामभगति मणि पुरबत जाके। दुख लवलेस न सपनेहुँ ताके।।

रामभक्ति का मणिदीप। रामजी का चरित्र दीप, रामजी का प्रताप दीप, सब दीपकों का समूह है चित्रकूट। अनेक अनेक दीपकों के समूह हैं यहाँ और सबसे आनन्द की बात तो सीताजी यहाँ दीपक की शिखा हैं—**'छवि गृह दीपसिखा जनु बरई'**, यहाँ दीपक भी हैं और दीपकों की लौ भी है। अतः चित्रकूट जैसी दीपावली संसार में कहीं भी नहीं है।

ऐसी दीपशिखा और दीपक मण्डप में विराजमान हैं। चक्रवर्ती जी, चारों बहुओं और कुमारों को प्राप्त कर इतने प्रसन्न हैं मानो—

जनु पाए महिपाल मनि क्रियन्ह सहित फल चारि।।

अब क्रियाओं और फलों की चर्चा करते हैं। हमारा सबसे पहला फल है अर्थ। **'अर्थ्यते इति अर्थः'** जिसको पाने की सबको इच्छा होती है, वह अर्थ है। अर्थ हमारे प्रयोजनों को सिद्ध करता है। पहला पदार्थ है पुरुषार्थ अर्थ और वह अर्थ हैं हमारे शत्रुघ्न जी।

जाके सुमिरन ते रिपु नासा। नाम सत्रुहन वेद प्रकासा।।

लोग कहते हैं कि मानस जी में शत्रुघ्न जी की बहुत कम चर्चा है पर हम यह समझ नहीं पाते कि ऐसा क्यों है? हम कौन होते हैं? जब गोस्वामी जी को मैथिलीशरण गुप्त भी नहीं समझ पाए, तो और कौन समझेगा? मैथिलीशरण जी ने तो यह नया सिद्धान्त ही अपना लिया कि तुलसीदास जी ने उर्मिला की उपेक्षा की और फिर उन्होंने उपेक्षित उर्मिला के चरित्र को उजागर किया पर मैथिलीशरण जी को ठीक से बात समझ में नहीं आई। वे तो जिस बटखरे से सौदा तौला करते थे, वैसे ही तुलसीदास जी को भी तौलने लगे। वास्तव में, उर्मिला कौन हैं? यह बात हमें समझनी चाहिए। व्यवहारिक दृष्टि से उर्मिला जी, राम जी की अनुजवधु हैं और रामचरितमानस वैदिक संस्कृति के साथ-साथ लौकिक मर्यादाओं का भी चित्रक है और इस माननीय ग्रन्थ का नाम है रामायण, जिसका

अर्थ है राम जी का अयन। अब आप ही बताइये कि राम जी के अयन अर्थात् भवन में छोटे भाई की वधु कैसे जाएगी ? पर मैथिली शरण जी इस बात को कैसे समझ पाएँगे ? अरे, जितना गोस्वामी जी ने लिख दिया, उतना वे साकेत के पचासों पृष्ठों में भी नहीं लिख सके। गोस्वामी जी का स्वभाव है कि–

अरथ अमित अति आखर थोरे।

तीन अक्षरों में भी वे इतना लिख सकते हैं, जितना कोई तीन हजार पृष्ठों में भी नहीं लिख सकता। गोस्वामी जी की भाषा को समझना बहुत कठिन है। जैसे-उर्मिला जी के सम्बन्ध में गोस्वामी जी ने बहुत लिखा पर लोग नहीं जानते। उसी प्रकार शत्रुघ्न जी के सम्बन्श में भी बहुत लिखा है। अब यहीं देखिये कि गोस्वामी जी कहते हैं कि शत्रुघ्न जी अर्थ हैं। अर्थ की भिन्न-भिन्न व्याख्याएँ हैं। कुछ लोगों के मत में रुपया ही अर्थ है पर वास्तव में यह अर्थ नहीं है। कुछ लोगों के मत में **'विद्याधनं सर्वधनंप्रधानम्'** अर्थात् विद्या ही धन है। कुछ लोगों के मत में-**'धनं मदीयं तवपादपङ्कजम्'** भगवान के चरण कमल ही अर्थ हैं, वही धन है परन्तु वैष्णवों के मत में, आध्यात्मिक अर्थ में भगवद्कैंकर्य ही परम धन है। कैंकर्य माने भगवान के प्रति सेवाभाव। भगवद्बुद्धि से समाज की सेवा करना, यह सबसे बड़ा अर्थ है और शत्रुघ्न जी ने जीवन भर यही किया। उन्होंने भरत जी की आज्ञा का पालन करते हुए भगवद्बुद्धि से समाज की सेवा की।

पुनि सिख दीन्ह बोलि लघु भाई। सौंपी सकल मातु सेवकाई।।

वास्तव में, सेवक का धर्म बहुत कठोर होता है। अपनी रुचि को कितना मारना पड़ता है यह तो किसी सेवक से ही पूछिये, संसार में सबसे कठिन है अपनी रुचि को मारना। सेवक वही हो सकता है, जो अपने स्व का समर्पण कर दे और शत्रुघ्न लाल जी का व्यक्तित्व ऐसा ही है। शत्रुघ्न जी ने तो अपना जीवन स्वाहा कर दिया। स्वाहा किसे कहते हैं ? स्वाहा का तात्पर्य दो, चार किलो जौ भून देना नहीं है, यह तो आहा है। **'स्वस्य आदरेण हानम् इति स्वाहा'**, अर्थात् अपने स्व को आदरपूर्वक परमात्मा के चरणों में सौंप देना ही स्वाहा है।

अब सौंप दिया इस जीवन का सब भार तुम्हारे हाथों में
सरकार तुम्हारे हाथों में।
मेरी जीत तुम्हारे हाथों में और हार तुम्हारे हाथों में
सब भार तुम्हारे हाथों में।

हममें तुममें बस भेद यही, हम नर हैं तुम नारायण हो
हम हैं संसार के हाथों में, संसार तुम्हारे हाथों में
सब भार तुम्हारे हाथों में
अब सौंप दिया.....

वास्तव में सेवा की यही परिभाषा है। संसार में कोई ऐसा नहीं, जो कुछ न चाहता हो। सेवक की सबसे बड़ी दुर्बलता यही है कि उसे सम्मान चाहिए। थोड़ी सी सेवा के बाद यदि उसके अनुकूल नहीं तो तुरन्त मुँह फूल जाता है। इतिहास साक्षी है कि जितना बड़ा स्वाहा का व्रत शत्रुघ्न लाल जी ने निभाया, उतना किसी ने नहीं। रामायण में सबकी गाथा गाई गई पर शत्रुघ्न जी के सम्बन्ध में दो पन्ने भी नहीं लिखे गए। गोस्वामी जी लिख सकते थे पर शत्रुघ्न जी ने कहा कि गोस्वामी जी, यदि आप मेरा चरित्र लिखेंगे तो मेरा **'स्वाहा व्रत'** समाप्त हो जाएगा।

श्रीरामचरितमानस के शत्रुघ्न जी और भागवत जी की श्रीराधा जी, दोनों का एक ही चरित्र है। पूरी भागवत लिख दी गई पर आधे श्लोक में भी राधाजी का नाम नहीं आया क्योंकि राधा जी ने कहा कि यदि मेरा नाम आएगा तो भगवान के चरित्र में थोड़ी न्यूनता आ जाएगी। थोड़ा स्थान कम हो जाएगा। हम चाहते हैं कि भागवत भगवान के चरित्र से लबालब भरा रहे, राधा का कोई नाम भी न जान सके। यदि उपस्थिति का भान हो ही गया हो तो फिर सेवा ही किस काम की? वह सेवक नहीं हो सकता, जिसकी उपस्थिति का स्वामी को, भान हो जाए। यह कितना बड़ा त्याग है! शत्रुघ्न जी ने भी कभी नहीं कहा कि तुलसीदास जी के चिन्तन रूप एलबम में उनका भी चित्र आवे अथवा रामायण में उनके लिए भी कोई स्थान हो। केवल दो तीन वाक्य, तुलसीदास जी ने अपनी हठधर्मिता से लिखे। शत्रुघ्न जी का तो उन्हें भी लिखवाने का मन नहीं था। तुलसीदास जी ने निवेदन किया कि इतना अधिकार तो दे दीजिये सरकार, नहीं तो मैं आत्महत्या कर लूँगा।

रिपुसूदन पदकमल नमामी। सूर सुसील भरत अनुगामी।।

शत्रुघ्नलाल जी, भरत चरित्र रूप भवन की नींव के पत्थर हैं। भवन तो सभी लोग देखते हैं पर नींव का पत्थर कभी दिखाई नहीं पड़ता परन्तु यदि नींव का पत्थर न हो तो प्रासाद टिक सकेगा क्या? इसी प्रकार यदि शत्रुघ्न जी न हों तो भरत जी का चरित्र टिक ही नहीं सकता। भरत जी तो कम से कम कहकर, रोकर, मिलकर, अपने को सन्तुष्ट

कर लेते हैं पर शत्रुघ्न जी तो सेवा में इतने व्यस्त हैं कि उनको तो रोने का भी समय नहीं है। उन्होंने अपने आपको इतना अधिक स्वाहा किया है। और लोग तो रामचन्द्र जी को देखकर अपनी आँखों की प्यास बुझा लेते हैं परन्तु शत्रुघ्न लाल जी कहते हैं कि मैं यदि राम जी को देखने में तन्मय हो जाऊँगा, तो सेवा छूट जाएगी।उदाहरण के लिए यदि किसी पर्वतीय क्षेत्र में यात्रा कराने वाले चालक से पूछा जाए कि क्या तुम इस प्राकृतिक सौन्दर्य को देख सकोगे ? तो उत्तर में वह यही कहेगा कि यदि मैं इस प्राकृतिक सौन्दर्य को देखूँगा, तो बस में बैठे हुए सभी यात्रियों का स्वाहा हो जाएगा। ठीक यही व्याख्या है सेवाधर्म की। शत्रुघ्नलाल जी इस दुर्गम घाटी में अपनी सेवा की गाड़ी चला रहे हैं, जहाँ बड़े-बड़े लोग फिसल गए और जो नहीं फिसले, उन्होंने और कुछ किया। यदि चालक और कुछ करेगा तो दुर्घटना घटेगी ही।

सेवाधर्मः परम गहनो योगिनामप्यगम्यः।

योगियों को देखिये, वे कुछ नहीं करते। जन्म के समय से ही शत्रुघ्न जी को भरत जी के पीछे लगा दिया गया अर्थात् भगवान की सेवा न करके भगवान के भक्त की सेवा करो। किसी ने कहा संसार में सबसे बड़े भगवान होते हैं, तो भुषुण्डि जी ने कहा—'नहीं, भगवान से बड़े भगवान के दास होते हैं-'**राम तें अधिक राम कर दासा।**' राम में तो दो ही अक्षर होते हैं किन्तु भरत में तो तीन अक्षर हैं और हनुमान जी में तो चार अक्षर हैं। राम से दोगुना हो गया हनुमान। संसार में जीव से बड़े परमात्मा और परमात्मा से बड़े महात्मा (जो परमात्मा के भक्त हैं) और महात्मा से भी बड़े वे हैं, जो महात्माओं की भी सेवा करते हैं। इस प्रकार, सबसे बड़े राघवेन्द्र, राघवेन्द्र जी से बड़े भरत और उनसे भी बड़े शत्रुघ्न जी हैं क्योंकि वह भरत जी की सेवा कर रहे हैं। '**गजेन्द्र-मोक्ष**' प्रकरण से यह बात और स्पष्ट हो जाएगी। उस कथा से तो सब परिचित हैं ही। सारांश में इतना समझना चाहिए कि जब गजेन्द्र का मोक्ष हो गया, तब देवताओं ने भगवान से कहा कि सरकार! आप बहुत अन्याय करते हैं। आपके लिए चिल्लाया गजेन्द्र, बिलखा गजेन्द्र, रोया गजेन्द्र पर आप जब प्रकट हुए तो आपने पहले गजेन्द्र का उद्धार न करके, घड़ियाल को मारकर बैकुण्ठ भेजा और उसके बाद गजेन्द्र को भेजा, यह कौन सा न्याय किया आपने ? वहाँ भगवान ने बड़ा मधुर उत्तर दिया कि तुम लोग समझ नहीं रहे हो। गजेन्द्र ने तो मेरे चरणों को पकड़ा था किन्तु घड़ियाल ने तो मेरे भक्त के चरणों को ही पकड़ लिया था। इसलिए गजेन्द्र से पहले मैंने ग्राह को मुक्त किया।

ठीक यही बात यहाँ समझना चाहिए कि भरत जी, रामजी के भक्त हैं किन्तु शत्रुघ्न जी तो, राम जी के भक्त, भरत जी के भी भक्त हैं। कितना बड़ा सौभाग्य है। अत:–

रिपुसूदन पदकमल नमामी। सूर सुसील भरत अनुगामी।।

देखिये, सेवक को अपनी इच्छा कितनी मारनी पड़ती है। श्री राघवेन्द्र मिथिला में हैं और भरत और शत्रुघ्न अयोध्या में हैं। लक्ष्मण का तो आनन्द है क्योंकि वे, रामजी के साथ हैं। भरत जी मनसा उनका स्मरण करते रहते हैं पर शत्रुघ्न जी अपने को छिपाकर रखते हैं–

खेलत रहे तहाँ सुधि पाई। आए भरत सहित लघु भाई।।

यहाँ गीता प्रेस ने–**'आए भरत सहित हित भाई'**, ऐसा पाठ लिखा है, जो उचित नहीं है। मूल पाठ **'आए भरत सहित लघु भाई'** ही है।

भरत जी के साथ शत्रुघ्न जी आए। दोनों के हृदय में आनन्द है। इच्छा दोनों की है पर भरत जी के सामने शत्रुघ्न जी ने अपनी इच्छा को दबा दिया। भरत जी पूछ रहे हैं कि–

कुसल प्रानप्रिय बन्धु दोउ कहहु अहहिं केहि देस।
सुनि सनेह साने बचन बाची बहुरि नरेस।।

'सुनि पाती पुलके दोउ भ्राता', मानों दोनों पुलकित हुए परन्तु वहाँ भी शत्रुघ्न ने अपनी पुलकावली को दबाया। अरे पुलकावली! अरे मेरी प्रीति! यदि तू आगे बढ़ेगी तो भरत जी की कीर्ति नहीं रहेगी, अत: सावधान! तुझे समाज के सामने नहीं आना है। उन्होंने अपनी पुलकावली रोकी और सभा ने शत्रुघ्न जी की प्रीति नहीं देखी–

प्रीति पुनीत भरत की देखी। सकल सभा सुख लहेहु बिसेषी।।

शत्रुघ्न जी का चरित्र देखिये! सेवक का यही स्वरूप है कि जो अपनी कीर्ति से, अपने स्वामी की कीर्ति को दबाने का प्रयास न करे। आप श्रीमद्भागवत जी के अट्ठारह हजार (१८०००) श्लोक देख जाइये, प्रकट में राधा जी का नाम नहीं दिखाई देगा। यह तो कुछ मार्मिक जन ही जानते हैं कि राधा जी का नाम कहाँ है। एक बार मैंने वृन्दावन में कहा था, कि **"मैं वृन्दावन की सौगन्ध लेकर कहता हूँ कि 'राधा-चरित्र' कहने के लिए मैं भागवत के अतिरिक्त किसी अन्य पुराण से कोई उदाहरण नहीं लूँगा।**

भागवत जी में ही राधा जी के इतने श्लोक हैं कि उनका वर्णन करना कठिन है। महीनों महीनों तक राधा चरित्र कहा जा सकता है पर वे इतने गुप्त हैं कि उनको बहुत कम लोग जान सकते हैं।"

भागवत जी में, रुक्मिणी का चरित्र, सत्यभामा का चरित्र भरा पड़ा है। भिन्न-भिन्न गोपियों के चरित्रों का वर्णन आया है। गोपी, गोपी, बार-बार आया है। वास्तव में राधा गोपी ही तो है। **'गोपायते इति गोपी'**, जो अपने को गुप्त रखती है, उसे गोपी कहते हैं। रुक्मिणी अपने को गुप्त नहीं रखतीं, और लोग अपने को गुप्त नहीं रख सकते, पर राधा जी ही अपने को गुप्त रखती हैं।

सेवक अपनी इच्छा को कितना मारता है, यह इस प्रकरण से ज्ञात हो जाएगा। श्रीमद्वृन्दावन की विहार-लीला का संवरण हो रहा है। अक्रूर जी आ चुके हैं। श्रीकृष्णचन्द्र जी को अब मथुरा जाना है। इस बेचारी को क्या दिया है श्रीकृष्णचन्द्र जी ने। कोई उनसे पूछे कि कन्हैया! तुमने सबको कुछ न कुछ दिया, यह बताओ कि राधा जी को तुमने क्या दिया है? कुछ नहीं दिया है, केवल लिया है। अरे, भागवत के पन्नों का एक अक्षर भी तुमने उसे नहीं दिया, तो तुम उसे क्या दोगे? तुम्हारे पास है ही क्या, जो तुम उसे दोगे? उसने भागवत को नहीं लिया, भगवान को ही ले लिया।

'रं कृष्ण प्रेमरसं आ आदरेण दधाति पुष्णाति या सा राधा।'

जो कृष्ण के प्रेम के रस को अपने हृदय में आदरपूर्वक पोषती है, वह राधा है।

प्रभु श्रीराधा जी से पूछने गए कि अक्रूर जी आ गए हैं, मैं जाऊँ या न जाऊँ? उस समय राधा जी जो बात कहती हैं, वह किसी मार्मिक सरस हृदय को तो हिला ही देगी। वे कहती हैं—

माया हीत्यप मङ्गलं ब्रजसखे स्नेहेन शून्यं वचस्,
तिष्ठेति प्रभुता यथा रुचि कुरुष्वैषाप्युदासीनता।
नो जीवामि विना त्वयैति वचनं सम्भाव्यते वा न वा,
तन्मां शिक्षय नाथ यत्समुचितं वक्तुं त्वयि प्रस्थिते।।

राधा जी ने कहा कि यदि मैं कहूँ कि मत जाइये, तो बहुत बड़ा अमङ्गल हो जाएगा और यदि मैं कहूँ कि चले जाइये, तो यह प्रेम से शून्य बात होगी। कोई प्रियतमा अपने प्राणधन को जाने के लिए कहेगी क्या? यदि मैं कहूँ कि 'तिष्ठ', रुक जाइये, तो प्रभुता

होगी। कोई दासी अपने प्रभु पर शासन करती है क्या? यदि मैं कहूँ कि जो मन हो, वही कीजिये, तो उदासीनता होगी कि क्या मेरा इतना भी अधिकार नहीं है। यदि मैं कहूँ कि तुम्हारे बिना मैं जी नहीं सकती तो यह अनुचित होगा क्योंकि जीवन तो आपके हाथ में है, मेरा अपना कुछ है ही नहीं तो मैं यह कैसे कह दूँ? इसलिए हे आनन्दकन्द! हे कन्हैया! आप ही मुझे बताइये कि चलते समय मैं आपसे क्या कहूँ? जो आप कहें, वही मैं कह दूँ। अपने मन को कितना मारना पड़ता है। ये तो—

की दुख जाने दूखिया की दुखिया की माय।
की दुख जाने माछरी जो जल के बिना मर जाय।।

सब कुछ छोड़ना सरल है पर मन को मारना बहुत कठिन है। रामायण के शत्रुघ्न और कृष्णायन की राधा, इन दोनों का वही व्यक्तित्व है। राधाजी ने अपने मन को मार डाला और भागवतकार से कहा कि सावधान! एक भी शब्द यदि तुमने स्पष्ट लिखा, तो फिर समझ लेना और नहीं लिखने दिया—

तत्प्रियार्थं सम्भवन्तु सुरस्त्रियः।

अब शत्रुघ्नलाल जी का एक उदाहरण देखिये कि वे अपने मन को कितना मारते हैं। भरत जी श्रीचित्रकूट आ चुके, सब लोग मिल चुके। गोस्वामी जी कहते हैं कि—

कोउ कछु कहइ न कोई कछु पूछा। प्रेम भरा मन निज गति छूँछा।।
तेहिं अवसर केवट धीरज धरि। जोरि पानि बिनवत प्रनाम करि।।

कोई कुछ नहीं कह रहा है, मन में कोई सङ्कल्प नहीं बचा है, मन केवल प्रेम से भर गया। केवल, केवट ने धैर्य धारण करके यह बात कही कि—

नाथ साथ मुनिनाथ के मातु सकल पुर लोग।
सेनप सेवक सचिव सब आए बिकल बियोग।।

हे प्रभो! गुरुदेव के साथ आपकी सभी माताएँ, आपके प्यारे-प्यारे पुर के लोग, आपके सेवक, आपके सेनापति, आपके आठों मन्त्री, आपके वियोग में तलफ-तलफकर आए हैं और मन्दाकिनी के उस पार वे आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। उस समय भरत जी भी अपनी इच्छा नहीं मार सके। सीताजी वहाँ जा नहीं सकती थीं और उनके साथ किसी को छोड़ना था। सीता जी शक्ति हैं और शक्ति की रक्षा कोई शूर ही कर सकता है, नपुंसक नहीं। यहाँ गोस्वामी जी की शब्दावली देखिये—

सील सिन्धु सुनि गुरु आगमनू। सिय समीप राखे रिपुदमनू।।

राम जी स्वयं शील के समुद्र हैं। जब गुरु का आगमन सुना तो गुरुदेव से मिलने की इच्छा हुई। अब सीताजी के रक्षण हेतु किसे छोड़ा जाए? लक्ष्मण जी को छोड़ नहीं सकते क्योंकि वे जानते हैं कि लक्ष्मण जी सीताजी को नहीं सँभाल सकेंगे। भरत जी को भी नहीं छोड़ा, ये भी नहीं सँभाल सकते क्योंकि सीता जी शक्ति हैं–

वीर वंश की लाज यही है, फिर क्यों वीर न हो प्रहरी
विजन देश है निशा शेष है, निशाचरी माया ठहरी।

वे जानते है कि–**'निसिचर निकर नारि नर चोरा।'** अतः सीताजी की रक्षा में उन्होंने शत्रुघ्नलाल को नियुक्त किया। **'सिय समीप राखे रिपुदमनू'** और **'चले सवेग राम तेहि काला'**, उस समय भरत जी अपना मन नहीं मार सके। सबने अपने-अपने मन की करी पर शत्रुघ्न जी ने अपने मन को मारा। सेवक का स्वभाव तो तौलिये के समान होता है जैसे-तौलिया कभी यह नहीं कहती कि मुझे ऊपर रखो, जहाँ रखो, जैसे भी रखो, जैसे भी पोंछो, सब कुछ सह लेती है बेचारी! तौलिया कभी अपनी इच्छा नहीं कहती। कभी अपनी इच्छा व्यक्त न करना सेवक का सबसे बड़ा मूलमन्त्र है।

एक बार एक गोपी ने कहा कि मुरलिया! तू कुजात तेरी जात निगोड़ी। चन्दन सबको सुरभित करता है पर बाँस को तो चन्दन भी सुरभित नहीं कर पाता, ऐसे बाँस की बाँसुरी, एक पोर की, छोटी सी, एक फिट भी सीधी नहीं हो पाती, तुझमें सात-सात स्थानों पर दाग-छानकर छिद्र किए गए, तू पोली भी है और तुझमें कोई गुण भी नहीं है, फिर भी तू कन्हैया को इतनी प्यारी क्यों है? बार-बार कन्हैया कहते हैं–

राधा रानी दे डारो बाँसुरिया मोरी
दे डारो दे डारो दे डारो राधे। राधा रानी.....
हा हा करत तेरी पाइयाँ परत हूँ
काहे करत बरजोरी हो राधा रानी
दे डारो बाँसुरिया मोरी।

राधा रानी कृष्ण का और कुछ नहीं चुरातीं, क्या कारण है कि वह बाँसुरी चुरा लेती हैं, आपने इस पर कभी विचार किया।

बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय।
सौंह करे भौंहन हँसे दैन कहे नटि जाय।।

राधा रानी बाँसुरी से बहुत अधिक प्रभावित हैं क्योंकि बाँसुरी सेवा का रस सिखा रही है, सेवा-धर्म सिखा रही है। सारे संसार की गुरु राधा रानी हैं और राधा रानी की गुरु है बाँसुरी। वे विनोद में बाँसुरी को सौतन कहती हैं पर वह वास्तव में राधा रानी की गुरु है। इसलिए कहा—

गोप्यः किमाचारदयं कुशलं स्म वेणु-
र्दामोदराधर सुधामपि गोपिकानाम्।
भुङ्क्ते स्वयं यदवशिष्टरसं ह्रदिन्यो
हृष्यत्वचोऽश्रुमुमुचुस्तरवो यथाऽऽर्याः।।

भाग० १०/२१/९

हे गोपियों, इस बाँसुरी ने कौन सा तप किया है, अरे सबको तो प्रभु का चरणामृत भी नहीं मिलता और ये तो प्रभु का अधरामृत पीती रहती है। एक भी क्षण प्रभु इससे दूर रहना पसन्द नहीं करते। राधा रानी इसको इसलिए चुराती हैं जिससे गोपनीयता से प्रभु के वशीकरण का मन्त्र जान सकें।

मुरली तऊ गोपालहिं भावति।
सुन री सखी जदपि नन्दनन्दन नाना भाँति नचावति।
आपुहिं पौढ़ि अधर शय्या पर कर पल्लव तें पद पलटावति।
सूर प्रसन्न जानि एकहुँ पल अधर ते शीश डुलावति।

प्रभु को इसने इतना वशीकृत कैसे किया? कौन सा वशीकरण चूर्ण है इसके पास? तो इसी कारण राधा रानी, बाँसुरी चुराकर उससे वशीकरण मन्त्र पूछती हैं। यह बड़ी विचित्र बात है। सभी लोग चकित हैं कि प्रभु को कैसे वशीकृत किया जाए? **विनयपत्रिका** में गोस्वामी जी ने कहा—

जेहिं गुण तें बस होइ रीझि कै, सो नहिं समुझ पर्‌यो।

मैं समझ ही नहीं पा रहा हूँ कि आप कैसे बस में होते हैं? बिन्दु जी कहते हैं—

यही सद्‌ग्रन्थ कहते हैं यही हरिभक्त गाते हैं।
न जाने कौन से गुण पर दयानिधि रीझ जाते हैं।

कैसे रीझते हैं भगवान? सत्यभामा ने नारद से पूछकर यही भूल की थी कि कौन सा उपाय करूँ कि भगवान वश में हो जाएँ? तब नारद ने कहा कि उनके बराबर का कुछ दान दे दो। फिर नारद जी ने चालाकी से कहा कि उन्हीं को दान में दे दो तो वश में हो जाएँगे। सत्यभामा ठहरी भोली-भाली, उसने कहा-चलो, कृष्ण को दान दे देती हूँ। सूचनापट्ट पर घोषित कर दिया गया कि कल प्रात: द्वारिकाधीश का दान होगा। सूचनापट्ट पर पढ़ते ही सोलह हजार एक सौ सात रानियाँ चढ़ बैठीं कि तुमने ऐसा अकेले कर कैसे दिया। बड़ी आई दान देने वाली। सावधान! तुम दान नहीं दे सकती। तब सत्यभामा ने कहा कि दूँगी तो अवश्य ही, क्योंकि मैंने कह दिया है। अब समस्या यह कि उनको दान ले कौन? एक ब्राह्मण ने कहा मैं लूँगा दान। वह बड़ा चालाक था, उसने सोचा कि द्वारिकाधीश हैं, इनका मुकुट ही बेच दूँगा तो मेरी सात पुश्तें खाएंगी। द्वारिकाधीश तो उनसे भी बड़े खिलाड़ी निकले। उन्होंने अपना मुकुट निकालकर रख दिया और कहा कि नहीं भाई, मेरी गद्दी पर जो बैठेगा, वही यह मुकुट धारण करेगा। ब्राह्मण ने सोचा कि अब मैं इनको नहीं लूँगा, कहाँ से इनको मोहनभोग खिलाऊँगा? अब और अनर्थ हुआ। कोई उन्हें लेने को तैय्यार नहीं। तब नारद जी ने कहा कि अच्छा, मैं ही ले लेता हूँ। अब अन्य रानियों के मना करने पर भी सत्यभामा ने नारद जी को दे दिया। नारद जी द्वारिकाधीश को अपने लोक में ले चले। सब लोग रोने लगे। रानियों ने कहा कि सत्यभामा, हम तुम्हारा गला घोंट देंगे! सत्यभामा को और परेशानी हुई कि अब क्या किया जाए? तब नारद जी ने कहा कि ऐसा करो कि इनके बराबर की कोई पीली वस्तु हमें दे दो तो हम इनको छोड़ दें। पीली वस्तु में क्या दें, तो सब ने कहा चलो, स्वर्ण दे देते हैं। पूरे राज्य का स्वर्ण एकत्र किया गया। तराजू के पलड़े पर द्वारिकाधीश विराजे और एक पलड़े पर पूरा स्वर्ण रखा गया। भला, द्वारिकाधीश कैसे उठ जाएँ? प्रभु को कौन तौल सके? तब रुक्मिणी जी समझ गईं और कहा कि ठीक है, हम उपाय कर देते हैं। शालग्राम की दो तीन दिन वाली पीली पीली तुलसी लाईं और राम नाम लिखकर ज्यों ही रखा, तुरन्त ही द्वारिकाधीश ऊपर और तुलसी नीचे। **'तुलयति इति तुलसी'**, जिसने भगवान को भी हल्का कर डाला, उसका नाम है तुलसी। एक प्रहेलिका है-

आठ पहर चौंसठ घड़ी, ठाकुर के ऊपर ठकुराइन चढ़ी।

यह एक ऐसी ठकुराइन है जो ठाकुर के ऊपर चढ़ी रहती है और इसका नाम है तुलसी।

सत्यभामा ने तो भूल कर दी थी पर भगवती राधा जी भूल नहीं करतीं। वह तो वंशी को चुराती ही इसलिए हैं, जिससे प्रभु के वशीकरण का मन्त्र पूछ सकें। एक दिन राधा जी ने वंशी से कहा कि कौन सा जादू टोना तूने पढ़ लिया है कि प्रभु तुम्हारे बिना सो भी नहीं पाते। तब जो बात वंशी ने कही, वह **'शत्रुघ्न चरित्र'** की व्याख्या के लिए पर्याप्त है।

वंशी ने कहा—'देखो गोपियों! मैं कुछ नहीं जानती। केवल इतना ही जानती हूँ कि मैं प्रभु पर अपनी इच्छा नहीं थोपती। प्रभु जैसे बजाना चाहते हैं, बज जाती हूँ, जहाँ रख देते हैं, वहीं रह लेती हूँ, वे जिससे प्रसन्न रहें, वही करने को तैयार रहती हूँ।

सच्चा सेवक वही है जो स्वामी पर अपनी इच्छा नहीं थोपता अर्थात् जो अपनी इच्छा मार चुका है। यदि इच्छा होगी तो कभी न कभी प्रगट होगी और यदि इच्छा है ही नहीं तो प्रगट कैसे होगी? शत्रुघ्न ने अपनी इच्छा मार डाली है। सभी लोग जा रहे हैं। सबका यही देखने का मन है कि राम जी गुरुजनों से कैसे मिलेंगे? शत्रुघ्न ने अपनी इच्छा मार डाली है, इसलिए भरत से बड़ा सौभाग्य शत्रुघ्न को मिला। अरे, भरत जी तो राम जी के साथ ही रहे, पर शत्रुघ्न जी को तो राम जी ने, सीता जी के चरणों में ही रखा। राम जी तो भगवान हैं। उन्होंने कहा कि हे शत्रुघ्न! दुनिया तो भगवान के पीछे रहती है पर भगवान भी जिसके पीछे रहते हैं, ऐसी भक्ति, सीता के चरणों में तुम्हें सौंप रहा हूँ। इसलिए–**'सिय समीप राखे रिपुदमनू'** यह बात यहाँ ध्यान रखने की है कि सीताजी की रक्षा बहुत कठिन है। लक्ष्मण जी को भी सीताजी की रखवाली सौंपी थी पर लक्ष्मण जी यह काम नहीं कर पाए।

सीता केरि करेहु रखवारी। बुधि विवेक बल समय बिचारी।।

किन्तु लक्ष्मण जी इस परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं हो पाए। सीताजी ने थोड़े से मरम वचन बोले तो लक्ष्मण जी का मन डोल गया—

मरम बचन जब सीता बोला। हरि प्रेरित लछिमन मन डोला।।

इस प्रकार, लक्ष्मण जी चले गए और सीताजी की रक्षा नहीं हो पाई और रामजी ने कह भी दिया—

जनक सुता परिहरी अकेली। आयहु तात बचन मम पेली।।

मानों रामचन्द्र जी लक्ष्मण जी को शत्रुघ्न जी की सेवा का स्मरण करा रहे थे कि लक्ष्मण, तुम कहते हो कि शत्रुघ्न तुमसे छोटे हैं पर आज लगता है कि शत्रुघ्न तुमसे बड़े

हैं क्योंकि शत्रुघ्न जी को भी सीताजी की सेवा में रखा था और तुमको भी सीताजी की सेवा में रखा था किन्तु तुम सीताजी को छोड़कर चले आए और शत्रुघ्न जी नहीं आए। कितनी बड़ी बात हुई कि शत्रुघ्न जी के समय में सीताजी का हरण नहीं हुआ। अर्थात् जो कार्य लक्ष्मण जी नहीं कर पाए, जो कार्य भरत से सम्भव नहीं हो सका, वह कार्य शत्रुघ्न ने कर दिखाया। इसलिए शत्रुघ्न जी का अर्थ है और वह अर्थ है भगवत्कैङ्कर्य। भगवान का सेवाभाव, जीवन का सबसे बड़ा धन है। इसी भाव को सब लोग 'अर्थ्यते', अर्थात् चाहा करते हैं। इस बात की पुष्टि के लिए **'आलवन्दार'** का **'पचासवाँ श्लोक'** उद्धृत कर रहा हूँ--

धिग् शुचिमविनीतं निर्दयं मामलज्जम्,
पर पुरुषयोऽहं योगिवर्याग्रगण्यैः।
विधिशिवसनकाद्यैर्ध्यातमत्यन्तदूरम्-
तव परिकर भावं कामये काम वृत्तः।।

सेवाभाव ही है अर्थ और ऐसे अर्थ हैं शत्रुघ्न और उनकी पत्नी हैं श्रुतिकीर्ति और यही सेवा क्रिया। सेवा-क्रिया से ही सेवाभाव उपजता है।

मुदित अवधपति सकल सुत बधुन्ह समेत निहारि।
जनु पाए महिपाल मनि क्रियन्ह सहित फल चारि।।

।।सियावर रामचन्द्र भगवान की जय।।

शेष चर्चा कल की जाएगी।

तृतीय वाक् पुष्पाञ्जलि सम्पूर्ण

श्रीराघवः शन्तनोतु

।। श्रीमद्राघवो विजयतेतराम् ।।

अथ चतुर्थ वाक् पुष्पाञ्जलि

श्री तुलसीपीठ आमोदवन, चित्रकूट

दिनाङ्क २१.३.९९

मङ्गलाचरण

१) आगच्छ वायुसूनो त्वं मया रामायणी कथा।
प्रारभ्यते भव श्रोता गृहाणासनमुत्तमम्।।

२) रामरत्नमहं वन्दे चित्रकूट पतिं हरिम्।
कौसल्याशुक्ति सम्भूतं जानकीकण्ठभूषणम्।।

३) मन्दाकिनी पयः पूर सिक्तपादाम्बुजाय च।
राघवाय नमस्तस्मै चित्रकूटविहारिणे।।

४) श्री सीतानाथ समारम्भां श्री रामानन्दार्यमध्यमाम्।
अस्मदाचार्य पर्यन्तां वन्दे श्रीगुरु परम्पराम्।।

५) नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं सीतासमारोपितवामभागम्।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम्।।

सीताराम जय सीताराम। सीताराम जय सीताराम।।
सीताराम जय सीताराम। सीताराम जय सीताराम।।

राम वाम दिसि जानकी लखन दाहिनी ओर।
ध्यान सकल कल्यानमय सुरतरु तुलसी तोर।।

परिपूर्णतम परात्पर परमात्मा, अशरणशरण, कारण करण, तारण-तरण, सजल नव राजीव चरण, भक्त भयङ्कटशोक हरण, निखिल विश्वाभरण, मैथिली हृदयाभरण, निरस्त समस्तदूषण, समर निहत खरदूषण, दिनकर कुलभूषण, दूषण दूषण लङ्काधिष्ठित

विभीषण, मर्यादा पुरुषोत्तम, लोकाभिराम राम के कृपापात्र सन्तजन, अनुसूया एवं श्रीसीता जी के चरणारविन्द के चिन्हों पर चलने के लिए कृतप्रतिज्ञ वन्दनीय माताओं, बहनों, स्नेहभाजन श्रोताओं! गोस्वामी जी ने लिखा है—

भेंटि भरत रघुबर समुझाए। तब रिपुदमन हरषि हिय लाए।।

जब शत्रुघ्न को प्रभु ने देखा तो प्रसन्न हो गए। अब तक तो प्रभु का धैर्य टूट गया था क्योंकि प्रभु को डर लगने लगा था कि चौदह वर्ष की यह विशाल अवधि है। कहीं मेरे विरह में विकल यह पागल भरत कुछ कर न बैठे! मैं क्या करूँगा? परन्तु जब शत्रुध्न जी को निहारा, तब बिल्कुल आश्वस्त हो गए कि जब तक शत्रुघ्न रहेंगे तब तक भरत जी का बाल भी बाँका नहीं हो सकता, शत्रुघ्न के द्वारा मेरे भरत की रक्षा होती रहेगी। राम जी विश्वस्त हो गए। जिस प्रकार राधा जी के रहते कृष्ण प्रेम का बाल भी बाँका नहीं हो सकता, उसी प्रकार शत्रुघ्न के रहते राम-प्रेम का बाल-बाँका नहीं हो सकता। **'तब रिपुदमन हरषि हिय लाए'** यहाँ गोस्वामी जी ने 'हरषि' शब्द का प्रयोग किया ही है, पर आगे चलकर चौदह वर्ष की अवधि बीतने के पश्चात् प्रभु जब अयोध्या लौटे तब भरत व शत्रुघ्न ने उनको प्रणाम किया, मानो शत्रुघ्न जी ने कहा—''सरकार! आपने जो भार मुझे सौंपा था, कि भरत को कहीं कुछ हो न जाए और मैंने आपको वचन दिया था कि जब तक शत्रुघ्न के शरीर में एक बूँद भी रक्त रहेगा, तब तक भरत भैय्या का कुछ नहीं बिगड़ने वाला। तो लीजिये, प्रभु चौदह वर्षों तक मैंने आपकी निधि सँभालकर रखी, अब आप जानिये।'' यह कहकर समर्पित कर दिया। तब गोस्वामी जी ने फिर लिखा—

पुनि प्रभु हरषि शत्रुहन भेंटे हृदय लगाइ।

श्रीरामचरितमानस कहने के लिए श्रम करना पड़ता है और तब रामचरितमानस जी उपस्थित होते हैं। जब तक राम नाम का बहुत जप न किया जाए श्रीरामचरितमानस जी मानस में नहीं आते। देखिये बहुत सुन्दर उपक्रम है। प्रारम्भ में भी—

'तब रिपुदमन हरषि हिय लाए'

और उपसंहार में भी—

पुनि प्रभु हरषि शत्रुहन भेंटे हृदय लगाइ।

यहाँ दोनों बार **'हरषि'** शब्द आया है कि तुम धन्य हो शत्रुघ्न! भरत ने मेरे भौतिक

धन की रक्षा की और तुमने मेरे अध्यात्मिक धन की रक्षा की। मैं तो तुम्हें भरत से बड़ा मानता हूँ क्योंकि भौतिक धन राज्य चला जाता तो वह लौटकर आ सकता था पर यदि कहीं भरत चले जाते तो वे लौटकर आने वाले नहीं थे, तब तो मेरा सब कुछ लुट जाता।

देखिये, एक बात बताऊँ, आज सुना ही रहा हूँ। मित्रो! मैं झूठ नहीं बोल रहा हूँ। इधर से सन्तों के आशीर्वाद मुझे मिल रहे हैं। जिधर मैं इशारा कर रहा हूँ उधर से लग रहा है मानो अनेकानेक अदृष्ट सन्त प्रसन्न होकर आशीर्वाद की बौछारें कर रहे हैं। इसलिए इस जीवन में, मेरे मन में जो भाव कभी नहीं आए, आज नए-नए भाव आते जा रहे हैं और मैं आज आपके भाग्य को प्रणाम कर रहा हूँ कि आपके कारण, आपकी उपस्थिति के कारण, आपके हृदय में रहने वाले भगवान के कारण, मेरे मन में ऐसी-ऐसी झाँकियों के दर्शन हो रहे हैं।

भरत जी के जीवन के प्रति लोग आशङ्कित हैं। यह समझ में नहीं आता कि भरत जी के जीवन की रक्षा कैसे होगी? यद्यपि भगवान ने **'प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्ही'** के प्रकरण से भरत के जीवन की व्यवस्था कर दी थी। भरत जी के जीवन के प्रति पूरे अयोध्यावासी आशङ्कित हैं—

बहुरहिं लखन भरत बन जाहीं। सब कर हित सबके मन माहीं।।

पूरे अयोध्यावासी इस पक्ष में हैं कि श्रीभरत जी यदि राम जी के साथ रह लेते तो इनके जीवन की रक्षा हो जाती। ये तो राम जी के बिना रह ही नहीं सकते। राम-वियोग में जो दृश्य हमने दशरथ जी का देखा, कहीं उसकी पुनरावृत्ति न हो जाए। सारा अयोध्या का समाज इसी असमञ्जस में पड़ा है कि इसका कैसे समाधान निकाला जाए?

हमने तो चित्रकूट को अपनी साधना में देखा है। जब सब लोग रामजी से मिलने आए थे तो अयोध्या की सेना ने, जहाँ वर्तमान में **'तुलसीपीठ परिसर'** है, उस स्थान पर पड़ाव डाला था और **'जानकीकुण्ड'** के परिसर में जनक जी की सेना ने पड़ाव डाला था, इसलिए जानकीकुण्ड का क्षेत्र मिथिला का क्षेत्र माना जाता है। इसमें प्रमाण मत पूछना-**'अत्र मदीया साधना प्रमाणम्।'** इसमें हमारे छः छः अनुष्ठानों की साधना ही प्रमाण है। चित्रकूट में **जानकी कुण्ड** का क्षेत्र मिथिला पक्ष का माना जाता है। यह क्षेत्र कन्यापक्ष का है। मैथिली गली, वैदेही वाटिका, क्षेत्र में कन्या पक्ष की भाषा बोली जाती

है और हमारा यह **तुलसीपीठ** का क्षेत्र अवध पक्ष का है और वर पक्ष का क्षेत्र जरा जोरदार होता है। जानकीकुण्ड परिसर से सुनयना जी, तुलसीपीठ परिसर में विराजमान कौसल्या जी से मिलनें आईं। दोनों समधिन समधिन का आज चित्रकूट में मिलाप हो रहा है। कौसल्या जी, पहले कभी जनकपुर तो गई नहीं थीं। आजकल तो माताएँ भी बारात में जाती हैं परन्तु पहले ऐसा तो होता नहीं था। कौसल्या जी को देखने के लिए सुनयना जी की आँखें तरस रही थीं कि वह कौन महाभाग्यवती महिला होगी, जिसने राघवेन्द्र सरकार को अपने गर्भ में धारण किया। इधर कौसल्या जी की आँखें तरस रही थीं कि वह भूरिभागधेय महिला कौन होगी, जिसने अपने आँचल में सैरध्वजी जनकनन्दिनी जी को रखा। दोनों का मिलाप हुआ—

सावकाश सुंनि सब सिय सासू। आयो जनकराज रविवासू।।

जनकराज का सारा रनिवास उपस्थित हुआ। दोनों की चर्चाएँ चलने लगीं। सुनयना जी ने तो अपने ज्ञान के आधार पर कह दिया कि—

लखन राम सिय जाहु बन भल परिनाम न पोचु।

सुनयना जी ने कह दिया कि महारानी जी! श्रीराम, सीता व लक्ष्मण वन को जाएँ, परिणाम अच्छा रहेगा, यह याज्ञवल्क्य जी ने बताया है। इतना सुनते ही कौसल्या जी का हृदय करुणा से भर गया। यहाँ **'गह्वर'** शब्द का प्रयोग कर रहे हैं, जो महाभारत में एक बार आया है—

याज्ञसेन्या वचश्श्रुत्वा कृष्णो गह्वरितो भवत।

कौसल्या जी का हृदय गह्वरित हो गया अर्थात् शोक से घिर गया—

गहवरि हिय कह कौसिला मोहि भरत कर सोच।

कौसल्या जी का हृदय चीत्कार कर उठा। उन्होंने कहा—'महारानी जी! आपने भले ही कह दिया कि राम, सीता और लक्ष्मण जी के चले जाने से परिणाम अच्छा रहेगा परन्तु क्या अच्छा रहेगा? अरे! राक्षसों का वध होगा, इतना ही तो अच्छा रहेगा पर इतना बताइये कि हमारे पागल भरत की कौन रक्षा करेगा? इतना गम्भीर चिन्तन और भला किसका होगा? वनवास के समय भी रामजी उनसे विदा माँगने आए। सुमन्त्र के पुत्र ने रामजी के वनवास का पूरा कारण बता दिया, तब कौसल्या जी ने पहली बात यही कही कि चक्रवर्ती जी ने राज्य के बदले वनवास दिया, मुझे कोई आपत्ति नहीं पर तुम्हारे बिना

सबसे पहली समस्या भरत के प्राण की है—

राज देन कहि दीन्ह बनु मोहि न सो दुख लेसुं।
तुम्ह बिनु भरतहिं भूपतिहिं प्रजहिं प्रचण्ड कलेसु।।

कौसल्या जी ने कहा-समधिन जी, मुझे किसी की चिन्ता नहीं है पर अपने इस पागल भरत की चिन्ता है। इसके आँसुओं को देखकर मेरा हृदय काँप जाता है। जब यह आधी रात को राम कहकर चीत्कार करने लगता है, रोने लगता है, तो इसके आँसुओं की धारा से सरजू में बाढ़ आ जाती है। क्या करूँ मैं? इसलिए—

रानि राय सन अवसरु पाई। आपनि भाँति कहिय समुझाई।।
रखिहहिं लखन भरत गमनहिं बन। जो यह मत माने महीप मन।।
सो तुम जतनु करेहु सुविचारी। मोरे सोच भरत कर भारी।।

कौसल्या जी ने कहा—महारानी जी! मैं समधनी जी से बात तो नहीं कर सकती। कदाचित् आप अपनी दृष्टि से समझाकर कहियेगा कि लक्ष्मण जी को अयोध्या में रखा जाए और भरत जी राम जी के साथ चले जाएँ। यदि यह मत महाराज मान रहे हों तो आप पूर्ण यत्न करके मनवा लीजिये। मेरा मन यही है कि इस पागल को रामजी ले जाएँ जिससे इसके प्राणों की रक्षा हो जाएगी। दशरथ जी के प्रेम की कमी तो भरत के प्रेम ने पूरी कर दी पर यदि भरत कहीं उठ गया तो भारत ही अनाथ हो जाएगा। इसलिए समधिन जी, मेरा मन तो यही है कि रामजी, भरत को साथ में ले लें, क्योंकि—

गूढ़ सनेह भरत मनमाहीं। रहे नीक मोहिं लागत नाहीं।।

कौसल्या जी ने कहा कि भरत के हृदय में गूढ़ प्रेम है। प्रेम यदि स्पष्ट रहे तो उसका उपचार भी हो, पर ये तो रोते रोते आँसुओं को पी जाता है, किसी से कहता नहीं है। इतना विचित्र है यह कि आँसुओं को गिरने नहीं देता क्योंकि यह जानता है कि राम चरणारविन्द में समर्पित ये आँसू यदि पृथ्वी पर गिर जाएँगे, और कोई इन्हें चरणों से कुचल देगा, तो सेवा का अपराध हो जाएगा। इसलिए जब इसके आँसू गिरते हैं तो ये उन आँसुओं को पी जाता है।। इसका प्रेम गूढ़ है। सामान्य व्यक्ति की दृष्टि में नहीं आता। भाव यह है कि कौसल्या जी सशङ्कित हैं। यहाँ तक कि जब रामजी ने निर्णय दे दिया कि भरत जी को अयोध्या में रहना है, तो वहाँ भी-**'राम मातु दुखसुख सब जानी'**, राम माता को यह निर्णय अच्छा नहीं लगा। उन्होंने कहा, राघव! तुमने यह ठीक निर्णय नहीं किया।

तुमको पता नहीं कि तुम इस पागल को बचा नहीं सकोगे!

राम जी ने कहा कि पादुका देकर इनके प्राणों की रक्षा करुँगा।

रामजी ने पादुका जी को आज्ञा दी कि चौदह वर्ष तक भरत के प्राणों की रक्षा करना।

कौसल्या जी को विश्वास नहीं हो रहा है कि पादुकाएँ भरत के प्राणों की रक्षा कैसे करेंगी?

कौसल्या जी को विश्वास हो या न हो पर पादुका देकर भी भगवान को यह विश्वास नहीं है। यद्यपि रामजी ने पादुका देकर भरत की प्राण-रक्षा का एक प्रयास किया है।

रही नृप की बिगरी सबकी, अब एक ही भलो निहारो।
तुलसी प्रभु निज चरण पीठ मिस भरत प्राण रखवारो।।

यद्यपि अयोध्या के तोता मैना भी कह रहे हैं कि लगता है कि किसी प्रकार भरत के प्राणों की रक्षा होगी। औरों की बात छोड़िये, तुलसीदास जी भी नहीं विश्वस्त हो पा रहे हैं कि पादुकाएँ, भरत जी के प्राणों की रक्षा कर सकेंगी। इसलिए उन्होंने जनु की उत्प्रेक्षा की है—

चरनपीठ करुना निधान के। जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के।।

स्वयं गोस्वामी जी कहते हैं कि ये प्रजा के प्राणों की रक्षा तो कर लेंगे पर भरत के प्राणों की रक्षा करना इसके बस की बात नहीं। सारा समाज चिन्तित है। अब इतनी बड़ी चिन्ता की घड़ी में, जब राम जी ने शत्रुघ्न जी को देखा तो स्वयं सर्वज्ञ शिरोमणि, जो अब तक समाधान नहीं ढूँढ़ पाए थे, उनको समाधान मिल गया।

देखिये, राम जी भरत जी के बिना नहीं रह सकते। **'भरत हृदय सिय राम निवासू'**, भरत जी का हृदय श्रीसीताराम जी का मन्दिर है और यदि मन्दिर नहीं रहेगा तो भगवान कहाँ रहेंगे? अपने मन्दिर की चिन्ता तो राम जी को होगी ही। इसलिए भगवान भी भरत प्राण-रक्षण का समाधान सोच नहीं पा रहे थे पर शत्रुघ्न जी को देखते ही उनको समाधान मिल गया।

राम जी ने शत्रुघ्न जी से कहा—**"शत्रुहनऊ! अब तोहार जिम्मेदारी आय कि**

अब तू चौदह बरिस तक अपने भैय्या के प्राण की रक्षा करत रह। कौनों प्रकार **से इनके प्राणन में बाधा न पड़ै चाही।''** और तब **'रिपुदमन हरषि उर लाए'**, भगवान राम ने शत्रुघ्न को मानों हृदय से लगाकर सङ्केत दिया कि भैय्या, यदि तुमने भरत के प्राणों की रक्षा कर ली तो यह तुम्हारी सबसे बड़ी सेवा मान ली जाएगी और यही हुआ भी। चौदह वर्ष बीतने के अन्तिम समय तक राम जी भरत के प्राणों के प्रति चिन्तित रहे–

बीते अवधि जाउँ जो, जिअत न पावउँ बीर।

राम जी सदा सशङ्कित रहे और कभी सुख की नींद नहीं ली–

जब जब राम अवध सुधि करहीं। तब तब बारि बिलोचन भरहीं।।
सुमिरु मातु पितु परिजन भाई। भरत सनेह सील सेवकाई।।

और तब–**'कृपासिन्धु प्रभु होहिं दुखारी'**, राम जी कहते हैं कि सब पर मेरा सङ्कल्प चलेगा पर भरत पर मेरा सङ्कल्प नहीं चल पा रहा है। इतना बड़ा कार्य जब शत्रुघ्न ने कर लिया और रामजी से भरत जी मिल गए, तब शत्रुघ्न जी ने रामजी को प्रणाम करके कहा–सरकार! मैंने आपकी जिम्मेदारी निभा ली। इन चौदह वर्षों में मैंने क्या-क्या भोगा है, मैं ही जानता हूँ। भरत भैय्या रोते रहे और मैं रोकर भी नहीं रोया क्योंकि यदि एक व्यक्ति रो रहा है और दूसरा व्यक्ति भी रोने लगे, तो वह व्यक्ति तो और रोएगा। ये रोते रहे और मैं इनके आँसू पोंछता रहा। इस प्रकार इन चौदह वर्षों में सम्पूर्ण अयोध्या की जिम्मेदारी केवल इस एक महापुरुष ने सँभाली। भरत जी का स्वास्थ्य गिरता गया–

देह दिनै दिन दूबरि होई। घट न तेज बल मुख छबि सोई।।

इस पंक्ति में **'गीताप्रेस'** ने भयङ्कर अपराध किया है। उसमें **'घट न तेज बल'** के स्थान पर **'घटै तेज बल'** ऐसा पाठ किया है। आप बताइये तपस्या से तेज घटता है या बढ़ता है? वहाँ तेज से अर्थ उन्होंने **'मेद्य'** निकाला। ऐसा कुछ नहीं है। मैंने पुरानी प्रति में देखा तो वहाँ **'घट न तेज बल'**, पाठ है। अर्थात् भरत जी का शरीर दुर्बल हो रहा है पर मुख का तेज नहीं घट रहा है। उनका स्वास्थ्य गिरता जा रहा है। सभी लोग चिन्तित हैं कि क्या करें? इधर माण्डवी जी बार-बार एकान्त में शत्रुघ्न जी से कहती हैं कि देवर जी! आर्यपुत्र की रक्षा करते रहियेगा। अब शत्रुघ्न जी माण्डवी जी को

समझाएँ, कि कौसल्या जी को समझाएँ या गुरुजनों और गुरुपत्नियों को समझाएँ। सबको समझाते-समझाते सबके आँसू पोंछते-पोंछते, स्वयं अपनी कोई चिन्ता न करते हुए, श्रुतिकीर्ति जी की कोई चिन्ता, अपेक्षा न करके चौदह वर्षों तक सम्पूर्ण अयोध्या का भार सँभाला और अन्त में रामजी को, उनकी निधि भरत जी को सौंपते हुए कहा—सरकार, अब तक मैंने सँभाल लिया, अब आप सँभालिये—

पुनि प्रभु हरषि शत्रुहन भेंटे हृदय लगाइ।

प्रभु ने हर्षित होकर शत्रुघ्न जी को हृदय से लगा लिया और कहा कि शत्रुघ्न, जो कार्य मैं नहीं कर सका, जो काम अन्य किसी से नहीं हुआ, वह कार्य, तुमने करके दिखा दिया। **सिद्धान्त भी यही है कि काम निरन्तर अर्थ पर आधारित होता है और मोक्ष निरन्तर धर्म पर आधारित होता है। काम का आधार है अर्थ और मोक्ष का आधार है धर्म। यदि अर्थ नहीं रहेगा तो कामना की पूर्ति नहीं हो सकती और यदि धर्म नहीं रहेगा तो मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती।** क्योंकि—

धर्म तें बिरति जोग तें जाना। ज्ञान मोच्छप्रद बेद बखाना।।

धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते।
नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामोलाभाय हि।।
कामस्य नेन्द्रिय प्रीतिर्लाभो जीवेत यावता।
जीवस्य तत्व जिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः।।

श्रीमद्भा० १/२/९, १०

निश्चित, '**अर्थ**' ही '**काम**' को सँभालता है। यहाँ काम से तात्पर्य भगवत्प्रेम से है और भगवत्प्रेम को सँभालता है दैन्य। दैन्य नहीं रहेगा तो भगवत्प्रेम हो ही नहीं सकता। तो जिस प्रकार दैन्य भगवत्प्रेम को सँभालता है, उसी प्रकार शत्रुघ्न जी, भरत जी को सँभालते हैं। एक बात और कहूँ तो आप बिल्कुल समझ जाएँगे। कृष्णावतार में राधा जी निराकार भगवत्प्रेम को सँभालती हैं और रामावतार में शत्रुघ्न जी, साकार भगवत्प्रेम को सँभालते हैं। यही दोनों की संक्षिप्त व्याख्या है।

बड़ा मधुर प्रसङ्ग है। चित्रकूट में सीताजी के समीप शत्रुघ्न जी को रखा गया—

सीलसिन्धु सुनि गुरु आगमनू। सिय समीप राखे रिपुदमनू।।

राम जी ने सीताजी के समीप शत्रुघ्न जी को इसलिए रखा क्योंकि राघवेन्द्र सरकार

का यह चिन्तन था कि शत्रुघ्न जी कैंकर्य अर्थात् दैन्य हैं। दैन्य का अपरपर्याय कैंकर्य है। यह मैं कोई अपसिद्धान्त नहीं कह रहा हूँ। दैन्य ही भवगत्कैंकर्य का अपरपर्याय है। यदि जीवन में दीनता नहीं रही तो कोई सेवा कर ही नहीं सकता।

परम प्रकास रूप दिन राती। नहिं तहँ चहिय दिया घृत बाती।।

सेवा वही कर सकता है जो दीन हो जाए, मान और अपमान से ऊपर उठ जाए। सब कुछ करना सरल है पर हाथ में झाड़ू उठाना बहुत कठिन है। मुँह लटक जाता है। एक बार किसीने हमसे पूछा कि आप तो जगद्गुरु रामानन्दाचार्य हैं, आप अपने हाथों से सेवा क्यों करते हैं? पुजारी जी से सेवा करवाया कीजिये।

मैंने कहा—क्यों करवाऊँ? मेरे हाथों का क्या होगा? अरे, हाथों का फल तो भगवान की सेवा है।

बिना दैन्य के सेवा नहीं हो सकती, और जब तक जीवन में भगवान की भक्ति नहीं आती, तब तक दैन्य भी नहीं होता। सब कुछ हो जाता है पर 'ईगो' (Ego) तो तभी जाता है, जब गोविन्द की भक्ति आती है क्योंकि 'ईगो' को देखकर भगवान कहते हैं 'आई गो' (I go) अर्थात् मैं जाता हूँ, तू अपना ईगो (ego) सँभाल। इसी प्रकार, जब हम गोविन्द का गो (go) उच्चारण करते हैं तो गोविन्द चल देते हैं किन्तु जब पूरा उच्चारण सुन लेते हैं गोविन्द तो जब देखते हैं ईगो एण्ड (Ego end) हो गया, माने अहङ्कार चला गया, तब गोविन्द आ गए। अंग्रेजी में गो (go), वेण्ट (went), गोन (gone) होता है। जब गो कहते हैं तो ईगो ने जाना प्रारम्भ कर दिया और 'विन्द' कहते-कहते तो ईगो मानो चला ही गया।

भगवान आनन्दकन्द ने सीताजी के साथ शत्रुघ्न जी को इसलिए रखा क्योंकि वे दैन्य हैं, भगवद् कैंकर्य हैं अर्थात् जब तक ये भक्ति के समीप नहीं रहेंगे और जब तक इन पर भक्ति महारानी की कृपा नहीं होगी, तब तक दैन्य का पोषण नहीं हो सकता। अतएव शत्रुघ्न लाल को आगे की भूमिका में पोषित करने हेतु भगवान राम ने, इनको सीता जी के समीप रखा। शत्रुघ्न जी से रामजी ने कहा—''शत्रुघ्न! तुम अपनी भाभी माँ के पास रहो, तब तक हम लोग गुरुजनों से मिलकर आते हैं।'' जब वे लोग गुरुजनों के पास गए तो तब तक इधर हमारी बहूरानी जी, सीता महारानी जी ने शत्रुघ्न जी को पोषकर इतना स्वस्थ बना दिया कि अब तुम चौदह वर्ष तक अकेले पूरी अयोध्या की

रक्षा करते रहोगे। इसीलिए तो चित्रकूट के कोल-किरात और हम आप गाते हैं कि-

मन भूल मत जइयो सीतारानी के चरण
सीतारानी के चरण महारानी के चरण। मन भूल.....
सीतारानी के चरण युवरानी के चरण। मन भूल.....
सीतारानी के चरण राजरानी के चरण। मन भूल.....
सीतारानी के चरण बहूरानी के चरण। मन भूल.....
जनकलली के पद कमल, जब लगि उर नहिं आस।
राम भ्रमर आवत नहीं, तब लगि ताके पास।।
सीलसिन्धु सुनि गुरु आगमनू। सिय समीप राखे रिपुदमनू।।

श्री चित्रकूट का परम पावन क्षेत्र, भक्ति का अगाध भण्डार है और उस चित्रकूट के परम पावन क्षेत्र में सीताजी जैसी साक्षात् भक्ति और उन भक्ति महारानी के चरणों में उनके देवर श्री शत्रुघ्नलाल जी को रखने का एक बहुत सुन्दर अभिप्राय यह था कि शत्रुघ्नलाल जी महाराज, भरत जी के अतिरिक्त और किसी को नहीं जानते। उनके जीवन में राम जी की उतनी बड़ी सत्ता नहीं है, जितनी कि भरतजी की है। और लोग राम जी को साध्य मानते हैं, पर शत्रुघ्नलाल जी राम-प्रेम को साध्य मानते हैं। और लोग कहते हैं कि राम जी मिल जाएँ पर शत्रुघ्न जी कहते हैं कि राम जी मिलें चाहे न मिलें, पर रामजी का प्रेम मिल जाए। वास्तव में, शत्रुघ्न जी की बात, बहुत सही है और बिल्कुल सत्य है। राम तो सबको मिलते हैं और उनके मिलने में कोई बड़ी बात नहीं। राम जी तो रावण को भी मिले, कुम्भकर्ण को भी मिले, शूर्पणखा को भी मिले। इसी प्रकार, भगवान कृष्ण भी, सबको मिले। उस शिशुपाल को भी मिले, जो भगवान को प्रतिदिन एक सौ गालियाँ देता था और जब गालियाँ देते देते उसका गला सूख जाता था, तब नालायक पानी पी पीकर गाली देता था-

नेम तें शिशुपाल प्रभु कहँ देत गनि गनि गारी

गाली देने वाले शिशुपाल को भी भगवान मिले और गोपियों को भी भगवान मिले। तो क्या आप गोपियों से शिशुपाल की तुलना करियेगा? एक ही भगवान तो दोनों को मिल रहे हैं पर जब शिशुपाल को भगवान मिल रहे हैं तो दण्डावच्छिन्न चैतन्य के रूप में मिल रहे हैं, मारने के लिए मिल रहे हैं और जब गोपियों को भगवान मिल रहे हैं तो

प्रेमावच्छिन्न चैतन्य प्रेम पीयूष से उनको शृंङ्गारने के लिए मिल रहे हैं। एक ही भगवान शिशुपाल को सुदर्शन चक्र उठाकर, उसको मारने के लिए, दण्डधर रूप में मिल रहे हैं और वही भगवान गोपियों के मुख को अपने कर-कमल के तौलिया से पोंछ रहे हैं—

प्रामृजत् करुण प्रेम्णा शन्तमेनाङ्गपाणिना।

रुमाल से, भगवान गोपियों का मुख पोंछते हैं। भगवान का मिलना उतना कठिन नहीं है, जितना भगवान के प्रेम का मिलना कठिन है। भगवान के मिलने से जीवन उतना धन्य नहीं होता जितना कि भगवान का प्रेम मिलने से जीवन धन्य होता है। भगवान तो हमसे मिलकर चले जाते हैं, प्रतिदिन भगवान, जीव को मिलते हैं। हम जब छः छः घण्टे सोते रहते हैं तो भगवान हमको दुलारते हैं पर हम तो खर्राटे भरकर सोते रहते हैं। इसलिए भगवद्प्राप्ति उतनी कठिन नहीं है जितनी कठिन है भगवत्प्रेम की प्राप्ति। भगवान का प्रेम मिल जाए, इसलिए भरत जी का मत है—

साधन सिद्धि राम पदनेहू। मोहि लखि परत भरत मत एहू।।

भरत जी का मत है साधन की सिद्धि है राम जी का प्रेम। वास्तव में भरत जी हैं भी रामजी का प्रेम इसलिए शत्रुघ्न जी कहते हैं कि यदि मुझे राम जी का प्रेम मिल गया, तो मुझे राम जी की कोई आवश्यकता नहीं। वो तो साकार राम प्रेम को अपना साध्य मानते हैं। शत्रुघ्न जी यह बात जानते हैं कि स्वामी से श्रेष्ठ उसका गुरु होता है, अतः उन्हें यह उत्सुकता है कि भरत जी का गुरु कौन है? ढूँढने लगे कि राम-प्रेम की दीक्षा भरत जी ने कहाँ से ली है?

भरत जी, निरन्तर चक्रवर्ती जी से कहते रहे कि पिताजी, मुझे राम-प्रेम की दीक्षा दीजिये।

दशरथ जी ने कहा—पगले, राम प्रेम की मुझसे दीक्षा ले रहा है? फिर धीरे से कहा कि किसी से कहना नहीं, राम-प्रेम दीक्षा तो बड़ी बहूरानी जी देंगी। राम-प्रेम की दीक्षा देने में तो वे ही समर्थ हैं, और कोई समर्थ नहीं है। सीताजी, जनकनन्दिनी जगज्जननी, बड़ी बहूरानी ही राम-प्रेम की दीक्षा दे सकती हैं।

इसलिये जब दशरथ जी का देहावसान हुआ तो भरत जी ने उनको एक उपालम्भ दिया—

चलत न देखन पायउँ तोही। तात न रामहिं सौंपेहु मोही।।

सामान्य लोग, इसका यह अर्थ करेंगे कि, हे पिताजी, आपने राम जी को मुझे नहीं सौंपा अर्थात् मेरी रक्षा के लिए रामजी को नियुक्त नहीं किया, भरत जी यह नहीं कहना चाहते। वे तो यही कहना चाहते हैं कि आपने जीते जी मुझे वैष्णव नहीं बनाया। अब मैं बिना गुरु के रह रहा हूँ। किसको गुरु बनाऊँ? निगुरा कैसे जीवित रहूँगा? मानों भरत जी की आत्मा ने सङ्केत दिया कि चुप रहो, दीक्षा लेने के लिए तीर्थ में जाना चाहिए। अब यह घर दीक्षा लायक नहीं रह गया क्योंकि तुम्हारी माँ ने उसे श्मशान बना दिया है–

कपट सयानि न कहत कछु जागति मनहुँ मसान

चिन्ताकुल भरत जी कहते हैं कि क्या करूँ पिताजी? मानो पिताजी ने कह दिया कि तुम वैष्णव दीक्षा लेने के लिए चित्रकूट जाओ और वहाँ जाकर अपनी भाभी माँ के चरण पकड़ लेना। वास्तव में दशरथ जी महाराज जितना अपनी बड़ी बहूरानी को जानते हैं, उतना कोई नहीं जानता। जनक जी भी उतना नहीं जानते और सुनयना जी भी उतना नहीं जानतीं और अन्य कोई भी उतना नहीं जानता। इन राम-प्रेमियों का एक सम्प्रदाय है। जनक जी भी गूढ़ सनेही हैं–

जिन्हहिं राम पद गूढ़ सनेहू।

उसी परम्परा में जानकी जी भी हैं–

गूढ़ प्रेम लखि परत न काहू।

और उसी परम्परा में भरत जी भी होंगे–

गूढ़ सनेह भरत मन माहीं।

गूढ़ प्रेमियों का एक सम्प्रदाय है। इस सम्प्रदाय के दो अनुगामी और एक आचार्या हैं। सीताजी इस सम्प्रदाय की आचार्या हैं और दशरथ जी तथा भरत जी अनुगामी हैं। जब भरत जी महाराज चित्रकूट आए तो

सानुज भरत उमगि अनुरागा। धरि सिर सिय पद पदुम परागा।।

देखिये, श्रीरामचरितमानस जी, रहस्य ग्रन्थ है। वेद, वाद ग्रन्थ है और वाल्मीकि रामायण, सिद्धान्त ग्रन्थ है। श्रीरामचरितमानस, रहस्य ग्रन्थ होने के कारण, इसमें निरन्तर सङ्केत स्पष्ट नहीं होता तथा साङ्केतिक भाषा अधिक होती है। गोस्वामी जी ने

लिखा—'**धरि सिर सिय पद पदुम परागा।**' '**पदुम परागा**' शब्द का तात्पर्य जानने के लिए श्रीरामचरितमानस जी की प्रथम चौपाई में ही इसका प्रयोग हुआ है—

बन्दउँ गुरुपद 'पदुम परागा'

यहाँ पुनः 'पद पदुम परागा', शब्द का प्रयोग गुरु के लिए आया है—

धरि सिर सिय 'पद पदुम परागा'।

यहाँ भी भरत जी ने आनन्द में उमङ्गित होकर बड़ी बहूरानी जी अर्थात् सीताजी को अपना गुरु बना लिया और तत्काल दीक्षा देकर सीताजी ने, सिर पर हाथ रखकर बैठा लिया—

पुनि पुनि करत प्रनाम उठाए। सिर कर कमल परसि बैठाए।।

यह हमारे यहाँ आचार्यों का नियम है कि जब हम किसी को दीक्षा देते हैं तो सिर पर हाथ रख देते हैं तो सीताजी ने—

सिर कर कमल परसि बैठाए।
सीय असीस दीन्ह मन माहीं। मगन सनेह देह सुधि नाहीं।।

सीता जी ने आशीर्वाद दिया—

सब विधि सानुकूल लखि सीता। भे निसोच उर अपडर बीता।।

जब सीताजी सानुकूल हो गईं। अरे, जब गुरु प्रसन्न तो गोविन्द को तो प्रसन्न होना ही है—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।

अब तक भरत जी को लग रहा था कि ब्रह्मा जी कुपित हैं—

विधिबाम की करनी कठिन

और जब ब्रह्मा कुपित होते हैं तो रक्षा तो गुरु ही करता है—

राखहिं गुरु जो कोप बिधाता। गुरु विरोध नहिं को जग त्राता।।

इस प्रकार जब सीताजी की कृपा प्राप्त हो गई तो भरत जी का डर समाप्त हो गया—'**भे निसोच उर अपडर बीता।**'भरत जी निर्भीक हुए तो शत्रुघ्नलाल जी बड़े

प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा—यह तो बहुत सुन्दर बात है कि आज मेरे आराध्य की गुरुदेव श्रीसीता जी मिल गईं। गोविन्द से भी गुरु का स्थान बड़ा होता है। अब मैं गोविन्द की सेवा नहीं करुँगा क्योंकि गोविन्द तो जा रहे हैं अपने गुरुजी से मिलने और मैं अब अपने प्रभु के गुरुजी की सेवा करूँगा। इसीलिए—

सीलसिन्धु सुनि गुरु आगमनू। सिय समीप राखे रिपुदमनू।।

भरत जी यहाँ गोविन्द की सेवा कर रहे हैं और शत्रुघ्न जी भरत जी के गुरु की सेवा में हैं। तो कक्षा बड़ी हो गई शत्रुघ्न की—

तुम्हतें अधिक गुरुहि जिय जानी। सकल भाय सेवहिं सनमानी।।

इसलिये शत्रुघ्न की इस कक्षा ने अर्थ की अर्थवत्ता सिद्ध कर दी और यही दैन्य भगवद्कैंकर्य, अर्थ है और इसी की सब लोग इच्छा करते हैं, प्रार्थना करते हैं और उसकी क्रिया है श्रुतिकीर्ति अर्थात् सेवा। सर्वत्र शत्रुघ्न सेवा ही करते हैं। और वही श्रुतिकीर्ति है उनकी। उनकी श्रुतिकीर्ति, उनके साथ ही रहती है। बार-बार देखिये—

भाइहिं सौंपि मातु सेवकाई। आपु निसादहिं लीन्ह बुलाई।।

श्रुतिकीर्ति ही शत्रुघ्न की सेवा का आकार है। जब वे सेवा करते हैं तो वे उनके साथ रहती हैं। यहाँ भी सेवा की और, जब गुरु की सेवा होने लगी तो—

साथ बुलाइ भाई लघु दीन्हे। विप्रन्ह सहित गवन बन कीन्हें।

माता की सेवा करने गए तो भी श्रुतिकीर्ति, गुरु की सेवा करने गए तो भी श्रुतिकीर्ति, और आगे चलकर—

पुनि सिख दीन्ह बोलि लघु भाई। सौंपी सकल मातु सेवकाई।।

उत्तरार्ध में, जब सभी माताओं की सेवा करते हैं तो सेवा में शक्ति देती हैं श्रुतिकीर्ति। अन्ततोगत्वा सेवा की पूर्णता देखिये।

लक्ष्मण जी को शक्ति लगी। सुमित्रा जी को सन्देश मिला। हनुमान जी महाराज आए और एक आश्चर्य देखियेगा कि जब हनुमान जी महाराज अयोध्या पर उड़ते-उड़ते आए, तो भरत जी ने बाण मारा,

देखा भरत बिसाल अति निसिचर मन अनुमानि।
बिनु फर सायक मारेउ चाप श्रवन लगि तानि।।

भरत जी ने, हनुमान जी महाराज को बिना फल का बाण क्यों मारा, आप इस पर विचार करिये। वास्तव में यदि बाण में फल लगता, तो हनुमान जी के प्राण चले जाते। किन्तु **'भरत हृदय सिय राम निवासू'** भरत जी के हृदय में तो श्री सीताराम जी विद्यमान हैं ही, तो सीताजी ने कहा—देवर जी! यह आप क्या कर रहे हैं? भरत जी ने कहा—हनुमान जी को बाण मार रहा हूँ। तब सीताजी ने कहा—इसमें से फल निकाल लो क्योंकि तुम्हारे बाण का फल है, निर्वाण और हनुमानजी सगुणोपासक हैं। **'सगुनोपासक मोच्छ न लेहीं'** यह तो रही एक बात और दूसरी बात यदि बाण मारोगे तो कहाँ मारोगे?

भरत जी ने कहा—छाती में।

तब सीताजी ने कहा—अरे पगले! हनुमान जी की छाती में तुम्हारे प्यारे रामजी ही तो रहते हैं। उनका क्या होगा? जब यह बाण हनुमान जी की छाती में लगेगा तो रामजी को ही तो लगेगा और जब रामजी को लगेगा, तो मुझे भी लग जाएगा।

भरत जी ने कहा—अब क्या करूँ?

सीताजी ने कहा—मस्तक पर मार दो, ललाट पर मार दो क्योंकि उनको मैंने अजर अमर का वरदान दिया है। वह मर ही नहीं सकते। तुम्हारा बाण व्यर्थ होगा, तो तुम्हारा अपमान होगा। अत: बाण से, उसका फल निकाल लो।

भरत जी ने फल निकालकर हनुमान जी के बाण मारा

पुङ्खावशेषभरतेषु ललाटलग्नो हा राम लक्ष्मण कुतोऽहमिति ब्रुवाण:।

हनुमान जी महाराज नीचे गिरे। पूरा समाचार मिला। अब यहीं शत्रुघ्न सेवा की अन्तिम परिणति हुई, जब सुमित्रा जी गद्‌गद हुईं। सुमित्रा जी ने सुना कि लखनलाल जी जूझ गए, तो कहने लगीं—

धनि धनि भई कोख मम आजू। जूझेउ सुवन स्वामि हित काजू।।

आज मेरी कोख धन्य हुई। मेरा लाल अपने स्वामी के लिए जूझा और शत्रुघ्न से सुमित्रा जी ने कह दिया कि लखनलाल तो जूझ गए, तुम भी जाओ—

तात जाहु कपि संग रिपुहन सुनि दुहु कर जोरि खरे हैं।

तुरन्त शत्रुघ्न जी उठकर खड़े हो गए, बोले कुछ नहीं। अन्त में हनुमान जी महाराज ने उन्हें बिठाया। इस प्रकार, यहाँ भी उन्होंने भरत जी की रक्षा की, मानों उन्होंने कहा कि

आप चिन्ता न करिये। आपके स्वामी की रक्षा में मैं जा रहा हूँ। मैं शत्रुघ्न हूँ। मेरे सुमिरण से शत्रुओं का वध हो जाता है। मैं जाकर, आपके स्वामी को स्वस्थ लौटा लाऊँगा। अन्त में हनुमान जी महाराज ने रोक दिया।

इस प्रकार श्रीरामचरितमानस की व्याख्या के फलक में शत्रुघ्न जी महाराज, भगवद्दैन्यात्मक, भगवत्कैंकर्य रूप अर्थ और उनकी पत्नी श्रुतिकीर्ति जी, सेवा हैं। लक्ष्मण जी धर्म हैं और उनकी पत्नी उर्मिला जी श्रद्धा हैं। अब धर्म की क्या व्याख्या होगी, लक्ष्मण जी कैसे हैं, इस चरित्र की व्याख्या कल करेंगे।

।।सीताराम जय सीताराम।।

चतुर्थ वाक् पुष्पाञ्जलि सम्पन्न

।।श्रीराघवःशन्तनोतु।।

।। श्रीमद्राघवो विजयतेतराम् ।।

अथ पंचम वाक् पुष्पाञ्जलि

श्री तुलसीपीठ आमोदवन, चित्रकूट

दिनाङ्क २२-३-९९

मङ्गलाचरण

आगच्छ वायुसूनो त्वं मया रामायणी कथा।
प्रारभ्यते भव श्रोता गृहाणासनमुत्तमम्।।

रामरत्नमहं वन्दे चित्रकूटपतिं हरिम्।
कौसल्याशुंक्ति सम्भूतं जानकीकण्ठभूषणम्।।

श्रीरामचन्द्र चरणाम्बुजचर्चितानिधिम्
मन्दाकिनीसलिलसिञ्चितचारुशृंङ्गम्।
विन्ध्याटवी मुकुट रत्नममन्द शोभम्
श्री कामदं गिरिवरं श्रयचित्रकूटम्।।

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गम्, सीतासमारोपितवामभागम्।
पाणौ महासायकचारुचापम्, नमामि रामं रघुवंशनाथम्।।

श्री सीतानाथ समारम्भां श्री रामानन्दार्यमध्यमाम्।
अस्मदाचार्य पर्यन्तां वन्दे श्रीगुरुपरम्पराम्।।

तुलसीं तुलसीपीठं सीतारामौ च लक्ष्मणम्।
मन्दाकिनीं चित्रकूटं कामदं मारुतिं स्तुवे।।

श्री गुरु चरन सरोज रज निज मन कुमुर सुधारि।
बरनँ रघुवर बिमल जसु जो दायक फल चारि।।

।।सियावर रामचन्द्र भगवान की जय।।

लखन सिय रामचन्द्र की जय

सीताराम जय सीताराम। सीताराम जय सीताराम

हमारे यहाँ ठाकुरों के नाम का विभाग है—अयोध्या में राजा राम, मिथिला में सियाराम, दण्डकारण्य में श्रीराम, पर हमारे चित्रकूट में सीताराम हैं। हम तो स्पष्ट जानते हैं कि सीता के सहित ही राम आनन्द में आते हैं। **'सीता राम जय सीताराम'** यही कीर्तन शास्त्रीय भी है।

सीताराम जय सीताराम। सीता राम जय सीताराम।।
सीताराम जय सीताराम। सीताराम जय सीताराम।।

राम बाम दिसि जानकी, लखन दाहिनी ओर।
ध्यान सकल कल्यानमय सुरुतरु तुलसी तोर।।

।।सियावर रामचन्द्र भगवान की जय।।

मुदित अवधपति सकल सुत बधुन्ह समेत निहारि।
जनु पाए महिपाल मनि क्रियन्ह सहित फल चारि।।

गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज की जय।

अञ्जनानन्दवर्धन प्रभु की जय।

चित्रकूट के दृष्टादृष्ट सन्तों की जय।

।जय जय श्री सीताराम।

परिपूर्णतम परात्पर परमात्मा भगवान, आनन्दकन्द कोसलेन्द्र, मन्दाकिनी ललित कीलाललालित, श्रीमद्‌चरणसरोज, कामारि समभ्यर्चित, पादपयोज, पद्माभ्यर्चित, पद-पदम्, निखिल सुखसद्म, मोचितभक्तभवबन्धन, कौसल्यानन्दवर्धन प्रभु श्री चित्रकूट विहारी विहारिणी जू की अनन्य कृपा से, इस व्याख्यानमाला के पञ्चम दिवस का अब हम शुभारम्भ करते हैं।

आइये, मिथिला के मण्डप में चलते हैं जहाँ चारों दुलहा-दुलहिनों का विवाह सम्पन्न हो रहा है। चक्रवर्ती नरेन्द्र दशरथ जी महाराज, आज अपने चारों पुत्रों को, चारों पुत्रवधुओं के सहित निहारकर इतने प्रसन्न हो रहे हैं—

जनु पाए महिपाल मनि क्रियन्ह सहित फल चारि।

ऐसा लग रहा है मानों भूपाल चक्रवर्ती, चक्र चूड़ामणि ने क्रियाओं के सहित आज चारों फलों को प्राप्त कर लिया।

चार फल अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष हैं। और उनकी चार क्रियाएँ हैं। अब तक के व्याख्यान-क्रम में प्रथम फल की व्याख्या की जा चुकी है। अर्थात् शत्रुघ्न जी अर्थ हैं पर अर्थ का तात्पर्य वह नहीं है जो आजकल के अर्थ से लगाया जाता है। आज़ का अर्थ तो अनर्थ का मूल हो गया है। आज मुद्रा को राक्षस कहा जा रहा है। वास्तव में, मुद्रा 'राक्षस' है, पर शत्रुघ्न जी यह अर्थ नहीं है। हम वैष्णवों का धन 'भगवत्कैंकर्य' और 'दैन्य' है। यही शत्रुघ्न जी हैं। दैन्यपूर्वक भगवद्कैंकर्य ही शत्रुघ्न हैं, यह अर्थ है और उनकी धर्मपत्नी भगवती श्रुतिकीर्ति जी सेवा हैं और यही इस अर्थ की क्रिया है। यहाँ तक चर्चा चल चुकी है।

अब, धीरे-धीरे विषय गहन हो रहा है, आप मन लगाएँगे तो समझ में आएगा। यह कहते हुए मैं गौरव का अनुभव करता हूँ और वास्तव में गौरव होना चाहिए कि यहाँ तो वही कथावाचक सफल होगा, जो चित्रकूट की धरती से जुड़ा हुआ हो। जब तक हम चित्रकूट की धरती से जुड़े हुए नहीं होंगे, तब तक हम न तो भगवद्प्रिय बन सकते हैं और न ही भागवत् प्रिय। मैंने अपने छः छः अनुष्ठानों के विशाल क्रम में यह देखा कि भारत में ही नहीं, पूरे संसार में और संसार भी छोड़िये, मैं तो यह कहूँगा कि त्रिलोक में ब्रह्मा की सृष्टि में यदि भगवान को पाने के लिए कहीं अनुकूल वातावरण है, तो केवल चित्रकूट में है और कहीं नहीं। दाम अमेरिका में मिल सकता है, धाम सिंगापुर में मिल सकता है, काम इंग्लैण्ड आदि देशों में मिल सकता है पर यदि राम के मिलने की बारी आएगी तो वह कहीं नहीं, चित्रकूट में मिल सकते हैं।अब यह निर्णय तुम्हें करना है कि तुम क्या चाहते हो? यदि राम चाहते हो तो वह चित्रकूट में मिलेंगे, अन्यत्र नहीं मिल सकते। इसलिए बड़ी कृपा है हमारे चित्रकूट पर। अन्य तीर्थों को कलिकाल ने ग्रसा पर यहाँ फालतू लोग नहीं आते, यहाँ तो पालतू आते हैं। यहाँ 'क्राइम' (Crime) नहीं आ सकता प्यारे, यहाँ तो 'क्रीम' (Cream) ही आएगा। यदि हमें राम चाहिए तो हमें निश्चित सत्यभाव से, सत्यनिष्ठा से चित्रकूट की सेवा करनी पड़ेगी। रहने और सेवा करने में बहुत अन्तर है—

तुलसी जो राम सों सनेह साँचो चाहिये तो,
सेइये सनेह सों विचित्र चित्रकूट सो।।

चित्रकूट की सेवा के लिए आज मैं बहुत खुले मन से चर्चा कर रहा हूँ। आज तक जितने भी सिद्ध हुए हैं, मैं आजकल के सिद्धों की चर्चा नहीं कर रहा हूँ और न ही आज के सिद्धों पर विश्वास करता हूँ। आजकल तो भगवानों की बाढ़ लग गई है, बड़े-बड़े भगवान बने बैठे हैं। कोई जटा से भभूत निकालता है तो कोई शिवलिङ्ग निकालता है, पर एक बात बताऊँ कि सब कुछ निकालना सरल है पर भगवान राम को निकालना बहुत कठिन है। चित्रकूट की महिमा यह है कि यदि चित्रकूट की सेवा की जाए तो एक कण मात्र से भगवान को निकाला जा सकता है। यदि हमसे कोई पूछे कि जगद्गुरु जी, आपको क्या चाहिये, तो मैं तो यही कहूँगा कि—

अर्थ चाहिए न, धर्म काम चाहिए
कोसिला कुमार मुझे राम चाहिये।
सत्यसन्ध दया-सिन्धु वीर व्रतधारी
चाहिये चित्रकूट कानन विहारी
मन्दाकिनी ललित ललाम चाहिये
कोसिला कुमार मुझे राम चाहिये
इन्द्रनील मणिश्याम राम मुझे चाहिये
नील नीरधरश्याम राम मुझे चाहिये
कामद पर्वत का आराम चाहिये
कोसिला कुमार मुझे राम चाहिये।
आप्तकाम पूर्ण काम राम मुझे चाहिये
लोक लोचनाभिराम राम मुझे चाहिये।
'रामभद्राचार्य' का विश्राम चाहिये
कोसिला कुमार मुझे राम चाहिये।
चित्रकूटधाम अभिराम चाहिये
कोसिला कुमार मुझे राम चाहिये।

चित्रकूट तो वह स्थान है, जहाँ सीताजी मिथिला और अयोध्या को भूल ग

सास ससुर सम मुनि-तिय मुनिबर। असन अमिय सन कन्दमूल फर।।

वो तो कहने लगीं—

मोहे बिसरो अवधपुर धाम चित्रकूट प्यारो लगे।
मोहे भावे न मिथिला अभिराम चित्रकूट प्यारो लगे।

स्वयं भगवती जगज्जननी, जनकनन्दिनी जी को इतना अधिक चित्रकूट भाया कि वह भूलकर भी मिथिला और अयोध्या का स्मरण नहीं करतीं। इतना आनन्द इनको आ रहा है कि उन्होंने अयोध्या के महलों को तो वार दिया, अपने पर्णकुटीर पर और दिव्य-दिव्य भोगों को वार दिया, चित्रकूट के कोल किरातों द्वारा लाए हुए कन्दमूलों पर—

सास ससुर सम मुनि तिय मुनिबर। असन अमिय सम कन्द मूल फर।।

उनको यह स्पष्ट हो गया था कि चित्रकूट में राघवेन्द्र जी जितने प्रसन्न हैं, उतना कहीं प्रसन्न हुए ही नहीं। राम जी का मन अयोध्या में नहीं रमा, राम जी का मन मिथिला में नहीं रमा, राम जी का मन बैकुण्ठ में नहीं रमा, राम जी का मन साकेत में नहीं रमा, राम जी का मन गोलोक में नहीं रमा किन्तु—

रम्यो राम मन देवन्ह जाना। चले सहित सुर थपति प्रधाना।।

राम जी का मन तो चित्रकूट में रमा, '**रम्यो राम मन**' '**चले सहित सुर**' सकल पाठ यहाँ अशुद्ध है। '**स्थपतिर्विश्वकर्मा स्यात्**'

नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा—
भाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति।।

श्रीरामचरितमानस पढ़ने के लिये तो पहले शास्त्रों का अध्ययन करना चाहिये और फिर सन्तों की बारह-बारह वर्ष तक सेवा करनी पड़ती है तब वह मानस पढ़ सकता है। यह तो हमारी वस्तु है।

साधु समाज पयोधि रमा सी। विश्वभार धर अचल छमा सी।।

ह तो सन्त समाज रूप क्षीरसागर की लक्ष्मी है। देखिये श्री चित्रकूट और अवध

में एक ही अन्तर है कि श्रीअवध राम जी की जन्मभूमि है और श्रीचित्रकूट रामकथा की जन्मभूमि है। रामजी को बहुत कम लोग आँखों से निहार सकते हैं। रामावतार हुआ परन्तु हम आप उनको अभी नहीं देख पा रहे हैं, पर रामकथा का साकार रूप है मन्दाकिनी जी–

रामकथा मन्दाकिनी चित्रकूट चित चारु।
तुलसी सुभग सनेह बन सिय रघुबीर बिहारु।।

भगवती मन्दाकिनी को मैंने बहुत गम्भीरता से देखा है। वास्तव में चित्रकूट तो साधना-स्थल है। जब आप भगवती मन्दाकिनी में स्नान कीजिये तो यह अनुभव करिये कि गोमुख से गङ्गासागर पर्यन्त प्रवहमान यह भागीरथी गङ्गा नहीं है, यह तो स्वर्ग वाली गङ्गा है जिसे अनसूया जी लेकर आई हैं। रघुवंश महाकाव्य के तेरहवें सर्ग के इक्यावनवें श्लोक में भगवान राम सीताजी से कह रहे हैं–

अत्राभिषेकाय तपोधनानाम्
सप्तर्षि हस्तोद्धृत हेमपद्माम्।
प्रवर्तयामास किलानुसूया
त्रिस्रोतसम्त्रयम्बकमौलिमालाम्।।

भगवान राम कहते हैं, सीते! **'अत्राभिषेकाय तपोधनानाम्'**, यहाँ पर अनसूया जी मन्दाकिनी जी को क्यों लाई थीं? **'तपोधनानाम् अभिषेकाय'**, तप ही जिनका धन है, ऐसे सन्तों के स्नान करने के लिए लाई थीं। मन्दाकिनी में स्नान करके व्यक्ति मरता नहीं तरता है और भगवान की सेवा का अधिकार प्राप्त कर लेता है। अत्रि आदि तपोधनों के अभिषेक के लिये, जिससे सन्तों को गङ्गा नहाने में कष्ट न हो, इसलिए भगवती अनसूया जी ने गङ्गा को प्रकट किया। वह गङ्गा जी कैसी हैं? तो कहते हैं कि **'सप्तर्षि हस्तोद्धृत हेमपद्माम्'** जिन गङ्गा जी के प्रवाह में खेलते हुए, सोने के पराग से भरे हुए कमलों को सप्तर्षि अपने हाथ से उतारकर, भगवान को चढ़ाते हैं, ऐसी गङ्गा जी को **'प्रवर्तयामास किलानसूया'**, अनसूय्या जी ने प्रवाहित ही नहीं किया अपितु प्रवर्तित कर दिया। प्रवाहित करतीं तो वह आगे बहती जातीं पर उनको यहाँ से आगे जाने से रोक दिया। **'त्रिस्रोतसं'**, उनके द्वारा प्रवर्तित गङ्गा तीन स्रोतों वाली हैं–एक **राघव-प्रयाग का स्रोत है, दूसरा-कामदगिरि** से आने वाला स्रोत है, और तीसरा अनसूया

पर्वत से आने वाला स्रोत है। **'त्रयम्बकं मौलिमालाम्'**, भगवान शङ्कर की मुकुटमाला भूत भगवती मन्दाकिनी जी को, अनसूया जी ने प्रकट किया।

चित्रकूट को सबसे अधिक पहचाना भगवती सीता जी ने और इसके अनन्तर पहचाना कुमार लक्ष्मण ने। क्योंकि—

चित्रकूट जोई मने लाज्ञा करेछे। अहों क्याँ क लक्ष्मण म्हारा जाज्ञा करे छे।।

यहाँ कुमार लक्ष्मण सोए नहीं—

यहिं जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपञ्च बियोगी।

आज उन्हीं लक्ष्मण की चर्चा हम कर रहे हैं जिन्होंने मन्दाकिनी को पहचाना। श्रीराम कथा ही मन्दाकिनी है और रामकथा को सबसे अधिक धर्म ही पहचान सकता है। देखिये, हमारे यहाँ परीक्षा होती है। भागवतकार ने बड़ी सुन्दर और मार्मिक बात कही—

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसाम्
विष्वक्सेन कथासु यः
नोत्पादयेद्यदिरतिम्
श्रम एव हि केवलम्।।

श्रीमद्भा० १/२/८

अर्थात् पुरुषार्थ चाहने वाले व्यक्ति के द्वारा वैदिक विधि से सम्पन्न किया हुआ धर्मानुष्ठान यदि प्रभु श्रीराम एवं श्रीकृष्ण की कथाओं में रागात्मिका भक्ति नहीं उत्पन्न कर सका तो, वह केवल श्रम ही है, उसे कभी भी धर्म नहीं कहा जा सकता।

कोई कितना भी बड़ा धार्मिक हो, पर धर्म की यहीं परीक्षा होती है। जिसको भगवान की कथा में आनन्द आ रहा हो, तो जान लो कि वही धार्मिक है। यदि भगवान की कथा में निद्रा देवी आ गईं तो जान लो कि उसने पाप किया है, केवल धर्म का आडम्बर है। जो जितना कथा में झूमे, उसको उतना ही बड़ा धार्मिक मान लेना चाहिए। रामकथा तो धार्मिकता का प्रमाणपत्र देता है। इसका तात्पर्य है कि धर्म ही रामकथा को जान सकता है, अतः लक्ष्मण जी ही मन्दाकिनी जी को पहचान पाए। आइये, अब दूसरे पुरुषार्थ की चर्चा करूँ। लक्ष्मण जी साक्षात् धर्म हैं, वे काम नहीं हैं। जो लोग मानस जी को नहीं जानते, वे लोग कहते हैं कि भरत जी धर्म और लक्ष्मण जी 'काम' हैं। भरत जी

धर्म नहीं हैं—

'भरतहि धर्म धुरन्धर जानी,' भरत जी धर्म की धुरी को धारण करते हैं।

जौ न होत जग जनम भरत को। सकल धरम धुरि धरनि धरत को।

वे धर्म की धुरी को धारण करते हैं। जिस प्रकार वे धर्म की धुरी को धारण करते हैं, उसी प्रकार वे, लखनलाल के बड़े भाई होने के कारण उनको गोद में लेते हैं और लखनलाल जी हैं धर्म और यही है, उनका धर्म की धुरी को धारण करना।

अब श्रोता बिल्कुल चकित होंगे कि भरत जी को **'काम'** क्यों कहा जा रहा है? बहुत से वक्ताओं ने भरत जी को **'धर्म'** तथा लखनलालजी को **'काम'** कहा। यहाँ का प्रकरण बड़ा मधुर है। **चार पुरुषार्थों में से दो पुरुषार्थ साधन और दो पुरुषार्थ साध्य हैं अर्थात् 'अर्थ' साधन है और 'काम' साध्य है। उसी प्रकार 'धर्म' साधन और 'मोक्ष' साध्य है। 'अर्थ' से 'काम' मिलता है और 'धर्म' से 'मोक्ष' मिलता है।** यह ध्यान रखना चाहिए कि जब तक शत्रुघ्न जी की कृपा नहीं होगी, तब तक भरत जी नहीं मिलेंगे और जब तक लक्ष्मण जी की कृपा नहीं होगी, तब तक रामजी नहीं मिलेंगे। आपको बड़ी मधुर बात बताऊँ कि श्रीरामचरितमानस जी के विषयों को कहने का आज मेरा मन बहुत हो रहा है। देखिये, श्री रामचरितमानस में दो पात्र ऐसे हैं, जो राम जी से पहले लक्ष्मण जी का नाम लेते हैं। इनमें से पहला पात्र है मारीच।

लछिमन कर प्रथमहिं लै नामा। पाछे सुमिरेसि मन महुँ रामा।।

मारीच ने लक्ष्मण जी का नाम पहले लिया और फिर मन में राम जी का नाम लिया।

इसी प्रकार दूसरे पात्र का नाम है **मेघनाद।**

रामानुज कह राम कह अस कहि छाँड़ेसि प्रान।
धन्य धन्य तव जननी कह अङ्गद हनुमान।।

मारीच और मेघनाद पहले रामजी का नाम न लेकर लखनलाल जी का नाम क्यों लेते हैं? इसका एक कारण है कि वे दोनों ही इस बात को जानते हैं कि जब तक लखनलाल जी की कृपा नहीं होगी, तब तक रामजी नहीं मिलेंगे। इसीलिए हमारी 'श्रीरामानन्दीय वैष्णव सम्प्रदाय' की परम्परा है कि हम निरन्तर भगवान को जब दण्डवत करते हैं तो दाहिनी ओर से करते हैं। दाहिने से दण्डवत करने से तात्पर्य यही

है कि राम जी के दाहिनी ओर लक्ष्मण जी रहा करते हैं और हमारी दण्डवत को लक्ष्मण जी ही रामजी तक पहुँचा सकते हैं। इसीलिये हम दाहिनी ओर से दण्डवत करते हैं और प्रदक्षिणा भी दाहिनी ओर से ही की जाती है। जिस प्रकार कोई नैवेद्य आता है, तो पुजारी ही उसे भगवान तक पहुँचाता है, उसी प्रकार हमको, आपको, हम जैसे कोटि-कोटि पतित जीवों को, कुमार लक्ष्मण ही भगवान के चरणों में ले जा सकते हैं और किसी का सामर्थ्य नहीं है। अतएव, मारीच और मेघनाद जानते हैं कि हमने इतना बड़ा पाप किया है, इस पाप का प्रयश्चित रामजी स्वयं नहीं कर सकेंगे, इसलिए आचार्य (गुरु) की शरण लेनी चाहिए।

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागूँ पायँ।
बलिहारी गुरु आपकी गोविन्द दियो बताय।।

गुरुदेव भगवान की कृपा से ही जीव को गोविन्द की प्राप्ति होती है। एक बात मैं अवश्य कहूँगा कि भगवान तक पहुँचा देने की ही भूमिका गुरु की होती है गुरु की भूमिका तो चश्मे के समान है। जैसे चश्मा लगा लेने पर छोटा सा अक्षर सुगमता से दिखाई देने लगता है, उसी प्रकार गुरु की कृपा रूप चश्मे के लगा लेने पर अत्यन्त सूक्ष्म परमात्मा सुगमता से दिख जाते हैं। गुरु की भूमिका भगवत्प्राप्ति के लिए है। आज तो बहुत से गुरु आ गए हैं, जो यह कहते हैं कि भगवान की पूजा मत करो, केवल मेरी ही पूजा करो। अरे, डायालिसिस पर जीने वाले कभी भगवान हो सकते हैं।

कुमार लक्ष्मण, गुरु हैं, आचार्य हैं और आचार्य वही हो सकता है, जो धार्मिक हो और लक्ष्मणजी तो स्वयं धर्म हैं **'आचार्यं माम विजानीयान्नावमन्ये तकस्यचित्।'** अब पहले आपको यह समझना पड़ेगा कि 'धर्म' की कौन सी व्याख्या के आधार पर लक्ष्मण जी को धर्म मानेंगे। देखिये, धर्म दो प्रकार का होता है—

१. व्यष्टिगत—व्यक्तिगत होता है। और,

२. समष्टिगत—सबका होता है।

वेद ने व्यक्तिगत धर्म की चर्चा तो बार-बार कर दी, कि **'आचार्य देवो भव', मातृ देवो भव', पितृ देवो भव', अतिथि देवो भव'।**

परन्तु एक ऐसा भी धर्म है, जो प्राणिमात्र का है, केवल मनुष्य का नहीं। संसार में, जिसने भी जन्म लिया है, सबका एक धर्म है, वह समष्टिगत है। जीव का धर्म है,

भगवद्शरणागति, भगवद् प्रपत्ति। भगवान की शरण में जाकर, भगवान का भजन करना, यही जीव का धर्म है। जीव का कोई दूसरा धर्म नहीं है, और सब कुछ अधर्म है—

सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिपः।
स्वस्यायमेव धर्मोहि नान्यः क्वापि कदाचन्।।

सर्वदा, जागते, सोते, उठते, बैठते, खाते, पीते, हँसते, बोलते, सब कुछ करते हुए सर्वभाव से भगवान का भजन करते रहना यह जीव का धर्म है। भजन माने क्या होता है? क्या माला फेरना भजन है? माला फेरना तो भजन का एक प्रकार है, किन्तु इतना ही भजन नहीं है। 'भज सेवायाम्' समाज में, जिनको सेवा की आवश्यकता है, उनकी भगवत्बुद्धि से, सेवा करना, यही सबसे बड़ा भगवान का भजन है। जैसे कोई दृष्टिहीन बालक या मनुष्य, रास्ते में जा रहा है, और तुम यह देख रहे हो कि वह टकरा जायेगा तो उस समय यह तुम्हारा धर्म है कि माला आसन पर फेंक दो और दौड़कर, उसका हाथ पकड़कर, उसे टकराने से बचा लो। यदि तुमने ऐसा नहीं किया तो, जो माला तुम जप रहे हो, भाला बनकर तुम्हें मार डालेगी। जैसे मान लो कि तुमने नैवेद्य लगाया, भोग लगाया, और तुम्हारी आँख के सामने कोई ऐसा व्यक्ति है, जो तीन दिनों से भूखा है और तुम्हें यह ज्ञात है कि इसे तीन दिनों से भोजन नहीं मिला है, तो उस समय तुम्हारा यही धर्म है कि वो नैवेद्य पहले तुम उसी को दे दो, और यदि तुमने नहीं दिया, तो तुम अधार्मिक बन जाओगे।

भगवान एकनाथ जी महाराज गोमुख से जल लेकर, श्री रामेश्वरम् को जल चढ़ाने जा रहे थे। उस समय यह यात्रा कितनी कठिन थी यह तो आप जान सकते हैं। जब पैदल आते आते माड़वार आए तो उन्होंने देखा कि उसी समय एक गधा बिना पानी के मर रहा था। श्री एकनाथ जी महाराज ने यह सोचा कि मैं जो जल काँवर में लेकर आ रहा हूँ, यदि यह जल मैं इस गधे को पिला दूँगा तो इसको जीवनदान मिल जाएगा। उस समय, एकनाथजी ने यह विचार नहीं किया कि यह जल रामेश्वरम् में चढ़ाने के लिए जा रहा है। उन्होंने कहा कि यदि मेरी भावना शुद्ध होगी तो इस गधे को पिलाने से यह जल, रामेश्वरम् अवश्य पहुँचेगा और तुरन्त इतने परिश्रम से लाए गए गङ्गाजल को उन्होंने उस गधे के मुँह में डाल दिया। गधा जी उठा और उठकर चला गया। स्वयं वो खाली घड़ा लेकर जब रामेश्वरम् पहुँचे, तो पुजारी ने बताया कि महाराज! आज से छः

दिन पहले आप आए थे और आपका जल रामेश्वरम् को चढ़ गया, यह धर्म है।

परहित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।

किसी के अभाव की पूर्ति, अपने परिश्रम से कर देना धर्म की सबसे बड़ी व्याख्या है। किसी के अभाव को दूरकर उसके मुख पर प्रसन्नता व मुस्कुराहट बिखेर देने से करोड़ों करोड़ों गोदान का फल अपने आप मिल जाएगा, क्योंकि हम तो मानते हैं कि–

सिया स्वामिनी हैं मलकिन हमारी फ़िकर मोहे काहे की।
जिनके ससुर राजा दशरथ हैं, सासु कौसल्या महतारी
फिकर.....सिया.....
देवर भरत, लखन, रिपुसूदन, पति हैं राम धनुर्धारी।
फिकर.....सिया.....
ऋद्धि सिद्धि चरणन की दासी, हनुमत हैं प्रेम के भण्डारी।
फिकर.....सिया.....
तुलसीदास कलिजुग का करिहै, राखि लेहैं जनक दुलारी
फिकर.....सिया.....

।।जनकनन्दिनी जी की जय।।

इसलिये किसी अभावग्रस्त के अभाव को दूर कर देना, धर्म की वास्तविक व्याख्या है और लक्ष्मण जी की सबसे बड़ी भूमिका भी यही है। मैंने निवेदन किया है कि धर्म का अर्थ है भगवान का भजन। भगवान का भजन कैसा होना चाहिये तो कहते हैं कि जिनको आवश्यकता है, भगवत्बुद्धि से उनके अभाव की पूर्ति कर देना यही भजन है और यही 'धर्म' है।

हम किसी में भगवत्बुद्धि कैसे स्वीकारेंगे, तो इसके लिए एक भावना करो कि मन्दिर के जो अर्चाविग्रह भगवान होते हैं, वह स्वाधीन तो नहीं होते, **'अहं भक्त पराधीनो'** पराधीन होते हैं। तो जिस प्रकार मन्दिर के भगवान होते हैं, जब मन्दिर में पुजारी भोग लगाएगा, तभी वे भोजन करेंगे, जब पुजारी शृंगार करेगा, तभी वे शृंगार करेंगे। जब पुजारी गले से माला उतारेगा, तभी माला उतरेगी, चाहे तीन दिनों तक पड़ी रहे। भगवान क्या पैसे चढ़वाने के लिए होते हैं? अरे, भगवान का प्रतिदिन शृंगार होना चाहिये, प्रतिदिन भोग लगना चाहिये।

यथा स्वस्मिन् तथा देवे।

जो भाव अपने में, वही भाव अपने देवता में होना चाहिये। यदि हमको प्यास लगती है तो हमारे भगवान को भी प्यास लगेगी, यदि हमको भूख लगती है तो हमारे भगवान को भी भूख लगेगी, यदि हमको गर्मी या सर्दी लगती है तो उनको भी गर्मी और सर्दी लगेगी। हम तो वातानुकूलित स्थान में रहें और भगवान के लिए एक पंखा भी न हो, तो यह भगवान की सेवा नहीं, नाटक है। यदि ऐश्वर्य रखना है तो भगवान को मन्दिर में मत पधराओ। सेवा में कभी ऐश्वर्य बुद्धि नहीं रखनी चाहिये। यह मत सोचो कि भगवान त्रिलोकेश्वर हैं, तो उनको भूख नहीं लगती। यह बात बिल्कुल ठीक है कि वे त्रिलोकेश्वर हैं तो वे व्यापक भी हैं, तब वे तुम्हारे छोटे से मन्दिर में काहे को रहेंगे? यदि वे व्यापक हैं तो उनको तुमने व्याप्य क्यों बनाया? तो यदि तुमने उन्हें व्याप्य बनाया है तो उसी प्रकार उनकी मर्यादा का ध्यान भी रखना चाहिये। यह सिद्धान्त है। तो जैसे मन्दिर के भगवान पराधीन हैं, जब कपड़ा पहनायें, तभी कपड़ा पहनेंगे, जब भोजन करवायें, तभी भोजन करेंगे, जब पानी पिलायें, तभी पानी पियेंगे, जब शयन करायें, तभी शयन करेंगे, "हमारे विकलाङ्ग भाई बहिन उसी प्रकार के तो हैं। इनको जब कपड़ा पहनाओ, तभी कपड़ा पहनेंगे, जब भोजन कराओ, तभी भोजन करेंगे, तो जो भाव तुम मन्दिर के भगवान में रखते हो, वही भाव इनके प्रति भी रखो। अरे! वो तो तुमसे जल्दी बोलते भी नहीं, ये तो तुमसे बोल भी सकते हैं और बोलेंगे भी। जैसे एकनाथ जी महाराज ने गधे को पानी पिला दिया तो रामेश्वरम् में जल चढ़ गया, उसी प्रकार, जिसको आपकी सेवा की आवश्यकता है, उसकी सेवा करना, भगवान की सबसे बड़ी सेवा है, और धर्म की यही गम्भीरतम व्याख्या है।

परहित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।

लक्ष्मण जी का यही व्यक्तित्व है। **'भज सेवायाम्'** सेवा के दो अर्थ होते हैं, एक तो सेवा करना और दूसरा सेवन करना, जैसे औषधि का सेवन करते हैं। समाज सेवा करते रहें और मन से भगवान के नाम, रूप, लीला और धाम का रस लेते रहें। यूँ तो सभी पशु पक्षी होते ही हैं परन्तु इस प्रसङ्ग में मैं एक ऐसे विचित्र पशु का नाम ले रहा हूँ, जिसको सुनकर आप बहुत हँसेंगे। दत्तात्रेय जी ने चौबीस गुरु बनाए थे, हमने भी एक नया गुरु बनाया है और बहुत बढ़िया गुरु है वो। मैंने गुरु बनाया है भैंस को। यूँ तो भैंस वृद्ध मस्तिष्क की होती है और भैंस का दूध पीने वाले की बुद्धि बिल्कुल भैंस जैसी

ही होती है। इसलिए भैंस का दूध नहीं पीना चाहिये। दूध तो केवल गाय का ही पीना चाहिये। क्रुद्ध भी बहुत होती है। क्रोधी स्वभाव का पशु है वो परन्तु उसमें एक बहुत बड़ा गुण है और उसी गुण से हमने शिक्षा ली है। उसका गुण यह है कि पहले वो खूब चकाचक भोजन करती है। क्विण्टलों भूँसे की ऐसी की तैसी कर देती है। चकाचक खा पीकरके दो चार बाल्टी पानी पीकर नमो नारायणाय करके, एकान्त में बैठकर, चारों पैर फैलाकर धीरे-धीरे अपनी खाई हुई वस्तु को निकालकर खूब कूँचेगी और मस्त रहेगी। इससे हमने यह सीखा कि जैसे भैंस पहले खूब खा पी लेती है और फिर एकान्त में पसरकर, मस्ती में उस खाए हुए को धीरे धीरे निकालकर कूँच-कूँच कर (पागुर करके) उसका रस लेती है। उसी प्रकार हमको सन्तों के चरणों में बैठकर, पहले खूब भगवद्गुण-गण सुनना चाहिये, शास्त्र सुनना चाहिये और फिर एकान्त कमरे में जाकर, उन सुनी हुई बातों का, भैंस के समान अपने बिस्तर पर लेटकर धीरे-धीरे उसका चिन्तन करना चाहिये। इसलिए मैंने ठीक गुरु का चुनाव किया है। कितनी अच्छी बात है कि जो कुछ सुनो, उसको गुनते जाओ। मुनि उसे कहते हैं जो मननशील होता है **'मनते इति मुनिः'** शास्त्रों को सुनकर जो मनन करता है, उसे मुनि कहते हैं। लोग मौन पहले क्यों लेते थे? मौनी बाबा बनने के लिए मौन पहले थोड़े ही होता था। मौन होता था भगवान के गुण गणों का मनन करने के लिए—

मन्मनाभव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः।।

गीता ९/३४

इसलिये, यह भजन की एक प्रक्रिया है। भगवान के रूप का, नाम का, लीलाओं का और धाम का आस्वादन करना चाहिये, यह भजन है और यही धर्म है जीव का। और यही है व्याख्या लक्ष्मण की। लक्ष्मण माने क्या होता है? जब लक्ष्मण शब्द पर सामान्यतः विचार किया जाता है तो एक व्युत्पत्ति आती है, **'लक्ष्ये मनः यस्य, सः लक्ष्मणः'** तो आप कहेंगे कि तब तो लक्ष्यमन हो जाएगा। 'प्रसोदरादीन यथोपदिष्टम्' से 'य' का लोप हो जाता है, उधर 'अस्' का लोप करके णत्व हो जाता है लक्ष्मणः। जिसका मन लक्ष्य में होता है उसे लक्ष्मण कहते हैं। हमारे आपके लक्ष्य हैं भगवान और लक्ष्मण जी का मन भगवान में रहता है—

जाइ जननि पद नायेहु माथा। मन रघुनन्दन जानकी साथा।

लक्ष्मण जी का मन, रघुनन्दन जी व जानकी जी के चरणारविन्द में रहता है। वो तो लक्ष्मण हैं और हम लोग भक्ष्मण हैं। उनका मन लक्ष्य में रहता है और हमारा मन भक्ष्य में रहता है। संसार में निन्यानवे प्रतिशत जन्तु ऐसे हैं, जिनका मन सदा भोजन में लगा रहता है। ऐसे सौभाग्यशालियों की संख्या तो अत्यन्त अल्प है, जिनका मन भजन में लगता है। कोई मुझसे यह नहीं पूछता कि जगद्गुरु! रामजी कैसे मिलेंगे? सब अपने अभिमान की पूर्ति करना चाहते हैं, उनके अभिमान पर ठेस नहीं लगनी चाहिये। शङ्कर भगवान और हममें यही तो अन्तर है कि हम सभी शव हो जाते हैं शङ्कर भगवान ही शिव हैं। हम शिव इसलिए नहीं हो पाए क्योंकि हम आप अपने अभिमान पर ठेस लगने से दुखी हो जाते हैं किन्तु शिव जी, भगवान को ठेस लगने से दुखी होते हैं। **'कहँ लगि कहौं हृदय कठिनाई'**, व्यक्ति का अभिमान, उस पर इतना प्रभावी हो जाता है कि वह गुरु गोविन्द को छोड़ सकता है, तो वह भगवान को क्या पाएगा?

देखिए, एक प्रश्न है कि शङ्कर भगवान ने काम को क्यों जलाया? क्या आवश्यकता थी काम को जलाने की? अब आप ध्यानपूर्वक समझेंगे तभी इस रहस्य को समझ पाएँगे। कामदेव ने पाँच बाण भगवान शङ्कर के हृदय में मारे—

छाँडेसि बिसम बिसिख उर लागे। छूटि समाधि सम्भु तब जागे।।
भयहु ईस मन छोभु बिसेखी। नयन उघारि सकल दिसि देखी।।

जब भगवान शंकर के वक्ष पर कामदेव के पाँच बाण लगे तो उन्हें क्षोभ हुआ। जब अपना मनचाहा नहीं होता उस समय मन की जो प्रतिक्रिया होती है, उसे क्षोभ कहते हैं। उनका मन डिगा नहीं, उन्हें क्षोभ हुआ। शिव जी ने कहा कि जिन भगवान राम को, जो मेरे हृदय में विराजते हैं, मैंने कालकूट की गर्मी से बचा लिया। जब मैंने कालकूट पिया तो गले तक ही रहने दिया, हृदय में उतरने भी नहीं दिया, जिससे उसकी गर्मी से, हमारे हृदय में स्थित प्रभु के चरणों को ताप न लग जाए। तो जिन भगवान को मैंने जहर की गर्मी से बचा लिया, आज उस कामदेव ने मेरी उसी छाती में पाँच बाण मारकर, उन्हीं भगवान के चरणों में ठोकर लगा दी। भगबान के चरणों की पीड़ा का ध्यान आते ही, उन्हें क्रोध आ गया और **'भयउ कोप कम्पेउ त्रैलोका'**, क्रोध आया, तीनों लोक काँप उठे और तुरन्त—

तब सिव तीसर नयन उघारा। चितवत काम भयउ जरि छारा।।

हम इसलिए शव हैं कि हम अपने अभिमान पर ठेस लगने पर क्रोध करते हैं। और शङ्कर जी इसलिए शिव हैं क्योंकि वह अपने भगवान् को ठेस लगने पर क्रोध करते हैं। सिद्धान्त यही है कि जब तक हम अपने अभिमान को भगवान से बड़ा मानते रहेंगे, तब तक भगवान कभी नहीं मिल सकते। संसार में यदि कोई सबसे बड़ा नालायक और हैवान है, तो वह अभिमान है और यह ऐसे नहीं जाता, इसको तो भगवान के प्रेम के आँसुओं से गलाया जाता है, तब जाता है। जिस प्रकार, कुछ फोड़ों का आपरेशन न करके दवाइयों से गलाया जाता है, उसी प्रकार इस अभिमान को भगवत्भक्ति रूप सञ्जीवनी बूटी से गला दिया जाता है, तब जाता है।

रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान श्रद्धा मति पूरी।।

प्रारम्भ से देखिये, तो कुमार लक्ष्मण का जीवन यही है। वल्लभाचार्य कहते हैं कि जीव का एक ही धर्म है कि वह सर्वभाव से भगवान का भजन करे।

स्वस्यायमेव धर्मो हि नान्य: क्वापि कदाचन्।

जीव का एक ही धर्म है, अन्य कोई दूसरा धर्म हो ही नहीं सकता। दूसरे देवी देवता का भजन जीव का धर्म नहीं है, केवल भगवान का भजन ही जीव का धर्म है। इसी संदर्भ में एक बात बताता हूँ कि जब मेरे जीवन के पाँच वर्ष पूरे हुए थे, मुझे याद है कि उस समय मेरे मुख से एक दोहा निकला। मेरे दादा जी, उस समय मुझे महाभारत की कथा सुना रहे थे। द्रौपदी की पूरी कथा सुनने के पश्चात् मैंने सोचा कि द्रौपदी की इतनी दुर्दशा क्यों हुई, पाँच-पाँच, युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम, नकुल और सहदेव, जिसके पति हों, पाँच-पाँच प्रतिबन्ध, श्रुतिकेतु, श्रुतिवर्मा, शतानीक और श्रुतिसेन पुत्र हों, अभिमन्यु जैसा उसका लाड़ला समर्थक पुत्र सौभद्र हो, और इतने लोगों के रहते हुए भी द्रौपदी आज भरी सभा में अपमानित हो रही है? उसे कितना कष्ट हुआ कि ऋतुधर्म में रहकर, राजमहल से लगभग तीन किलोमीटर की दूरी पार करके, दु:शासन उसके केशों को पकड़कर घसीटते हुए, भरी सभा में ले गया। उस समय किसी का साहस नहीं हुआ कि दु:शासन को रोक दे और वास्तव में अब तक भगवान भी क्यों तमाशा देखते रहे तो इसका उत्तर यही है कि द्रौपदी पञ्चपतिका थी। उसको एकमात्र भगवान पर विश्वास नहीं था। उसके पाँच पति, पाँच अलग-अलग देवता थे, उसे पाँच देवताओं पर विश्वास था। जब तक व्यक्ति भगवान पर विश्वास नहीं करेगा, तब तक उसकी वही दुर्गति

होगी, जो द्रौपदी की हुई। उस दुर्गति से बचने के लिए सबकी आशा और सबका ही भरोसा छोड़कर, केवल आनन्दकन्द मुकुन्द सततमुनिजन परिपीत चरणारविन्दामन्द मकरन्द, सच्चिदानन्द, करुणाकन्द गोविन्द, दशरथनन्दन, दैत्यनिकन्दन, सकलभक्तहृदयचन्दन, नन्दनकाननकुसुमविहिताभिनन्दन, श्रीमद्सीतामुखचन्द्रचारु चक्षुष्चकोर, कोसलेन्द्र, राजकिशोर, रघुनन्दन, रामभद्र के चरणारविन्द में सर्वतोभावेन समर्पण कर देना चाहिये, तभी जीव की विडम्बनाओं का अन्त हो सकता है। पाँच वर्ष की अबोध अवस्था में जो दोहा मेरे मुख से निकला था, उसको मैंने और किसी को नहीं सुनाया था, केवल अपने दादाजी को सुनाया था। इस दोहे को मैंने अपने पूर्व नाम **'गिरिधर'** के नाम से लिखा था। अब मैंने इसे अपना काव्य नाम रख दिया है।

तजि कुसङ्ग 'गिरिधर' गहेहु चरन सरन ब्रजराज।
बचा न पाए पञ्चपति द्रुपदसुता की लाज।।

द्रौपदी का जब पाँचों पतियों का विश्वास टूटा और अपने हाथों का भी विश्वास छूटा, दुश्शासन ने जब उसे घसीटा तो उसनेअपनी साड़ी दाँत से पकड़ ली, फिर घसीटा तो दाँत से भी साड़ी छूट गई और भगवान क्षण भर में ही द्वारिका से दौड़कर आ गए—

सुन्दर सफेद सब्ज बैंगनी हरेरी पेरी,
ढेरी बहुतेरी नहीं गिनिबे में आयो है।
लाली और गुलाली गुलनारी पट फालसाही,
काही और बदामी बहुतेरी दर्शायो है।
खाकी धानी प्याजी जाफरानी आसमानी बहु
अम्बर अपार आसमान लगि छायो है।
द्रौपदी के काज ब्रजराज हैं बजाज मानो
लाद के जहाज पट द्वारिका ते धायो है।।

भगवान आनन्दकन्द प्रभु का स्वभाव, एक बालक के स्वभाव के समान है। जैसे, एक छोटा सा बालक यह अपेक्षा करता है कि केवल मुझसे ही प्रेम करो। दूसरे से प्रेम करने पर वह रूठ जाता है, उसी प्रकार भगवान भी यही कहते हैं कि यदि जीवन सुधारना चाहते हो तो अनन्य निष्ठा से केवल मुझसे ही प्रेम करो। भगवान प्रतिज्ञा करते हैं—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।।
गीता ९/२२

अर्थात् जो महानुभाव अनन्य निष्ठा से चिन्तन करते हुए अन्य देवी देवताओं का आश्रय त्यागकर मेरी पूर्ण रूप से उपासना करते हैं, मुझ परमात्मा में मनसा वाचा कर्मणा समर्पित हुए उन परम भागवतों के योगक्षेम का मैं सदैव निर्वहण करता हूँ अर्थात् अपने अनन्य भक्तों को अप्राप्य वस्तुवें उपलब्ध कराकर उनकी प्राप्त वस्तुओं की सतत् रक्षा करता हूँ। लक्ष्मण जी तो इसी कोटि के व्यक्ति हैं। वे तो–

बारेहिं ते निज हित पति जानी। लछिमन राम चरन रति मानी।।

भजन सिखाया नहीं जाता, ये तो जीव की स्वाभाविक अनुभूति है। कोटि-कोटि जन्म-जन्मान्तर, युग-युगान्तर, कल्प कल्पान्तरों के जब पुण्य जगते हैं, तब भजन में मन लगता है। भोजन में मन लगाने के लिए कोई परिश्रम नहीं करना पड़ता। जब भजन में मन लग जाता है, तो जीवन धन्य हो जाता है, रसमय हो जाता है। भोजन करने पर मुख से दुर्गन्ध आती है और भजन करने पर मुँह से सुगन्ध आती है। भोजन करने से वासना होती है और भजन करने से उपासना होती है। महापुरुषों के चरणों में बैठने से, उनका चरणोदक लेने से, भजन में मन लगता है। महापुरुषों के चरणों में बैठने की सबसे बड़ी शिष्टता यही होती है कि उन्हें सताए नहीं। महापुरुषों के सामने संसार की चर्चा करना, उनको गोली मारने के समान है।

कुमार लक्ष्मण का आप व्यक्तित्व देख जाइये, लक्ष्मण जी धर्म हैं, उनको कुछ नहीं, केवल भजन चाहिये। **'बारेहिं ते'** अभी लक्ष्मण जी छोटे से हैं, अभी एक ही दिन के हैं, वे रोते भी बहुत हैं पर इस रहस्य को सुमित्रा जी जानती हैं कि जब लखनलाल जी रोने लगते हैं तो छोटे से रामलला के चरण का अँगूठा लक्ष्मण जी के मुख में डाल देती हैं। बस, मिल गई टाफी, चुसुर चुसुर चूसने लगते हैं और उनका रोना बन्द हो जाता है। जब तुलसीदास जी ने इस दृश्य को देखा तो बोल पड़े कि हे राम! कितने सुन्दर हैं कुमार लक्ष्मण! अभी एक दिन के भी नहीं हुए और रामजी के चरणों में इतना प्रेम! सूमित्रा जी के दूध के लिए, लखन जी कभी नहीं रोए और कभी-कभी इतना रोते थे कि सुमित्रा जी का दूध पीकर भी रोना बन्द नहीं करते थे, उनका रोना तो तभी बन्द होता,

जब उनके मुखारबिन्द में राम जी के चरणारविन्द का अँगूठा डाल दिया जाता। तभी तो कहा—

बारेहिं ते निज हित पति जानी। लछिमन राम चरन रति मानी।।

लक्ष्मण जी भजन के अतिरिक्त प्रत्येक वस्तु को अधर्म मानते हैं। भगवत्भजन ही उनके लिए धर्म है और शेष सब कुछ अधर्म है। उनकी पत्नी भगवती उर्मिला जी श्रद्धा हैं। क्योंकि—

श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई। बिनु महि गन्ध कि पावइ कोई।।

जैसे श्रद्धा के बिना धर्म नहीं हो सकता, वैसे ही उर्मिला जी के बिना लक्ष्मण जी की साधना नहीं हो सकती। उर्मिला जी तो धर्मपत्नी हैं, वे वाइफ (wife) तो हैं नहीं। अरे, (Wife is the knife for life) ये तो छुरी है, जीवन को काटती है, पर पत्नी तो **'पतनात् त्रायते यस्मात् तस्मात् पत्नी इतीर्यते।'** पत्नी तो पति को पतन से बचाकर, रघुपति के चरण में ले जाती है। पत्नी काटने का काम नहीं करती वो तो जोड़ने का काम करती है। जो पत्नी अपने पति से केवल शृङ्गार की वस्तुवें माँगे, वह पत्नी नहीं हो सकती। पत्नी तो पति को भगवान के चरणों में पहुँचा देती है। यही भूमिका है उर्मिला जी की।

संस्कृत में उर्मि का अर्थ है 'लहर'। 'ल' माने लाने वाली। इसको यूँ समझिये कि लक्ष्मण जी का हृदय एक सागर है तो लक्ष्मण जी के हृदय सागर में, जो राम-प्रेम की लहरें ला देती हैं, उन्हें उर्मिला कहते हैं। **'उर्मी: लाति इति उर्मिला।'** जैसे चन्द्रमा को देखकर सागर में लहरें उठती हैं, उसी प्रकार उर्मिला जी के मुखचन्द्र को निहार कर, लक्ष्मण जी के हृदय सागर में राम-प्रेम की लहरें उठ जाती हैं। राम वनवास का समाचार उर्मिला जी ने ही लक्ष्मण जी को सुनाया—

समाचार जब लछिमन पाए। ब्याकुल बिलख बदन उठि धाए।।

'समाचार जब लछिमन पाए' यह गोपनीय वाक्य है यहाँ यह समझने योग्य है, अवगम्य है। भगवती उर्मिला जी ने कहा—आप क्या कर रहे हैं? जीजी जी तो प्रभु के साथ चली जा रही हैं। यह सुनते ही 'उठि धाए' अपने पलँग पर से उठकर दौड़े और जाकर लक्ष्मण जी ने प्रभु के चरणों को पकड़ लिया—

कम्प पुलक तनु नयन सनीरा। गहे चरन अति प्रेम अधीरा।।

लक्ष्मण जी ने दौड़कर प्रभु के चरण पकड़ लिये, यही धर्म है। रामजी ने कहा कि आप मेरे चरणों को क्यों पकड़ रहे हैं? तब लक्ष्मण जी ने कहा कि मैं धर्म हूँ और सुना है कि सम्पूर्ण धर्मों की मूल गङ्गाजी हैं और गङ्गाजी निकलती हैं आपके चरणों से। अत: आपके चरणों को पकड़कर सर्वधर्ममयी गङ्गा जी से आशीर्वाद ले रहा हूँ कि इस धर्म का मैं निर्वाह कर सकूँ।

हमारे भारत का एक बहुत सुन्दर खेल है कबड्डी। इस खेल में दो वर्ग होते हैं और यह नियम होता है कि एक व्यक्ति कबड्डी-कबड्डी कहते, दूसरी पारी में चला जाता है। यदि प्रतिपक्षी ने उसको पकड़ लिया और उसकी साँस टूट गई तो वह आउट हो जाता है। हमारे यहाँ उसे 'मर गया' कहते हैं। अन्तत: फिर खेल नहीं सकते और मान लो साँस नहीं टूटी और वो उसको खींचकर लेकर चला आया, तो और भी आनन्द है। भगवान राम की जब भरत जी से कबड्डी होती तो रामजी की ओर लखनलाल जी और भरत जी की ओर शत्रुघ्नलाल जी रहते। जब भरत जी कबड्डी कबड्डी कहते हुए आते और रामजी के चरण पकड़ लेते, तब रामजी को पकड़े हुए, राम जी को खींचकर भरत जी ले जाते और जब रामजी 'कबड्डी, कबड्डी' कहते जाते तो भरत जी उनके चरण पकड़ लेते और उनके चरणों को अपने आँसुओं से धोने लग जाते और तब रामजी का श्वाँस टूट जाता था और राम जी बारम्बार हार जाते थे। लक्ष्मण जी कहते हैं, सरकार! आपकी भरत जी से मिली भगत है। हम आपके साथ नहीं खेलेंगे। आप अपना कोई दूसरा गुइय्याँ तय कर लीजिये। हमारी अवधी भाषा में साथी को गुइय्याँ कहते हैं।

सरजु तीर सम सीत सुखद थल, गनि गनि गुइय्याँ बाँटि लाईं।।

राम जी ने कहा कि लक्ष्मण इतना गरम क्यों हो रहे हो? लक्ष्मण जी ने कहा—आपकी भरतजी से मिली भगत है। खेल में ऐसे थोड़े ही किया जाता है। तब राम जी ने एक बहुत सुन्दर बात कही कि लक्ष्मण, मेरी यह सबसे बड़ी विवशता है कि जब कोई भक्त मेरे चरण पकड़ लेता है, तो मैं सब कुछ कर सकता हूँ पर उसको छुड़ा नहीं सकता। अब वनवास के समय उसी कबड्डी वाले प्रकरण की याद दिलाते हुए लक्ष्मण जी कहते हैं कि सरकार! जो सिद्धान्त बाल्यकाल में आपने बताया था, वह मुझे आज भी याद है और उसी का प्रयोग आज मैंने भी कर लिया—'**गहे चरन अति प्रेम अधीरा।**' प्रभु खड़े हो गए। उन्होंने लक्ष्मण जी को उपदेश दिया। लक्ष्मण जी ने कहा मैं कुछ नहीं जानता।

मैं सिसु प्रभु सनेह प्रतिपाला। मन्दरु मेरु कि लेहिं मराला।।

लक्ष्मण जी ने कहा—सरकार! क्या हंस का बच्चा, मन्दराचल या सुमेरु को उठा सकता है?

रामजी थोड़ा मुस्कुराए और फिर बोले कि लक्ष्मण, आज तो तुम कह रहे हो कि हंस का बच्चा मन्दराचल नहीं उठा सकता और मिथिला में तो तुम कैसे गरज-गरजकर कह रहे थे—

जौं तुम्हार अनुसासन पावौं। कन्दुक इव ब्रह्माण्ड उठावौं।।

कहाँ तो तुम पूरे ब्रह्माण्ड को गेंद के समान उठाना चाहते थे और अब कह रहे हो कि हंस का बच्चा मन्दराचल नहीं उठा सकता।

तब लक्ष्मण जी ने कहा कि सरकार, मैंने बिल्कुल ठीक कहा था। यदि आप मेरी आँखों के सामने रहें तो मैं पूरे ब्रह्माण्ड को गेंद के समान उठा सकता हूँ किन्तु यदि आप मेरे नयनों से दूर हो जाएँगे तो सरकार, लक्ष्मण एक तिनका भी नहीं उठा सकेगा। केवल आपका भजन ही मेरा धर्म है—

गुरु पितु मातु न जानउँ काहू। कहहुँ सुभाउ नाथ पतिआहू।।

हे प्रभो! मैं कुछ नहीं जानता। गुरु, पिता, माता जब मैं कुछ जानता ही नहीं, तो सेवा कैसे करूँ? जब मैं किसी को जानूँ, तभी तो सेवा करूँ। मैं अपना स्वभाव कह रहा हूँ—

जहँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निज गाई।।

जगत में जितने प्रेम हैं, जगत में प्रेम सम्बन्धी जो भी सम्बन्ध हैं, जगत में जहाँ तक प्रीति है, विश्वास है, वेद ने जिनको-जिनको अपना कहा है, वे सारे सम्बन्ध आपमें हैं।

'मोरे सबहिं एक तुम स्वामी।'

और, वही बात—

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम देव देव।।

हे प्रभो! सबकी ममताएँ आप में हैं। आप ही माँ, आप ही पिता, आप ही बन्धु, आप ही मित्र, आप ही विद्या, आप ही धन और सब कुछ, मेरे आप ही हैं।

यह है धर्म।

'स्वस्यायमेव धर्मोहि नान्यः क्वापि कदाचन्।'

हम लोग भगवान को कितना ठगते हैं। एक व्यक्ति मन्दिर में भगवान के दर्शन करने गए परन्तु उनका मन मन्दिर में भगवान से अधिक अपने जूतों में ही लगा रहा, तो भैय्या, जब ऐसा भजन होगा तो इसमें निश्चित् भगवान का दोष नहीं। जीव को विडम्बनाएँ भोगनी ही पड़ेंगी। **'सर्वं त्यक्त्वा हरिं भजेत्।'** सब कुछ छोड़कर भगवान का भजन करो। जब भजन करना हो तो किसी को भी याद मत करो। जब तक तुम्हारे मन में संसार रहेगा, तब तक तुम्हारी पूजा पूर्ण नहीं होगी। भगवान का तब तक स्मरण नहीं हो सकता, जब तक संसार का विस्मरण न हो जाए। जब तक भगवान का विस्मरण होगा, तब तक दो वस्तुवें जीवन में रहेंगी, विष भी जीवन में रहेगा और मरण भी रहेगा। तो, विष और मरण इन दोनों चीजों को दूर करने के लिए संसार का विस्मरण करो और भगवान का स्मरण करो। एक भक्त ने पूछा कि आप लक्ष्मण जी का उदाहरण देते हैं कि एकमात्र भगवान का भजन ही जीव का धर्म है तो उत्तरदायित्व कौन निभाएगा? इसका बहुत सुन्दर उत्तर इस श्लोक में देते हैं—

एवं सदास्मकर्तव्यं स्वयमेव करिष्यति।
प्रभुः सर्व समर्थो हि ततो निष्कृततां भज।।

यह बात ध्यान से समझने की है। आपके जीवन का रहस्य खुल जाएगा—**'एवं सदा स्म कर्तव्यम्।'**, यदि हम ठीक-ठीक भगवान का भजन करने लग जाएँगे, यदि हमारा मन ठीक भगवान में लग जाएगा, तो हमारे उत्तरदायित्वों को भगवान स्वयं पूर्ण कर देंगे, हमको कुछ सोचने की आवश्यकता नहीं है। अनेक गाथाएँ भरी पड़ी हैं। पहले मैं एक पुरानी और फिर एक नई गाथा सुना रहा हूँ।

हमारे आद्य रामानन्दाचार्य जगद्गुरु, जिनकी गद्दी पर वर्तमान में मैं बैठा हूँ। वे आद्य थे और मैं चतुर्थ हूँ। आद्य जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी महाराज के एक शिष्य थे सेन जी। सेन जी बड़े भागवत थे। जाति के नाई थे। बड़े भावुक थे। वे रीवाँ के महाराज, बान्धवेश जी के यहाँ, उनकी सेवा करने प्रतिदिन जाते थे। एक दिन एक सन्त आ गए,

सत्सङ्ग चलने लगा। इतनी मस्ती आई कि वो भूल गए कि महाराज के यहाँ जाना है। देखो, जब काम से जी चुराओगे, तब भगवान सहायता नहीं करेंगे, यदि जानबूझकर काम छोड़ोगे, तब भगवान सहायता नहीं करेंगे। यदि भगवान की तन्मयता में काम छूट जाए, तब भगवान सहायता करेंगे। सेन जी को इतनी तन्मयता आई कि वे बान्धवेश जी के यहाँ जाना भूल गए। भगवान जानते थे कि राजा के नियम के अनुसार यदि सेन जी, आज नहीं जाएँगे तो उनको प्राणदण्ड दिया जाएगा। भगवान ने सोचा कि आज तो मेरे भक्त की मृत्यु हो जाएगी। तुरन्त भगवान ने सेन जी का रूप धारण कर लिया। हाथ में छुरहरी और तेल ले लिया। बान्धवेश जी के यहाँ जाकर, स्वयं ठाकुर जी ने उनकी दाढ़ी व बाल बनाए और स्वयं उनकी मालिश की। इतनी अच्छी मालिश भला, सेन जी कैसे कर सकते थे। इधर, जब सत्सङ्ग सम्पन्न हो गया तो सेन जी को याद आया कि अरे! आज तो मुझे राजा के यहाँ जाना था, अब तो मेरी मृत्यु होगी। डरते-डरते, काँपते-काँपते, आए तो राजा मुस्कुराकर बोले कि आज सेन जी, आपने बड़ी सुन्दर सेवा की। सेन जी ने आश्चर्य से कहा कि मैंने सेवा की ? मैं तो भूल गया था सरकार, आज सत्सङ्ग में देरी हो गई। राजा बोले कि चुप रहो, तुम्हीं तो आए थे। देखो, मेरी इतनी चिकनी दाढ़ी तो कभी बनी ही नहीं। तब सेन जी को लगा, कि मेरे कारण मेरे सरकार को, आज नाई बनना पड़ा। उसी समय, सेन जी ने घर छोड़ दिया और आद्य रामानन्दाचार्य जी के यहाँ विरक्त दीक्षा लेकर, केवल उन्हीं के बाल बनाने लगे। हम त्रिदण्डियों का नियम होता है कि सात दिन के बाद बाल बनवा देने पड़ते हैं। इस प्रकार सेन जी ने जीवन भर आद्यरामानन्दाचार्य जी के बाल बनाए और परमपद को प्राप्त हुए। भाव यह है कि जब हम भगवान के प्रेम की तन्मयता में अपना उत्तरदायित्व भूल जाएँ तो हमारे उत्तररदायित्वों का निर्वहण निश्चित भगवान करते हैं।

एक उदाहरण अब मैं अपना देखा हुआ बता रहा हूँ। 'छपरा' में एक श्रीवास्तव परिवार है। उस परिवार में धर्मशीला जी नामक एक महिला हैं। पहले अध्यापिका थीं। उन दिनों छपरा में मेरा कभी कभी जाना होता था। उन्होंने मुझसे 'राममन्त्र' की दीक्षा ली थी। यह घटना जो मैं, अब बताने जा रहा हूँ, धर्मशीला जी की सास से सम्बन्धित घटना है। आज से पचास वर्ष पूर्व 'छपरा' में 'रामाजी' नाम के एक सन्त हुए। रामाजी महाराज, भगवान राम के दुलहा रूप के उपासक थे। यदि दुलहा रूप में किसी को देख लिया तो उनको रामजी की याद आ जाती थी। उनकी बेटी का विवाह निश्चित हो गया

था और संजोग से, बेटी के विवाह से एक दिन पूर्व, उन्हें राम-विवाह के कीर्तन में जाना पड़ा। वहाँ जाकर वे कीर्तन में इतने मस्त हो गए कि चौबीस घण्टे कीर्तन चलता रहा। इधर, बेटी की बारात आने का समय हो गया। रामा जी तो अपनी मस्ती में बिल्कुल भूल गए कि मेरी बेटी की आज बारात आनी है। आप विश्वास कीजिये, धर्मशीला जी अभी जीवित हैं और आपको बता सकती हैं। यह घटना केवल पचास वर्ष पूर्व की है। श्यामसुन्दर राघवेन्द्र सरकार, रामाजी का वेष बनाकर वहाँ आए, उनकी पत्नी के साथ गाँठ जोड़कर कन्यादान किया, पूरा भोजन करवाया, बारात की विदाई की और समधी जी की विदाई की। इधर दूसरे दिन जब कीर्तन समाप्त हुआ, तब तक बेटी के विदा होने का समय आ गया। अरे राम! अब क्या होगा? अब, जब रामाजी रोते-रोते पोखरे पर आए, तो समधी जी मिले और कहने लगे कि आज आपने बड़ी सुन्दर सेवा की। बारात का इतना सुन्दर सत्कार मैंने जीवन में कभी नहीं देखा। रामा जी ने कहा कि मैं तो अभी अभी कीर्तन से आ रहा हूँ। समधी जी ने कहा—नहीं महाराज, आप तो कल थे ही, आपने नेग भी दिया। तब उन्होंने अपनी पत्नी से पूछा, तो पत्नी ने कहा—"रउआ तो हमरे साथ गाँठ जोड़िके कन्यादान करत रहली हैं जी।" (आपने ही तो हमारे साथ गाँठ जोड़कर कन्यादान किया था)

यह प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। धर्मशीला जी की सास ही वह कन्या थीं और उन्होंने देखा और फिर कहा था कि बाबूजी तो दूसरे गाँव में कीर्तन कर रहे थे और भगवान राम जी, बाबूजी का वेष बनाकर हमारे चरण धो रहे थे। इसीलिए—

एवं सदास्मकर्तव्यं स्वयमेव करिष्यति।

जब भगवान के प्रेम में तन्मयता होती है तो भगवान, इसी प्रकार भक्त के उत्तरदायित्वों का निर्वहण करते हैं।

मित्रों! छः महीने का नाटक हमने भी किया, भजन तो करते नहीं थे। पर आपसे सच कह रहा हूँ, झूठ नहीं कह रहा हूँ कि, मेरे जीवन का छः महीने तक चलने वाला अनुष्ठान प्रारम्भ करने की तिथि आ गई। उससे एक दिन पूर्व, मेरी अग्रजा, तुम्हारी बुआजी ने कहा—'गुरु जी! आपकी कथा ही इन बच्चों की जीविका है। कथा से जो पैसा आता है, उसी से इन बच्चों के भोजन की व्यवस्था होती है। आप छः महीने कथा नहीं करेंगे तो इन बच्चों का भोजन कैसे चलेगा? पहले इनकी व्यवस्था कर दीजिये,

तब अनुष्ठान में बैठिये, नहीं तो पाप लगेगा न। मेरी आँखों में आँसू आ गए। मैंने कहा–'मुकुन्द! यदि मेरा अनुष्ठान् करना नाटक नहीं है तो आज ही व्यवस्था हो जाएगी और आप विश्वास कीजिये, उसी दिन, जिस दिन मुझे अनुष्ठान में बैठना था, ऐसी कुछ लीला बन गई कि छः महीने के भोजन की इन विद्यार्थियों की व्यवस्था, अपने आप हो गई। मुझे कुछ भी नहीं करना पड़ा। जिस भोजन की व्यवस्था के लिए, मुझे नौ-नौ घण्टे कथा कहनी पड़ती थी, और लोगों से कहना भी पड़ता था, वह पूरी छः महीने की व्यवस्था हो गई। यह बात मैं झूठ नहीं कह रहा हूँ, सत्य कह रहा हूँ। मैंने कहा-'मुकुन्द! अब मुझे आज्ञा दीजिये, अनुष्ठान में बैठने की। तो यदि हम सच्चे मन से भगवान का भजन करेंगे, नाटक नहीं करेंगे, तो भगवान हमारी सहायता करेंगे ही। जो भजन दूसरों को दिखाने के लिए किया जाता है तो वह नाटक भगवान को बिल्कुल पसन्द नहीं। यदि भजन अपने को पुजवाने के लिए किया जाता है तब भगवान सहायता नहीं करते। हम तो अनुष्ठान अपनी मस्ती के लिए करते हैं। वैसे तो आप लोगों ने 'पद' भी दे दिया, विद्या भी है और दूसरों से स्वयं को पुजवाने की इच्छा भी नहीं, किन्तु अपने आनन्द के लिए, अपनी मस्ती के लिए, अपनी तन्मयता के लिए हम अनुष्ठान करते हैं। इसलिये–

एवं सदा स्म कर्तव्यं स्वयमेव करिष्यति।
प्रभुहि सर्व समर्थो हि ततो निष्कृततां भज।।

यदि हमारा ठीक ठीक प्रेम भगवान में होगा और प्रेम से एक बूँद भी आँसू, भगवान के चरणों में गिरा देंगे तो निश्चित हमारे उत्तरदायित्वों का निर्वहण भगवान स्वयं कर लेंगे। भगवान समर्थ हैं, सब कुछ कर सकते हैं भगवान तो कह रहे हैं–

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।।

गीता ९/२२

यदि हमारे हृदय में अनन्य भाव हो अर्थात् हमारे हृदय में भगवान के अतिरिक्त कोई अन्य न रहे और भगवान का भजन किया जाए तो भगवान हमारे योग और क्षेम दोनों का वहन करते हैं, ऐसा अनन्य विश्वास होना चाहिये।

भरत जी महाराज को अयोध्या की सेवा सौंपी गई कि तुम्हें चौदह वर्षों तक अयोध्या का राज्य सँभालना है, सेवा करनी है। परन्तु आज अनजाने में भरत जी से एक

भूल हो रही है और वह भी इतनी बड़ी भूल कि जिसकी भरपाई भरत जी कई जन्मों में नहीं कर सकते। आज यदि भगवान राम नहीं सँभालेंगे तो भरत जी मुँह दिखाने लायक नहीं रह जाएँगे। कौन सी वह भूल है, अब आप देखिये।

लक्ष्मण जी को शक्ति लगने के पश्चात् हनुमान जी महाराज सञ्जीवनी बूटी सहित पर्वत को लेकर उड़ते आ रहे हैं। भरत जी ने देख लिया कि कोई विशाल जीव आ रहा है। उनका अनुमान गलत हो गया—

देखा भरत बिसाल अति निसिचर मन अनुमान।
बिनु फर सायक मारेउ चाप स्रवन लगि तान।।

हनुमान जी निशाचर तो नहीं, भरत जी का अनुमान गलत हो गया। इससे यह सिद्ध होता है कि अनुमान गलत हो सकते हैं अतः अनुमान पर विश्वास मत करो। भूल कर दी भरत जी ने। वैसे उनका अनुमान कभी गलत नहीं होता था किन्तु आज बहुत बड़ी भूल हो गई। भरत जी निरन्तर प्रत्येक कार्य पादुका जी से पूछकर करते हैं—

माँगि माँगि आयसु करत राज काज बहु भाँति।

परन्तु आज पादुका जी को शयन करा चुके थे और रात में यह कार्य आ पड़ा आज पादुका जी से पूछ लिया होता तो यह भूल नहीं हो पाती। रात्रि होने के कारण पादुका जी से बिना पूछे, बिना फल का बाण मार दिया। अब आप बताइये कि सौ योजन के पर्वत सहित जब हनुमान जी बारह योजन लम्बी अयोध्या पर गिरेंगे तो वहाँ की दशा क्या हो जाएगी? यदि आज अयोध्या नहीं रहती तो भरत जी का चौदह वर्ष तक का किया कराया धूल में मिल जाता और राम जी के सामने, वह मुँह दिखाने लायक नहीं रहते किन्तु अपने भक्त की भूल को तो भगवान सँभालते हैं। भगवान का उत्तरदायित्व है। भगवान जान गए कि मेरे भक्त से भूल हो रही है पर है यह मेरा अनन्य भक्त। तुरन्त भगवान राम ने हनुमान जी को यह प्रेरणा दे दी कि हे हनुमान! भरत से भूल तो हो रही है पर अब तुम पर्वत सहित मत गिरो। दे दो पर्वत पवन देव को और हनुमान जी को इतना ज्ञान हो गया कि मैं अयोध्या पर गिर रहा हूँ, अतः हनुमान जी ने पर्वत पवनदेव को दे दिया—

हनेउ हिय बान दियो गिरि पवनहि पुर जन तेज पियो है।

(गीतावली रामायण)

इस प्रकार, यदि व्यक्ति भगवान के भजन में तन्मय हो जाए तो उसकी समस्त उत्तरदायित्वों का निर्वहण भगवान स्वयं करते हैं। लक्ष्मण जी ने तो कह दिया कि आपके चरणों का भजन करना ही मेरा धर्म है। किसी की बात लक्ष्मण जी ने नहीं मानी–

मन क्रम बचन चरन रति होई। कृपा सिन्धु परिहरिय कि सोई।।

लक्ष्मण जी ने इस धर्मसङ्गत सिद्धान्त से, रामजी को चुप कर दिया। आप ही कहते हैं कि मेरे चरणों का भजन ही जीव का एकमात्र धर्म है। आप मुझे छोड़ नहीं सकते और राम जी ने इस बात को स्वीकारा तथा लक्ष्मण जी ने इस सिद्धान्त को जीवन भर निभाया।

लक्ष्मण जी 'धर्म' व उनकी पत्नी, भगवती उर्मिला जी 'श्रद्धा' हैं। लक्ष्मण जी इस श्रद्धा की सहायता से उस धर्म का आचरण करते रहे। जाते समय लक्ष्मण जी ने आरती नहीं उतरवाई। उर्मिला जी आरती लेकर आईं, सामने खड़ी हैं, पर लक्ष्मण जी कहते हैं कि नहीं, मेरा धर्म है भगवान का भजन करना, यदि आरती उतरवाऊँगा तो मेरा धर्म टूट जाएगा। उर्मिला जी ने कहा कि बिल्कुल ठीक है, यदि आपका धर्म है भगवान का भजन करना और आरती न उतरवाना, तो मेरा भी धर्म है कि जब तक आप रामजी की सहायता करके, रावण पुत्र मेघनाद का वध करके अयोध्या नहीं लौट आते, तब तक ये आरती जलती रहेगी और तब तक आरती जलती रही। जब रावण का वध करके श्रीराम व मेघनाद का वध करके कुमार लक्ष्मण लौटे, पूरी प्रजा से मिलकर, जब अपने भवन में आए तब उर्मिला जी ने वह आरती उतारी। इस प्रकार, इस 'श्रद्धा' ने लक्ष्मण जी को एक ऐसा धर्म ही नहीं बनाया प्रत्युत लक्ष्मण जी को, राम जी के धर्म की ध्वजा ही बना डाला और इस प्रकार कुमार लक्ष्मण धर्म की ध्वजा बने।

रघुपति कीरति बिमल पताका। दण्ड समान भयउ जस जाका।।

सीताराम जय सीताराम। सीताराम जय सीताराम।।

सीताराम जय सीताराम। सीताराम जय सीताराम।।

श्री सीताराम भगवान की जय

पञ्चम वाक् पुष्पपाञ्जलि सम्पन्न

।।श्री राघव:शन्तनोतु।।

।। श्रीमद्राघवो विजयतेतराम् ।।

अथ षष्ठ वाक् पुष्पाञ्जलि

श्री तुलसीपीठ आमोदवन, चित्रकूट

दिनाङ्क २३.३.९९

मङ्गलाचरण

आगच्छ वायुसूनो त्वं मया रामायणी कथा।
प्रारभ्यते भव श्रोता गृहाणासनमुत्तमम्।।

जय जय राघव राम शिशु, नख शिख ललित उदार।
जय गिरिधर के प्राणधन, जय मुन्ना सरकार।।

केचिद्ध्यानपरायणाः प्रतिपदं पारम्परं वैभवाद्।
भूयिष्ठं समुपासतेतुविरजं तन्निर्गुणं निष्क्रियम्।।
किन्त्वस्मन्नयनाभिरामविषयः श्यामस्तमालद्युतिः
कौसल्यासुकृताभिशारदशशिः श्री राघवो राजताम्।।

सीतापतिप्रार्थितदिव्यकूटं सौमित्रसम्सेवितनव्यकूटम्।
श्रीमैथिलीमण्डित भव्यकूटं वन्दामहे चिन्मय चित्रकूटम्।।

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं सीतासमारोपितवामभागम्।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम्।।

श्रीसीतानाथसमारम्भां श्रीरामानन्दार्य मध्यमाम्।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे श्रीगुरुपरम्पराम्।।

श्री हरिगुरु वैष्णव चरण कमलेभ्यो नमः।

श्रीमद्चित्रकूटो विजयतेतराम्।।

सीताराम जय सीताराम। सीताराम जय सीताराम

श्री सीताराम भगवान की जय

श्री चित्रकूटविहारी विहारिणी जू की जय

श्री चित्रकूटकामदहनुमन्मन्दाकिनी मैय्या की जय

श्री चित्रकूट के दृष्टादृष्ट सन्त भक्त भगवन्त,

वैष्णव वृन्द की जय

।। जय जय श्री सीताराम।।

परिपूर्णतम परात्पर परमात्मा भगवान आनन्दकन्द, कोसलेन्द्र सरकार की मधुमयी, मङ्गलमयी अनुकम्पा के परिणामस्वरूप, हम श्रीराघवेन्द्र सरकार के कर-कमलों में षष्ठ कुसुमस्तव प्रस्तुत करेंगे अर्थात् अब हम छठे प्रवचन के पुष्प के गुच्छे को अर्पित कर रहे हैं भगवान के चरणों में।

कितना सुन्दर वातावरण है! हमारे बिल्कुल सामने की ओर भगवान कामदेश्वर हैं, उधर से श्री हनुमान जी महाराज और इधर से श्री तुलसीपीठ के अधिष्ठातृ देवता श्री चित्रकूटविहारी विहारिणी जू और उधर से सभी, परोक्ष में विराजमान कथा के रसिक, कोटि-कोटि परमहंस परिब्राजकों के भी पूज्यपाद, अदृष्ट सन्तगण! मैं यह कहने में बिल्कुल सङ्कोच नहीं कर रहा हूँ कि हमारे चित्रकूट का एक साधारण सा गँवार, अँगूठाछाप, रामचरितमानस के बारे में जितना जानता है, उतना भारतवर्ष के किसी कोने के वरिष्ठ वक्ता भी नहीं जानते। रामायण जी के बहुत से ऐसे प्रसङ्ग हैं, जिन प्रसङ्गों की व्याख्या मैंने गँवारों से समझी, छोटे-छोटे बच्चों से, गाँव की अनपढ़ महिलाओं से समझी, क्योंकि मैं प्रयास करता हूँ और जीवन भर प्रयास करता रहूँगा कि मुझे रामचरितमानस में कुछ आ जाए। मैं पूर्ण नहीं बना और निरन्तर नया-नया आता रहता है। मुझे लगता ही नहीं कि मुझे कुछ आया। मैं कभी सन्तुष्ट नहीं हुआ। यदि शास्त्र में व्यक्ति सन्तुष्ट हो जाता है, तो उसका सर्वपतन हो जाता है।

आइये, उसी दोहे को फिर पढ़ते हैं—

मुदित अवधपति सकल सुत बधुन्ह समेत निहारि।
जनु पाए महिपाल मनि क्रियन्ह सहित फल चारि।।

सामान्य अर्थ तो बहुत स्पष्ट है कि चक्रवर्ती जी समधी के रूप में बैठे हैं और मिथिलानियाँ गीत गा रही हैं, चारों ओर से वैदिक मन्त्र पढ़े जा रहे हैं, सुन्दर-सुन्दर

दीपमालाएँ अवधपति के भूरिभाग्य का अभिनन्दन कर रही हैं। सखियाँ श्री जनकनन्दिनी जी को सजाकर, माण्डवी जी को सँभालकर, उर्मिला जी को दुलारकर और श्रुतिकीर्ति जी को सँवारकर फूली नहीं समा रही हैं और बहुत आनन्द कर रही हैं। पूरा वातवरण विवाह का है। सखियाँ गीत गा रही हैं–

दुलहा के रँग आसमानी, लली के रँग बादामी।
बादामी रे, लली के रंग बादामी। दुलहा के.....

काली काली घुँघराली लट लटके मुख पर
कुसुमकली मनमानी, लली के रंग बादामी। दुलहा के.....

अरुण अधर मुख पान की लाली
मधुर मधुर मुसकानी, मगन भईं मिथिलानी। दुलहा के.....

नैन कजरारे अरुणारे रतनारे
चितवन अमिय रसखानी, लखत भईं दीवानी। दुल्हा के.....

प्रेम प्रमोद को बादल बरसत
सखी प्रेम रँग में रँगानी, बिबस भईं मिथिलानी। दुलहा के.....

इस रसमय वातावरण में चक्रवर्ती जी ने अपनी आँखों से जिन चार दुलहा-दुलहिनों को निहारा तो गोस्वामीजी ने आनन्द से लिखा–**'मुदित अवधपति सकल सुत'**, आज सकल सुतों को निहारा। सुत माने पुत्र, **'सकल'** शब्द में श्लेष है। किन पुत्रों को निहारा, तो वे कहते हैं कि सभी पुत्रों को निहारा। तो सभी पुत्रों को तो वे निहार ही रहे थे फिर इसमें वैशिष्ट्य क्या था? अरे भाई ये सकल सुत थे **'कलाभिः सहिताः सकलाः'**। आज दिव्य दिव्य, भव्य भव्य, नव्य नव्य लोकोत्तर निर्झरानन्दनिर्भरानन्द सम्पन्न समस्त कलाओं से युक्त हो चुके थे। कलाओं से युक्त होने के कारण यहाँ सकल कह दिया। कलाओं से युक्त अपने पुत्रों को जब **'बधुन्ह समेत निहारि'** चारों दुलहनों के साथ निहारा तो ऐसा लगा मानों आज उन्हें क्रियाओं के सहित अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष ये चारों फल मिल गए हैं।

इन चारों में 'अर्थ' अर्थात् दैन्यपूर्वक भगवद्कैंकर्य, शत्रुघ्नलाल जी हैं और इनकी क्रिया, 'सेवा', श्रुतिकीर्ति जी हैं।

'भगवद् भजनापरपर्याय धर्म' यही लक्ष्मण जी हैं। जिनकी क्रिया **'श्रद्धा'** श्री उर्मिला जी हैं। लक्ष्मण जी धर्म हैं यह बहुत स्पष्ट है पर एक बात समझने की है कि कैसे हम समझें कि लक्ष्मण जी को यहाँ धर्म माना जा रहा है। इसका संकेत गोस्वामी जी ने **'कवितावली रामायण'** के अयोध्याकाण्ड के प्रथम छन्द में ही दिया है—

कीर के कागर ज्यों नृप चीर विभूषण ऊपम अङ्गनि पाई।
अवध तजे मगवास के रूख ज्यों पन्थ के साथी ज्यों लोग लुगाई।।
सङ्ग सुबन्धु पुनीत प्रिया मानों धर्म क्रिया धरि देह सुहाई।
राजिवलोचन राम चले तजि बाप को राज बटाउ की नाईं।।

यह, देखिये प्रमाण। जब गोस्वामी जी ने मुक्तकण्ठ से लक्ष्मण जी को धर्म कह ही दिया—**'संग सुबन्धु पुनीत प्रिया मनो धर्म क्रिया धरि देह सुहाई'**, और अयोध्या काण्ड में लक्ष्मण जी के मुख से रामजी को मोक्ष कहलवा ही दिया, **'राम ब्रह्म परमारथरूपा'** तो जब धर्म और मोक्ष का निर्णय हो ही गया **'पारिशेष्यात्' 'अर्थ'** शत्रुघ्न और **'काम'** भरत अपने आप ही निश्चित हो गए।

यह है ग्रन्थ, जो मेरी बुद्धि 'नैषध' जैसे जटिलतम् ग्रन्थ को हँसते-हँसते 'हनुमान चालीसा' जैसे पढ़ा लेती है। अद्वैतसिद्धि का जब खण्डन लिखा मैंने तो दो सौ कोटियाँ लिखीं, उस मत के खण्डन में मैंने परन्तु इतनी मेरी परिणत बुद्धि भी जब रामचरितमानस के पास आती है तो इतना सँभलकर चलती हैं जैसे कोई लज्जाशील बहू सिर पर घड़ा लेकर फिसलने वाली भूमि पर धीरे-धीरे चलती है कि वह कहीं फिसल न जाए। इतना कठिन ग्रन्थ है यह। ग्रन्थ को समझने के लिए छः प्रमाणों की आवश्यकता होती है—

उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वता फलम्।
अर्थवादोपपत्तीच लिङ्गं तात्पर्यनिर्णये।।

हमारे यहाँ छः प्रमाण होते हैं—

१. उपक्रमोपसंहार

२. अभ्यास

३. अपूर्वता

४. फल

५. अर्थवाद और

६. उपपत्ति

जब तक ये छः प्रमाण किसी वस्तु को न कहें, तब तक हमें तात्पर्य का निर्णय नहीं करना चाहिये। हमारे यहाँ मीमांसा में यही तो विचार किया गयाहै कि हम किसी ग्रन्थ का तात्पर्यार्थ कैसे समझें ?

श्रुतानिमित्यो श्रुत सम्बन्धो बलीयात्

श्रुत और अनुमित, हमारे सामने दो पक्ष हैं अर्थात् एक श्रुत और दूसरा अनुमान। इसमें से हम श्रुत सम्बन्ध को श्रेष्ठ मानते हैं। एक वाक्य कहा जा रहा है और दूसरे में हम अनुमान कर रहे हैं तो इन दोनों में से श्रेष्ठ तो उसे ही माना जाएगा जो सुना जा रहा है। तो जब गोस्वामी जी ने श्रुत कर दिया कि लक्ष्मण जी धर्म हैं और रामचन्द्र जी मोक्ष हैं, तो फिर लक्ष्मण जी के प्रति 'काम' का अनुमान कैसे किया जाए, मैं तो यह बात नहीं समझ पा रहा हूँ। अब यह सिद्ध हो चुका कि लक्ष्मण जी धर्म हैं।

आइये, अब कुछ लक्षण घटाकर सिद्ध करूँ। आज धर्म के सम्बन्ध में अनेक भ्रान्तियाँ हैं। मैं आपका जगद्गुरु हूँ और जगद्गुरु तो सबका गुरु होता है, चाहे वह किसी को दीक्षा दे या न दे। धर्म की एक सामान्य सी परिभाषा यह है कि जो करना चाहिये, वह धर्म है और जो नहीं करना चाहिये, वह अधर्म है। अब प्रश्न यह है कि हमको इसका ज्ञान कैसे हो कि क्या करना चाहिए, इसके लिए 'मनु' जी ने चार सिद्धान्त निश्चित किये—

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं ज्ञेयं साक्षात् धर्मस्य लक्षणम्।।

धर्म को साक्षात् रूप में चार प्रकार से लक्षित किया जाता है—

१. वेद-वेद जो कह दें, वेद जिसे करने की आज्ञा दे रहे हों, वह धर्म और और वेद जिसे करने को मना कर रहे हों वह अधर्म है। वेद कहते हैं—**'अहरहः संध्यामुपासीत'** निरन्तर संध्या करनी चाहिये, अतः सन्ध्या करना धर्म है।

वेद कहते हैं—**'असत्यं मा वद्'** झूठ मत बोलो। अतः झूठ बोलना अधर्म है।

वेद कहते हैं–**'मातृ देवो भव', 'पितृ देवो भव', 'आचार्यो देवो भव', 'अतिथि देवो भव'**। माता, पिता, आचार्य और अतिथि को देवता समझो, यह धर्म है।

वेद कहते हैं–**'स्वाध्यायान् मा प्रमदः'** स्वाध्याय से प्रमाद मत करो अर्थात् निरन्तर कुछ पढ़ो, लिखो जैसे रामायण, हनुमान चालीसा आदि। उपन्यास आदि मत पढ़ो। धर्मग्रन्थों के विपरीत ग्रन्थों का पढ़ना अधर्म है। अतः जिसे करने के लिए वेद मना कर रहे हों, तो वह अधर्म है।

आप यदि यह कहें कि वेद हमें समझ में नहीं आते हैं तो स्मृतियाँ तो समझ में आती हैं। वो तो लोक भाषा में लिखी गई हैं। इस प्रकार मनु आदि अट्ठारह स्मृतियाँ, मत्स्यादि भागवतान्त अट्ठारह पुराण, रामायण, महाभारत और सनातन धर्म सम्बन्धी रामायण महाभारतानुरूप महाकाव्य, अर्थात् मनुस्मृति से लेकर हनुमानचालीसा तक जो कुछ आर्षवाङ्मय है, वह स्मृति है, वो जिस काम को करने के लिए कहे, वह धर्म है और जिस काम से आपको रोके, वह अधर्म है।

अब तीसरा पक्ष दिया मनु जी ने उन लोगों के लिए जो यह कहते हैं कि हम तो पढ़े लिखे नहीं हैं हम क्या करें? तो तीसरा पक्ष बहुत बढ़िया दिया कि 'सदाचार' सदाचार का अर्थ है 'सतां आचारः' सन्तों का आचरण। जो शास्त्रानुमोदित आस्तिक सन्त हों, उनका आचरण देखिये। मैं तो वैदिक सन्त हूँ और उसी को सन्त मानता हूँ, जो वेद पुराण के अनुरूप आचरण करता है। वो सन्त हो ही नहीं सकता, जिसका आचरण वेद विरुद्ध हो। इस प्रकार से वैदिक सन्तों के आचरण के अनुरूप चलना ही धर्म है और उनके अनुरूप न चलना अधर्म है। अर्थात् जो सन्त करें और जो तुम्हें करने की आज्ञा दें वही कर लो और जिसे मना करें, उसे मत करो।

चौथी बात मनु जी ने कहा–**'स्वस्य च प्रियमात्मनः'** अर्थात् जिसको करने से तुम्हारे मन को सन्तुष्टि हो, वही धर्म और जिसको करने के बाद, तुम्हारी आत्मा तुम्हें कोसे, तुम्हें डर लग जाए, यह अधर्म है। ऐसा बहुधा हमारे जीवन में होता है कि जब भी हम कोई बुरा काम करने जाते हैं तो हमारी आत्मा हमें रोकती है कि ऐसा मत करो, इस प्रकार जब आत्मा रोके तो अधर्म है। उदाहरण देकर इस बात को स्पष्ट करता हूँ जैसे प्रातःकाल जब आप मन्दाकिनी में नहा लेते हैं तो आपका मन मुस्कुराने लगता है और यह लगता है कि यह हमने अच्छा काम किया है और मान लो यदि हमने किसी को

गाली दे दी तो हमारा मन उस समय मुस्कुराता नहीं है, हमारा चेहरा क्रोध से लाल हुआ रहता है और हमारी आत्मा हमें धिक्कारती है कि हमने गाली क्यों दी?

इसी प्रकार भण्डारे का प्रसाद पाकर एक सन्तोष होता है तो निश्चित वह प्रसाद पाना धर्म है और चोरी से कोई वस्तु खा लेने पर डर लगता है तो निश्चित चोरी से वस्तु खाना अधर्म है।

इसलिए जिस कर्म को करने से आत्मा को सन्तोष हो जाए, वह धर्म है और जिस कर्म को करने से हमारी आत्मा को सन्तोष न हो, हमारी आत्मा पश्चात्ताप करे, वह अधर्म है। छोटे बच्चे को मारने पर माँ का रो देना, पश्चात्ताप है और यह भी अधर्म है।

इस प्रकार मनु जी ने धर्म के चार मापदण्ड निश्चित किये। वेदव्यास जी ने इन चारों का सारांश कहा। वेद, सम्पूर्ण आर्ष वाङ्मय, सम्पूर्ण वैदिक सन्त, तथा आत्मतत्व, ये चारों एक ही बात कह रहे हैं कि—

स्मर्तव्यः सततं विष्णुः, विस्मर्तव्यो न जातुचित्।
सर्वे विधिनिषेधाः स्युः, एतयोरेव किङ्कराः।।

सम्पूर्ण वेद वाक्यों का एक ही अर्थ है कि भगवान का सदा स्मरण करो। भगवान का स्मरण करना व भगवान का भजन करना यही परम धर्म है। '**विस्मर्तव्यो न जातुचित्**' भगवान को कभी मत भूलो। अतः भगवत्स्मरण सबसे बड़ा धर्म है और भगवत्विस्मरण सबसे बड़ा अधर्म है।

आशा है अब आप निर्व्याज और निर्विवाद रूप से धर्म का सिद्धान्त समझ गये होंगे।

इसी को गोस्वामी जी ने कहा—

राम सुमिरन सब विधि ही को साज रे।
राम को बिसारियो निषेध सिर ताज रे।।

सबसे बड़ी विधि है, भगवान को स्मरण रखना। और सबसे बड़ा निषेध है, भगवान को भूल जाना। अब यहाँ विचार करिये कि क्या यह '**धर्म का लक्षण, कुमार लक्ष्मण**' में, सर्वांश में नहीं घट रहा है? अरे यह लक्षण तो उन पर लड़कपन से ही घट गया—

बारेहिं ते निज हित पति जानी। लछिमन राम चरन रति मानी।।

कितना सुन्दर लक्षण घटा कि और लोग तो बाद में स्मरण करते हैं परन्तु लक्ष्मण जी तो '**बारेहिं ते.....**' जबसे जन्म लिया है, तबसे ही राम चरणारविन्द का स्मरण करते हैं। एक भी क्षण लक्ष्मण जी भगवान राम को नहीं भूले, अतः लक्ष्मण जी धर्म हैं। धर्म का क्या कार्य है? धर्म करता क्या है? 'मनु' जी के अनुसार—

धारणात् धर्म मित्याहुः धर्मो धारयति प्रजाः।

धारण करने के कारण इसे धर्म कहते हैं। '**धरति इति धर्मः**' जो धारण करता है, उसे धर्म कहते हैं। धर्म धारण करता है 'प्रजाः' अर्थात् प्रजाओं को, जो धरती पर रहती हैं अर्थात् सम्पूर्ण पृथ्वी को जो धारण करता है, उसे धर्म कहते हैं। संयोग से इस पृथ्वी को सहस्र शिरों वाले शेष ने धारण किया है और वही शेष हैं, यहाँ कुमार लक्ष्मण।

सेष सहस्र सीस जग कारन। जो अवतरेउ भूमि भय टारन।।

कितना सुन्दर वर्णन है कि वे शेषनारायण हैं और एक और मधुर बात यह है कि यह धर्म केवल पृथ्वी को ही धारण नहीं करता वरन् लक्ष्मण रूप धर्म तो विचित्र ही है। वह सिर पर तो पृथ्वी को धारण करता है तथा गोद में नारायण को धारण करता है। कितना सुन्दर वर्णन है।

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशम्

'**भुजगशयनं**' सिर पर तो पृथ्वी है और गोद में नारायण हैं अर्थात् कुमार लक्ष्मण के सिर पर तो पृथ्वी है और हृदय में, भगवान पृथ्वी पुत्री के पति हैं। इतना मधुर यह वर्णन है। तो लक्ष्मण ने केवल पृथ्वी को धारण नहीं किया प्रत्युत पृथ्वी के साथ पृथ्वी की पुत्री के पति को भी धारण किया '**पौढ़े धर उर पद जल जाता**' ध्यान रखिये, धर्म की व्याख्या मीमांसा में तो यही है,जो मैंने कहा—'**अथातो धर्मजिज्ञासा**' धर्म की जिज्ञासा करनी चाहिये। '**नोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः**', वेद ने जिसे विधि कहा, वही धर्म है। भागवतकार ने कहा—

'वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद् विपर्ययः। वेदो नारायणः साक्षात् स्वयंभूरिजशुश्रुम।

वेद ने जिसे करने के लिए कहा, वही धर्म है, और जिसे करने के लिए मना किया, वही अधर्म है। गौतम जी धर्म के सम्बन्ध में कहते हैं कि—**यतोऽभ्युदय निःश्रेयससिद्धि सःधर्मः**। धर्म, वह है, जिससे हमारा अभ्युदय भी हो और हमारा निःश्रेयस् भी सिद्ध

हो। अभ्युदय अर्थात् लोक और निःश्रेयस् अर्थात् परलोक, दोनों चकाचक रहें, वह धर्म है। लोक और परलोक दोनों भगवत्भजन से ही सिद्ध हो सकते हैं—

सुमिरत सुखद सुलभ सब काहू। लोक लाहु परलोक निबाहू।।
राम नाम कलि अभिमत दाता। हित परलोक लोक पितु माता।।

अर्थात् भगवत्भजन, परलोक में तो हितैषी हैं ही और लोक में तो माता-पिता भी हैं। गोस्वामी जी ने कहा—

भूखे को माय बाप.....
हाथ पाँय बागुरे को, आँधरे को आँख है।

पंगुल को हाथ और पैर है, अन्धों की आँख है, सब कुछ है। इसलिये, कुमार लक्ष्मण इतने भगवत्भजनमय हो गए हैं कि उसी धर्म के आधार पर उन्होंने सारे संसार को धारण किया—'ब्रह्माण्ड भुवन विराज जाके', किसी ने पूछा कि क्या लक्ष्मण जी, एक हजार सिरों से पृथ्वी को धारण करते हैं। गोस्वामी जी ने कहा—नहीं, नौ सौ निन्यानबे (९९९) सिर तो भगवत्गुणगान में हिलाते हैं और केवल एक सिर पर पृथ्वी को धारण करते हैं।

ब्रह्माण्ड भुवन बिराज जाके एक सिर चिन रजकनी।

जिनके एक सिर की धूल की कणिका की भाँति, सारे के सारे ब्रह्माण्ड विराजमान रहते हैं, वे लक्ष्मण धर्म हैं।

यह ध्यान रखियेगा कि कितने प्रकार से लक्ष्मण जी ने सेवा की है। शेष माने क्या होता है? संस्कृत में शेष के दो अर्थ कहे जाते हैं—

१. जो बच जाए, उसे शेष कहते हैं।

२. जो काटने पर भी न कटे, उसे शेष कहते हैं।

मान लो कि गणित में, (सत्रह (१७) का अङ्क है और यह काटने पर भी नहीं कटेगा। चार का भाग दोगे तो चार बार जाएगा, पर एक शेष बच जाएगा। इसीलिए जब जब परशुराम जी महाराज फरसा दिखाते हैं तो लक्ष्मण जी को हँसी आती है। परशुराम जी कहते हैं कि तुम हँसते क्यों हो?

लक्ष्मण जी कहते हैं कि अब तक तो लोग कहते थे कि आप बहुत बड़े विद्वान हैं

पर मुझे लगता है कि आपको प्रायमरी कक्षा का भी ज्ञान नहीं है क्योंकि कक्षा एक का विद्यार्थी भी यह जानता है कि जो गणित में नहीं कट सकता, उसको काट पाना असम्भव है। जब शेष को गणित नहीं काट सकी तो आपका फ़रसा क्या काट सकेगा? आपको इतना सामान्य ज्ञान भी नहीं है तो मैं क्या करूँ? इसीलिये हमें बार-बार हँसी आती है।

परशुराम जी ने कहा कि एक बात बताओ कि मेरा फरसा तुम्हें काट क्यों नहीं पा रहा है?

लक्ष्मण जी ने कहा कि मुझे आपका फरसा इसलिये नहीं काट पा रहा है क्योंकि मैं 'धर्म' हूँ। इसीलिये हम लोग सनातन धर्म की जय बोलते हैं। सनातन, धर्म का विशेषण है। सनातन का अर्थ होता है नित्य और नित्य का परिष्कार **'अन्नमभट्ट'** ने इस प्रकार किया है—**'ध्वंसभिन्नत्वेसति ध्वंसात्तप्रतियोगित्वम् नित्यत्वम्'** अर्थात् जो ध्वंस से भिन्न होकर ध्वंस का अप्रतियोगी हो।' तो जब मैं 'सनातन' हूँ तो आप सनातन को क्या फरसे से काट पाएँगे?

फिर परशुराम जी ने कहा कि लक्ष्मण, एक बात और बता दो कि जब मैं तुम्हें मारने आता हूँ तो ज्यों ज्यों मैं तुम्हें मारने के लिए आता हूँ, त्यों-त्यों कोई मुझे पीछे ढकेल देता है। ऐसा लगता है कि कोई अज्ञात शक्ति मुझे कोसों दूर ढकेल देती है, ऐसा क्यों होता है? इसका कारण बताओ।

लक्ष्मण जी ने कहा कि मैं धर्म हूँ और आपके मन में क्रोध है, और जब जीवन में क्रोध आता है, तब व्यक्ति धर्म से दूर हो जाता है।

खोजत कतहुँ मिलइ नहिं धूरी। करहिं क्रोध जिमि धरमहिं दूरी।।

यह है मानस! एक बार मुझसे किसी ने कहा कि जगद्गुरु जी, आप बड़े सुन्दर-सुन्दर भाव कहते हैं।

मैंने कहा कि मैंने कोदो बेचकर थोड़े ही पढ़ा है। एक व्यक्ति ने कहा कि गुरुजी तो बड़े गर्व से बोलते हैं।

मैंने कहा गर्व से नहीं बोलते—**'कहहुँ सुभाउ न कछु अभिमानू'**, लक्ष्मण जी गर्व से बोलते थे। जिसको कुछ आएगा ही नहीं, वह तो डरते-डरते बोलेगा ही। उस सुनार को कभी डर नहीं लगता, जिसका सोना चौबीस (२४) कैरेट का होता है। इसी

प्रकार मुझे डर नहीं लगता क्योंकि मेरा सोना चौबीस कैरेट का है। हमारे पास कौन सा चौबीस कैरेट का सोना है? मेरे राघव ही चौबीस कैरेट का सोना हैं और चौबीस अवतार ही उनके चौबीस कैरेट हैं। वे बहुत सुन्दर हैं—

रानी कौसल्या के ललनवा हे, नजरियो न लागे
रानी कौसल्या के खिलौना हे, नजरियो न लागे।
कुटिल अलक मुख लटके होऽऽभँवर जैसन भटके
मुख सोहे दुइ दुइ ठी दँतुलिया, नजरियो न लागे।
तन सोहे पियरी झिगुलिया बिजुरिया जैसन चमके
गुरुजी के सोने के खिलौना हे नजरियो न लागे।
राघव मेरो छगन मगनवा हे, नजरियो न लागे।

मेरे राघव, इतने सुन्दर, अप्रतिम सौन्दर्य सम्पन्न हैं। मैं यह, डरकर या अहङ्कार से नहीं कह रहा हूँ, विनम्रता और विश्वास के साथ कह रहा हूँ कि अब मैं धर्म के सम्बन्ध में जो कहूँगा, वही प्रमाण होगा।

परशुराम जी ने फिर लक्ष्मण जी से कहा कि एक बात बताओ कि मेरा फरसा धीरे-धीरे कुण्ठित क्यों होता जा रहा है? जरा, इसका कारण बताओ।

लक्ष्मण जी ने कहा—सरकार, बुरा मत मानियेगा, इसका उत्तर बहुत कटु है।

परशुराम जी ने कहा—बता दो!, अरे बुरा मानकर मैं तुम्हारा क्या बिगाड़ लूँगा।

लक्ष्मण जी ने कहा कि आपका यह फरसा, जो दान का है और दान का स्वभाव होता है कि दान का बखान, जब व्यक्ति अपने मुख से करता है तो दान समाप्त हो जाता है। तो सरकार, आपने अपने दिये दान का इतना अधिक बखान कर डाला कि धीरे-धीरे दान का प्रभाव समाप्त हो गया और अब फरसे पर भी उसका प्रभाव पड़ गया और यह फरसा भी समाप्त हो गया—

दान परसु बुधि सक्ति प्रचण्डा। बर बिज्ञान कठिन कोदण्डा।।

रामायण के इतिहास के फलक पर देखिये, परशुराम जी ने रामचन्द्र जी को अपना धनुर्बाण सौंप दिया। केवल मानसकार ने तो कहा—**'देखि राम बल निज धनु दीन्हा'**, पर **'कवितावली रामायण'** में कहा—नहीं।

लायक हे भृगुनायक से धनुसायक सौंपि सुभाय सिधाए।

अर्थात् परशुराम जी ने, रामचन्द्र जी को धनुष बाण तो दिया पर फरसा नहीं दिया। इसका भाव यह है कि वह फरसा देते कैसे, अपने पुण्य का बखान करते-करते तो फरसा मञ्जुल मञ्जुल हो गया अर्थात् समाप्त ही हो गया। मित्रों, फरसा रह ही नहीं गया। अन्तिम तक आते-आते तो फरसा उनके हाथ से उड़कर समाप्त हो गया, क्योंकि—

छीजहिं निसिचर दिन अरु राती। निज मुख कहत सुकृत जेहिं भाँती।।

इसलिये, गोस्वामी जी ने जब लक्ष्मण जी का परिचय लिखा तो बड़ी मनोहर पंक्तियों का प्रयोग किया—

जयति गाधेय-गौतम-जनक-सुख जनक,
विश्वकण्टक कुटिल कोटिहन्ता।
वचन-चच चातुरी परशुधर गरबहर,
सर्वदा रामभद्रानुगन्ता।।

विनयपत्रिका पद सं० ३८/२

कुमार लक्ष्मण जी ने, गाधेय अर्थात् विश्वामित्र जी, गौतम जी और जनक जी, इन तीनों को सुख दिया। विश्व के कोटि-कोटि कण्टकों को मारा और सबसे बढ़िया बात कही कि '**बचन चच चातुरी परशुधर गरबहर सर्वदा रामभद्रानुगन्ता।**'

ध्यान रखिये, कि हमारे शास्त्रों ने 'धर्म' को दण्ड कहा है। वेद कहते हैं कि जब राजा सिंहासन पर बैठता है तो बोलता है कि -'**अदण्ड्योऽस्मि, अदण्ड्योऽस्मि, अदण्ड्योऽस्मि।**' 'अब मुझको कोई दण्ड नहीं दे सकता।'

तब धर्म कहता है कि नहीं-नहीं—'**धर्मदण्ड्योऽसि, धर्मदण्ड्योऽसि, धर्मदण्ड्योऽसि**' अर्थात् तुम्हें धर्म दण्ड दे सकता है, धर्म दण्ड दे सकता है, धर्म दण्ड दे सकता है।

ध्यान रखिये, आज हम एक बात पर बहुत भ्रान्त हो गए हैं कि यमराज का स्वरूप हम नहीं समझ पाते। वास्तव में वही यमराज और वही धर्मराज हैं। उनके दोनों नाम हैं। जब सात्विकों को सुख देते हैं तो धर्मराज और जब दुष्टों को दण्ड देते हैं तो वही यमराज हैं। इसी प्रकार लक्ष्मण जी भी करते हैं। वे मेघनाद के लिए 'यमराज' बन जाते हैं और कुमार अङ्गद के लिए 'धर्मराज' बन जाते हैं। आज लक्ष्मण जी के सम्मुख दोनों आ रहे

हैं—बालि का बेटा उनके सामने है और रावण का भी बेटा उनके सामने है। बालि के बेटे के लिए तो वे धर्मराज हैं—

चरन नाइ सिरु बिनती कीन्हीं। लछिमन अभय बाँह तेहि दीन्हीं।।

और, रावण के बेटे मेघनाद के लिए कहते हैं—

जौं तेहि आज बधे बिनु आवौं। तौ रघुपति सेवक न कहावौं।।

कभी-कभी, मानस की वीथियाँ इतनी करुण लगने लगती हैं कि लगता है कि हृदय फट जाएगा। 'सुन्दरकाण्ड' के इकतीसवें दोहे की तीसरी पंक्ति को ध्यान से पढ़िये, जहाँ सीताजी के सन्देश के अनुवाद का हनुमान जी महाराज उपक्रम कर रहे हैं—

नाथ जुगल लोचन भरिबारी। बचन कहे कछु जनक कुमारी।।

हनुमान जी बड़ा मधुर सम्बोधन दे रहे हैं। सामान्य अर्थ तो लोग यही करते हैं कि, हे नाथ, दोनों आँखों में जल भर कर जनककुमारी ने कुछ वचन कहे। आप विचार कीजिये कि तुलसीदास जी ऐसा क्यों लिखेंगे। यह तो सभी जानते हैं कि जब आँसू आते हैं तो दोनों आँखों से आते हैं फिर जुगल लोचन कहने की क्या आवश्यकता थी? निरर्थक जुगल शब्द का प्रयोग किया तो पदाधिक्य दोष आ जाएगा। अतः हनुमान जी महाराज ने यहाँ 'युगल' शब्द का प्रयोग इस प्रकार किया कि—"हे नाथ युगल! हे, मेरे दोनों स्वामी, राम और लक्ष्मण! 'लोचन भरि बारी', आँखों में आँसू भरकर, जनककुमारी ने कुछ वचन कहे।" अब क्या वचन कहे, इन्हें जरा ध्यान से सुनिये—

अनुज समेत गहेहु प्रभु चरना। दीनबन्धु प्रनतारति हरना।।

अर्थ बिल्कुल स्पष्ट है कि लक्ष्मण जी के सहित प्रभु के चरणों को पकड़ लेना।

अब यहाँ भी प्रश्न बड़ा मधुर है कि सीताजी यहाँ मर्यादा का उल्लङ्घन कर रही हैं। लक्ष्मण जी, सीताजी के देवर हैं औद देवर तो पुत्र के समान होता है और माता कभी पुत्र को प्रणाम नहीं करती। दण्डी हो, चाहे त्रिदण्डी हो, शतचण्डी हो या पाखण्डी हो, चाहे कोई भी हो, उसे माता को प्रणाम करना ही होता है। इसका अर्थ है माता सबको प्रणम्य है, सबके लिए प्रणम्य है। तो फिर सीताजी लक्ष्मण जी को क्यों प्रणाम कर रही हैं? क्या उन्होंने मर्यादा का उल्लङ्घन किया और यदि ऐसा नहीं है तो क्या तुलसीदास जी महाराज

को धर्मशास्त्र का इतना भी ज्ञान नहीं है? इसका उत्तर बहुत बढ़िया है। वास्तव में सीताजी ने कोई उल्लङ्घन नहीं किया है। वे बहुत भावुक हैं और बड़ी सुन्दर बात कह रही हैं। पहले ही देवर (लक्ष्मण जी) और भौजाई (सीताजी) ने, प्रभु के चरणों की सेवा बाँट ली थी। दाहिने चरण की सेवा, लखनलाल जी को तथा बाएँ चरण की सेवा सीताजी को मिली है। अब जबकि सीताजी का हरण हो चुका है, तो सीताजी के मन में क्लेश हो रहा है कि अब मेरी अनुपस्थिति में, राघवजी के दाहिने चरण की सेवा तो हो रही होगी, पर उनके बाएँ चरण की सेवा कौन करता होगा? इसलिए सीताजी ने कहा कि हे हनुमान जी! आज से मैं आपको अपना प्रतिनिधि बना रही हूँ कि जब रामजी के चरणों की सेवा, लखनलाल जी करने जाएँ तो मेरी ओर से बाएँ चरण की सेवा तुम कर लेना।

अनुज समेत गहेहु प्रभु चरना। दीनबन्धु प्रनतारति हरना।।

लक्ष्मण जी का 'अनुज' रूढ़ नाम हो गया है। सीताजी उनको अनुज भी कहती हैं और दुलार में अन्नू भी कहती हैं तो सीताजी हनुमान जी से कहती हैं कि हे हनुमान जी! जब लक्ष्मण दाहिने चरण की सेवा करें तो तुम, अनुज अर्थात् लक्ष्मण जी के साथ, मेरी ओर से बाएँ चरण की सेवा कर लिया करना। लक्ष्मण जी इतने जागरुक हैं कि उनके जागने का अर्थ केवल इतना ही नहीं है कि वे रात दिन आँख खोलकर जागते हैं। वे प्रत्येक क्षण, प्रत्येक व्यवहार में जागते हैं। जब इतना सुना तो लक्ष्मण जी जान गए कि माताजी को कष्ट हो रहा है और उन्होंने बाएँ चरण की सेवा हनुमानजी महाराज को दे दी है, तब लखनलाल जी ने अङ्गद से कहा—अङ्गद! जब तक भाभी माँ थीं, तब तक हम दोनों मिलकर प्रभु के चरणों की सेवा करते थे किन्तु अब, जबकि वह नहीं हैं और उन्होंने प्रभु के वामचरण की सेवा हनुमानजी को दे दी है तो मैं अब दाहिने चरण की सेवा अङ्गद तुमको दे रहा हूँ। इसलिये लिखा गया—

बड़भागी अङ्गद हनुमाना। चरन कमल चाँपत विधि नाना।।
प्रभु पाछे लछिमन बीरासन। कटि निषङ्ग कर बान सरासन।।

कुमार लक्ष्मण का भाव पक्ष देखिये कि धर्म कितना मधुर होता है। **'कटि निषङ्ग कर बान सरासन'** जब तक माताजी रहीं तब तक मैं भी सेवा करता रहा, अब माताजी नहीं हैं, तो मुझे भी चरण सेवा नहीं करनी। जब माताजी ने हनुमान जी को प्रतिनिधित्व

दिया, वाम चरण की सेवा का तो मैं दक्षिण चरण की सेवा का प्रतिनिधित्व, अङ्गद को दे रहा हूँ। इसीलिये कहा–'बड़भागी अङ्गद हनुमाना' और लक्ष्मण जी प्रभु के पीछे जाकर बैठ जाते हैं। वास्तव में, कभी-कभी धर्म निष्ठुर हो जाता है और इतना निष्ठुर हो जाता है कि धर्म के सामने भगवान को भी झुक जाना पड़ता है। संसार में किसी ने भगवान को नहीं झुकाया, यदि भगवान को भी कोई झुका सकता है, तो वह है धर्म। भगवान को तो धर्म की रक्षा करने के लिए आना पड़ता है–

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।

'धर्म संस्थापना चासौ अर्थ:' या तो 'धर्म संस्थापनार्थ: तस्मै' धर्मसंस्थापनत्वावच्छिन्न प्रकारतावच्छेदकार्थत्वावच्छिन्नार्थत्ववशिष्ट प्रयोजन के लिये अर्थात् धर्मसंस्थापना रूप, जैसे घटो घट: में अभेदान्वय होता है–

शाब्दबोधे चैक पदार्थेऽपरपदार्थ: संसर्ग मर्यादया भासते।।

शाब्दबोध में जब समानान्वय होता है तब एक पदार्थ में अपर पदार्थ में संसर्ग मर्यादा से भासित होता है, जैसे-**नीलो घट: में नीलत्वावच्छिन्न नील प्रकार घटत्वावच्छिन्न घट विशेषक शब्द बोध होता है, उसी प्रकार धर्मसंस्थापनत्वाच्छिन्न धर्मसंस्थापनाप्रकारक अर्थत्वावच्छिन्न अर्थविशेषक शाब्दबोध यहाँ हो रहा है। इसलिये धर्म-संस्थापन भगवान का मुख्य प्रयोजन है।**

देखिये, श्रीरामजी को कोई चुप नहीं कर सकता पर लक्ष्मण जी ने चुप किया और अन्ततोगत्वा अपनी बात मनवाई। इसमें आप यह कभी नहीं समझिये कि लक्ष्मणजी ने अनुशासनहीनता की। लक्ष्मण जी ने धर्म की मर्यादा का पालन किया। रामजी ने कहा कि गुरु, पिता, माता की सेवा करो। लक्ष्मण जी ने कहा कि सेवा वो करे, जो गुरु, पिता, माता को जानता हो, **'गुरु, पितु मातु न जानहुँ काहू'**, मैं किसी को नहीं जानता।

रामजी ने कहा–किसे जानते हो?

लक्ष्मण जी ने कहा–मैं तो शास्त्र के अनुसार आपको जानता हूँ क्योंकि शास्त्र कहता है कि मैं जीवों का आचार्य हूँ। लक्ष्मण जी केवल मनुष्यों के आचार्य नहीं हैं, लक्ष्मण केवल पशुओं के आचार्य नहीं हैं, लक्ष्मण केवल पक्षियों के आचार्य नहीं हैं, लक्ष्मण तो जीवत्वावच्छिन्न के आचार्य हैं। संसार में जितने जीव हैं, जिसने प्राण धारण

किया है, सबके आचार्य लक्ष्मण हैं। अतः लक्ष्मण जी को सबका धर्म अर्थात् सामान्य धर्म का पालन करना पड़ेगा और जीव मात्र का सामान्य धर्म है—केवल भगवान का भजन करना। अतः लक्ष्मण जी मुस्कुराए कि वाह, धन्य हो धर्मधुरीण राघवेन्द्र! धर्म का उपदेश तो दूसरों को देना चाहिए, पर आज आप 'धर्म' को ही धर्म का उपदेश दे रहे हैं। उपदेश विजातीय को दिया जाता है। जैसे कोई कहे कि हम जल से ही, जल को नहलवायें तो क्या माना जायेगा? या तो उसका अज्ञान था उसकी मूर्खता। जल तो स्वयं जल है। मैं तो स्वयं धर्म हूँ तो आप धर्म को, धर्म का क्या उपदेश देंगे? अतः लक्ष्मण जी ने कहा—

धरम नीति उपदेसिय ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही।।

मुझे नहीं चाहिये, क्योंकि—

मन क्रम बचन चरन रति होई। कृपासिन्धु परिहरिय कि सोई।।

विषय गहन है अतः सँभलकर ध्यानपूर्वक समझना होगा। रामजी की सेवा कौन कर सकता है, क्योंकि **'रामो विग्रहवान् धर्मः'**, वाल्मीकि जी के अनुसार-राम विग्रहवान धर्म हैं और उस धर्म के विग्रह हैं लक्ष्मण। तदवच्छिन्न रामचन्द्र जी हैं वो। लक्ष्मण जी की सेवा भी बड़ी विचित्र है। एक दाक्षिणात्याचार्य यामुनाचार्य ने लक्ष्मणजी की बड़ी सुन्दर झाँकी का वर्णन किया, सेवा का वर्णन किया तो काँप गए कि इतनी बड़ी रामजी की सेवा कौन करेगा? 'आलमन्दार' में उनसे पूछा गया कि लक्ष्मण जी को शेष क्यों कहते हैं? अब दूसरा अर्थ देखिये—

संस्कृत में 'शेष' का दूसरा अर्थ होता है सेवक' 'शेषी का अर्थ होता है सेव्य' इसलिए बड़ा सुन्दर आनन्द है, कैकेई ने जब रामजी के वनवास के सम्बन्ध में दशरथजी से वरदान माँगा तो वहाँ यह प्रश्न उठता है कि कैकेई जी ने तो रामजी के लिए चौदह वर्ष का वनवास माँगा था, फिर ये सीताजी और लक्ष्मण जी कैसे उनके साथ वनवास के लिए चल दिये? और इस अनुचित कार्य को कैकेई ने रोका क्यों नहीं? वो तो कह रहीं थीं कि—

तापस वेष विशेष उदासी। चौदह बरिस राम बनबासी।।

परन्तु यदि गहनता से विचार करें, तो कैकेई ने जो वरदान माँगा था, वही हुआ। कैकेई जी ने राम जी का तापस वेष माँगा और एक विशेषण दिया विशेष। यह विशे

क्या था? सरस्वती ने कैकेई के मुख से कहलवा दिया कि कैकेई तुम विशेष और उदासी बोलो 'विशेष' में 'वि' से बना विशिष्ट और शेष माने सेवक तो अब बहुब्रीहि समास करने पर, विशिष्ट सेवक हो जिनका ऐसे राम को वनवास ही जिनके साथ एक विशिष्ट सेवक ही जा सकता है, और 'उदासी' इस शब्द में 'उस' का अर्थ है 'उत्कृष्ट' 'उत्कृष्टा दासी यस्य' एक उत्कृष्ट दासी भी रामजी के साथ रह सकती है–

अब पण्डित लोग कहेंगे, यह कैसे हो गया? अरे, सब हो जाता है–

निपातानां वाचकत्वं द्योतकत्वञ्च।

यह सब शास्त्रार्थ है। इसलिये मैंने बार-बार निवेदन किया है कि रामचरितमानस करने के लिए कृपा करके पहले गुरुजनों के चरणों में रहो। रामचरितमानस से सब कुछ मिल सकता है। यदि रामचरितमानस से काम, धाम या दाम लेना है तो तुम मनमुखी कथा करो, पर यदि रामचरितमानस से 'राम' लेना हो तो गुरुजनों के चरणों में बैठकर इसे पढ़ना ही पड़ेगा।

तापस वेष विशेष उदासी। चौदह बरिस राम बनबासी।।

इस प्रकार कैकेई स्वयं कह चुकी हैं कि रामजी को एक विशिष्ट सेवक (लक्ष्मण) और उत्कृष्ट दासी (सीताजी) चाहिये। 'उ' निपात उत्कृष्टत्व का द्योतक है और वाचक भी है। स्वावच्छिन्न पदीयशक्ति अभिव्यञ्जकत्व भी उसमें है और स्वावच्छिन्न पदीयशक्ति अभिधेय वाचकत्व भी है।

अब यह प्रश्न है कि लक्ष्मण जी कैसे विशिष्ट सेवक हैं? अब उनकी विशिष्टता की चर्चा करते हैं। भगवान का इतना विशिष्ट सेवक कोई हो ही नहीं सकता। जब रामजी, दक्षिण में आए, तो यामुनाचार्य जी कहते हैं कि मैंने देखा–

निवासशय्यासनपादुकांशकोपधान　वर्षातपवारणादिभिः।
शरीरभेदैस्तव शेषताङ्गतो यथोचितं शेष इतीर्यते जनैः।।

कहते हैं कि जब रामजी को निवास की आवश्यकता पड़ती है तो लक्ष्मण जी, राम जी की कुटी बन जाते हैं, जब शय्या की आवश्यकता पड़ती है तो लक्ष्मण जी, स्वयं रामजी की कुश की चटाई का रूप धारण कर लेते हैं। जब आसन की आवश्यकता पड़ती है तो लक्ष्मण जी स्वयं कुश का आसन बन जाते हैं, जब वल्कल की आवश्यकता पड़ती है तो लक्ष्मण जी स्वयं राम जी के वल्कल बन जाते हैं, जब पादुका जी

कीआवश्यकता पड़ती है तो लक्ष्मण जी पादुका का रूप धारण कर लेते हैं, जब तकिया की आवश्यकता पड़ती है तो लक्ष्मण जी तकिया बन जाते हैं, जब छाते की आवश्यकता पड़ती है तो लक्ष्मण जी 'फण' लगाकर, उनके ऊपर छाया कर देते हैं। प्रभु को जैसी आवश्यकता पड़ती है, लक्ष्मण जी, वही रूप धारण करके भगवान की सेवा करते हैं। आप अपने हृदय से पूछिये कि क्या आपने ऐसा चरित्र कभी सुना है?

लोग कहते हैं गुरु जी, आप क्या-क्या सोचते रहते हैं, तो मैंने कहा—

और कहें दुसरन की सीखी मैं कहता आँखिन की देखी।

हमारे लक्ष्मण भैय्या, प्रभु की सेवा और आवश्यकता के अनुरूप अपना स्वरूप बना लेते हैं। लक्ष्मण भैय्या ही रामशय्या के पत्थर बने 'भुजगशयनम्', और प्रभु को कौन सुला सकता है। जब मेघनाद ने भगवान राम को नागपाश में बाँधा, तब भगवान राम मुस्कुरा रहे थे और मेघनाद को लग रहा था कि मैंने भगवान राम को नागपाश में बाँध लिया—

रणसोभा लगि प्रभुहि बँधायो। नागपास देवन भय पायो।।

प्रभु मन्द मन्द मुस्कुरा रहे थे। नारद जी ने दूर से देखा। नारद जी से भगवान ने कहा—हो गई अब तुम्हारे मन की?

नारद जी ने पूछा-क्यों?

रामजी ने कहा कि आपने कहा था, न कि—

'करम सुभासुभ तुम्हहिं न बाधा'

आपको कोई बन्धन नहीं करता, तो लो, हम नागपाश में बँध गए। अब तो प्रसन्न हो गए?

नारद जी ने कहा कि अभी मन थोड़ा प्रसन्न हुआ है, पूरा प्रसन्न नहीं हुआ है।

तब भगवान ने कहा कि अब क्या बाकी रह गया?

नारद ने कहा—इतना कठोर बन्धन दूसरे किसी को होता, तो हार्ट अटैक हो जाता पर हे प्रभो! चारों ओर से नाग आपके लिपटे हैं फिर भी आप मुस्कुरा रहे हैं, इसका रहस्य क्या है? भगवान ने कहा—इसका रहस्य यह है नारद कि ये नाग, ये सर्प, तुम्हें लग रहे हैं पर मुझे नहीं लग रहे हैं। मुझे तो ऐसा लग रहा है, जैसे मेरे लक्ष्मण भैया ही

सर्प का रूप धारण करके मेरा आलिङ्गन कर रहे हैं। इससे मुझे तो लक्ष्मण के आलिङ्गन का अनुभव हो रहा है।

कुमार लक्ष्मण, श्रीरामजी को चुप तो कर रहे हैं, परन्तु साथ-साथ सेवा के धर्म का इतना उच्चतम् आदर्श भी प्रस्तुत कर रहे हैं। रामजी ने स्वीकार कर लिया कि तुम्हें मेरे साथ चलना है। अरे, लोगों को सुनाने के लिए मैं कह रहा था, यदि तुम नहीं रहोगे तो मैं रहूँगा कैसे, जहाँ धर्म होगा, वहीं तो मोक्ष रहेगा। जब राम जी मोक्ष हैं तो मोक्ष के साथ धर्म तो रहेगा ही।

''धर्म तें बिरति जोग ते ज्ञाना। ज्ञान मोक्षप्रद बेद बखाना।।''

अब मैं, बहुत गोपनीय चर्चा कर रहा हूँ। जब विभीषण को रामचन्द्र जी ने धर्म का उपदेश दिया और धर्म की पूरी व्याख्या बता डाली और वहीं एक बात कही। विभीषण ने कहा, कि 'सरकार! आपके पास तो रथ नहीं है, आपके पास तनुत्राण और पदत्राण भी नहीं हैं'।

जनक जी ने जब थोड़ी ही बात कही थी तो लक्ष्मण जी को क्रोध आ गया था—'वीर विहीन मही मैं जानी' किन्तु आज विभीषण इतना कह रहे हैं पर लक्ष्मण जी चुप हैं। दोनों भाइयों में परस्पर इशारा हो गया कि चुप रहो। जब विभीषण ने कहा—आपके पास रथ नहीं है तो भगवान राम ने कहा—**'जेहिं जय होई सुस्यन्दन आना'** जिससे विजय होता है, वह रथ दूसरा है अथवा जिससे विजय होती है वह रथ मैं लाया हूँ और वह धर्म रूप रथ, ये लक्ष्मण ही हैं, और कोई नहीं है।

सखा धरममय अस रथ जाके। जीत न कहुँ न कतहुँ रिपु ताके।।

धर्ममय ऐसा रथ जिसके पास होगा, उसके पास जीतने के लिए और कोई शत्रु अवशेष नहीं रहेगा।

इधर सुग्रीव से भगवान राम कहते हैं—

जग महुँ सखा निसाचर जेते। लछिमन हनहिं निमिष महुँ तेते।।

चक्रवर्ती जी, लक्ष्मण रूप धर्म को, राम जी के साथ देखकर थोड़ा विश्वस्त हो गए। पहले चक्रवर्ती जी सोचते थे कि रामजी अकेले पड़ जाएँगे। परन्तु जब—

'लखन कहे कछु वचन कठोरा।'

तब चक्रवर्ती जी समझ गये कि जब तक लक्ष्मण जी साथ रहेंगे, तब तक रामजी का बाल भी बाँका नहीं हो सकता, क्योंकि धर्म जिसके साथ रहता है, वह निरन्तर विजयी होता है **'यतो धर्मस्ततो जय:'** जहाँ धर्म होगा, वहाँ विजय होकर रहेगी। तो जब लक्ष्मण जी रामजी के साथ रहेंगे तो रामजी की विजय निश्चित है। रामजी के लिए एक बहुत सुन्दर वाक्य आया है विनयपत्रिका में। लोगों ने पूछा कि यह जो समुद्र पर सेतु बाँधा गया है, वह किसके लिये बाँधा गया है, तो रामजी ने कहा कि यह सेतु तो वानरों के लिए बाँधा गया है मेरे लिये नहीं।

सेतुबन्ध अति भीर भई कपि नभ पन्थ उड़ाहिं।
अपर जलचरन्हि ऊपर चढ़ि चढ़ि पारहिं जाहिं।।

रामजी से पूछा गया कि, फिर आपका सेतु कौन सा है? रामजी ने कहा—मैं नहीं बताऊँगा। यदि पूछा है तो हुलसी हर्षवर्धन तुलसीदास जी महाराज से पूछो कि रामजी का सेतु कौन है? जब गोस्वामी जी से पूछा गया, तो उन्होंने कहा कि अभी नहीं बताऊँगा, थोड़ी प्रतीक्षा करो।

पूछा कि कब बताइयेगा?

तब गोस्वामी जी ने कहा कि रामचरितमानस में मैंने लिखे दिया है, सम्वत् सोलह सौ इकतीस में। गोस्वामी जी ने कहा कि रामचरितमानस की रचना के उञ्चास वर्ष (४९) बाद बताऊँगा। और उञ्चास वर्ष बाद फिर बता दिया इकतीस में उञ्चास जोड़ने पर हुआ अस्सी में। तो सम्वत् सोलह सौ अस्सी (१६८०) में अपने परमपद से एक दिन पहले बताऊँगा। परमपद प्राप्त करने से एक दिन पूर्व ही 'विनयपत्रिका' पूरी की थी। इस प्रकार 'विनयपत्रिका' के अड़तीसवें पद में गोस्वामी जी ने बताया कि वानरों के लिए सेतु तो नल नील ने बनाया था पर संग्राम-सागर को पार करने के लिये, राम जी के लिए लक्ष्मण जी ने, अपनी भुजाओं का सेतु बनाया था। अब आप वह पंक्ति देखिये—

जयति संग्राम-सागर-भयङ्कर-तरन,
रामहित करण बरबाहु सेतु।
उर्मिला-रमण कल्याण-मङ्गल-भवन,
दास तुलसी दोष-दमन-हेतु।।

कितना सुन्दर वर्णन है। भयङ्कर संग्राम सागर को पार करने के लिये, जिसमें रावण की प्रतिज्ञा थी, कि हे अङ्गद! तुझ को ज्ञान नहीं है कि राम जी ने एक सागर को बाँधा होगा, और उसको बाँधनें में कोई बड़ी बात नहीं है। अरे,

सठ साखा मृग जोरि सहाई।
बाँधेहु सिन्धु यहइ प्रभुताई।।

छोटे-छोटे वानरियों को जोड़कर, समुद्र को बाँधा, उसको तो हमारे यहाँ—

नाघहिं खग अनेक बारीसा।

उसको तो अनेक पक्षी लाँघ जाते हैं। राघवेन्द्र से कह देना-

मम भुज सागर बल जल पूरा। बूड़े जहँ बहु सुर नर सूरा।।
बीस पयोधि अगाध अपारा। को अस बीर जो पाइहि पारा।।

मेरे बीस-बीस समुद्र हैं और मेरी एक-एक भुजा महासागर है। उसको यदि रामचन्द्र जी ढहा दें, तो मैं उन्हें वीर मानूँगा।

अङ्गद मुस्कुराए और उन्होंने कहा-घबराओ नहीं बेटे! उसके भी सेतु की अब रचना हो गई है। लक्ष्मण जी की भुजा ही रामजी का सेतु है, जिस पर चढ़कर रामजी, तेरे सागर को सोख लेंगे।

जयति संग्राम-सागर-भयङ्कर-तरन,
रामहित करण बर बाहु सेतु।

यदि लक्ष्मण जी सेतु हैं, सागर को पार करने के लिये, तो सेतु तो सागर को सोखता नहीं है, सेतु केवल अपने पार करने वाले को सागर में डूबने भर नहीं देता, इसलिये लक्ष्मण जी ने रावण के सिरों पर बाण मारा, कभी रावण की भुजाओं में बाण नहीं मारा क्योंकि वे जानते थे कि इस भुज-सागर को तो रामजी सोखेंगे। ये रामजी की ही भूमिका है। मेरी तो यहाँ केवल 'सेतु' की भूमिका है, सोखने की नहीं। इसलिये इतने सुन्दर सेतु को राघवेन्द्र जी ने पाया। अब प्रश्न किया कि यह सेतु कौन सा है, रामजी किस सेतु पर आते हैं? तो इसके उत्तर में कहते हैं कि वानरों के लिये भगवान ने नाम-सेतु बनाया—

नाथ नाम तव सेतु, नर चढ़ि भव सागर तरहिं।

वानरों के लिए भगवान राम ने नाम सेतु बनाया और सेतुबन्ध पर भगवान राम ने

शङ्कर भगवान की स्थापना की। 'सेतुबन्ध' पर स्थापना करने का भगवान राम का क्या अभिप्राय रहा होगा? शङ्कर भगवान हैं कौन? तो कहते हैं–

भवानी शङ्करौ वन्दे श्रद्धा विश्वासरूपिणौ।

भगवान शङ्कर विश्वास हैं तो भगवान राम ने सेतुबन्ध की स्थान करके, यह सङ्केत किया कि जैसे मैं सेतुबन्ध की स्थापना करके रावण पर विजय पाऊँगा, उसी प्रकार यदि कोई भी व्यक्ति, इस भव-सागर में राम-नाम का सेतु बनाकर, उस पर विश्वास कर लेगा, तो निश्चित संसार सागर से पार हो जाएगा। सेतु तब तक स्थाई नहीं रहता, जब तक रामेश्वर नहीं होते और यह रामेश्वर हैं राम नाम, राम-नाम तो राम का भी ईश्वर है **'रामस्य ईश्वरः'** 'प्रीति परस्पर प्रभु अनुगामी। नामी सेवक है, और नाम स्वामी है, यह मेरा नवीनतम भाव है। इस प्रकार भगवान राम ने वानरों के लिये तो नाम का सेतु बनाया परन्तु अपने लिये उन्होंने लक्ष्मण को सेतु इसलिए माना क्योंकि लक्ष्मण जी धर्म हैं और रामजी का सेतु तो धर्म ही हो सकता है। इसका प्रमाण है, श्रीरामचरितमानस के बालकाण्ड के दोहा क्रमांङ्क दो सौ अट्ठारह की आठवीं चौपाई–

धरम सेतुपालक तुम्ह ताता। प्रेम बिबस सेवक सुखदाता।।

आप कहेंगे कि यहाँ 'धर्मसेतु' के पालक का वर्णन है। बिल्कुल ठीक है। 'धर्मसेतु' शब्द का ठीक प्रयोग देखने के लिए रामचरितमानस के 'अयोध्याकाण्ड' का दोहा क्रमाङ्क दो सौ अड़तालीस देखिये। वसिष्ठ जी कहते हैं–

धरम सेतु करुनाजतन कस न कहहु अस राम।
लोग दुखित दिन दुइ दरस देखि लहहिं विश्राम।।

यहाँ पर धरमसेतु करुनायतन और दूसरा पाठ मिलता है-' धरम सेतु रघुकुलतिलक' पर धरमसेतु करुनाजतन यह पाठ अधिक अच्छा है। धर्मसेतु-**'धर्मः सेतुः यस्य'** अर्थात् धर्म है सेतु जिसका, तो लक्ष्मण धर्म हैं और उनकी भुजाएँ सेतु हैं–

जयति संग्राम-सागर-भयङ्कर तरन,
रामहित करण वर-बाहु सेतु।

ये हैं लक्ष्मण! हमारे लछिमन भैय्या कितने सुन्दर हैं! आइये, लक्ष्मण जी के चरित्र की जो परिणति है, उस पर आपको ले चलूँ। धीरे-धीरे विषय गहनता की ओर जा रहा है। ध्यान से समझिये। आपके लिये कुछ कठिन नहीं है। कठिनता हो आपके शत्रुओं के

लिये। आप तो रामजी की गोद में बैठे हैं।

देखिये, मेघनाद और लक्ष्मण जी का जहाँ प्रश्न आता है, उस पर जब हम थोड़ा विचार करते हैं तो एक बात बहुत स्पष्ट रूप से समझ में आती है, कि गीताजी के सातवें अध्याय के ग्यारहवें श्लोक के तीसरे और चौथे चरण में कहा है–

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।।

भगवान कहते हैं कि जो धर्म से अविरुद्ध काम करता है, वह मैं हूँ। आगे चलकर यह स्पष्ट किया जायेगा कि भरत जी 'काम' हैं और वह साक्षात् राम ही हैं–

भरत राम ही की अनुहारी। सहसा लखि न सकहिं नर नारी।।

क्योंकि वह धर्म से अविरुद्ध हैं। लक्ष्मण जी का उनसे विरोध नहीं है। भरत जी बारम्बार कहते हैं कि–

अहह धन्य लछिमन बड़भागी। राम पदारविन्द अनुरागी।।
जीवन लाभ लखन भलु पावा। सब तजि राम चरन मनु लावा।।

मानस के अध्येताओं को यह ध्यान रहे कि भरत जी ने, लक्ष्मण जी की, तीन बार प्रशंसा की। सबसे पहले अयोध्या में, फिर चित्रकूट के मार्ग में और फिर लौटकर अयोध्या में। इसका अर्थ यह है कि यह 'काम' (अर्थात् भरत) धर्म से अविरुद्ध नहीं है, धर्मानुकूल है। जब तक काम धर्मानुकूल नहीं होगा, तब तक वो राम को नहीं पा सकता।

आनन्द के लिए श्री भरत मिलाप का प्रकरण देखिये चित्रकूट की धरती की लीला है। अभी इसको विस्तार में नहीं कह रहे हैं। क्योंकि आगे चलकर विस्तार से समझाऊँगा किन्तु मुझे जहाँ से सिद्धान्त लेना है, वहीं तक लेना है।

चित्रकूट की परम पावन वनस्थली में भरत जी पधार गए। श्री भरत जी ने यहाँ पहले राम जी को नहीं देखा, उन्होंने देखा–

करत प्रबेस मिटेउ दुख दावा। जनु जोगी परमारथु पावा।।

उनकी दृष्टि पड़ी लक्ष्मण पर–

देखेऊ भरत, लखन प्रभु आगे। पूछे बचन कहत अनुरागे।।

भरत जी ने लक्ष्मण जी को देखा, जो प्रभु के आगे खड़े हैं और राघवेन्द्र जी के पूछे

गये वचनों का उत्तर दे रहे हैं। लक्ष्मण जी कैसे लग रहे हैं—

सीस जटा, कटि मुनि पट बाँधे।
तून कसे, कर सर, धनु काँधे।।

सिर पर जटा है। कटि में मुनि पट बाँध रखा है, तरकश कसे हुए हैं, हाथ में बाण है और कन्धे पर धनुष है। जब भरत जी ने, लक्ष्मण जी को देखा और दोनों को एक साथ प्रणाम किया। 'काम' के लिए, 'धर्म भी स्मरणीय है और मोक्ष भी। इसलिए—

पहि नाथ कहि पाहि गोसाईं। भूतल परेउ लकुटि की नाईं।।

भरत जी महाराज, पाहि नाथ, पाहि गोसाईं कहकर, भूमि पर पड़ गए, मानों भरत जी ने कहा कि हे धर्मरूप लक्ष्मण अब तुम मुझे मोक्ष रूप राम को समर्पित करो। आप प्रभु के अनन्य परिकर हैं, जीवाचार्य हैं, और जब तक जीवाचार्य नहीं चाहेगा, तब तक कोई समर्पित ही नहीं हो सकता। लक्ष्मण जी ने पहचान लिया—

बचन सप्रेम लखन पहिचाने। भरत प्रनाम करत जिय जाने।।

अब यहाँ धर्म की विचित्र परिस्थिति देखिये। एक ओर तो लक्ष्मण जी के मन में पहले से आ गया कि भरत जी से पहले मैं मिल लूँ—

बन्धु सनेह सरस एहिं ओरा। उत साहिब सेवा बस जोरा।।

एक ओर बन्धु का स्नेह कि मैं 'भरत भैय्या' से मिलूँ और दूसरी ओर स्वामी की सेवा का जोर। यदि सेवक में कुटुम्बवाद आ जाएगा, तो वह सेवा कैसे करेगा? लक्ष्मण जी ने सोचा कि मैं तो राम जी का सेवक हूँ और अब हमारे सामने कोई भाई भतीजावाद नहीं। यह क्या कर रहे हो—

मिल न जाइ, नहिं गुदरत बनई। सुकवि लखन मन की गति भनई।।

मिला भी नहीं जाता। लक्ष्मण जी ने कहा, आज मेरा व्यक्तित्व एक पतङ्ग के समान रहेगा—

रहे राखि सेवा पर भारू। चढ़ी चङ्ग जनु खैंच खेलारू।।

जैसे पतङ्ग उड़ जाती है वायु के वेग से, वैसे ही आज लक्ष्मण जी का मन रूप पतङ्ग, भरत जी के प्रेम रूप वायुमण्डल में उड़ गया। सेवा का भार है उन पर। रस्सी हाथ में पकड़े हैं। लक्ष्मण जी। यदि छोड़ देंगे तो अनर्थ हो जाएगा और यदि जोर से

खींचेंगे तो रस्सी टूट जाएगी। अब छोड़ा भी नहीं जा सकता और जोर से खींचा भी नहीं जा सकता। तब लक्ष्मण जी ने धीरे-धीरे उस रस्सी को खींचा। उनके मन ने कहा कि नहीं लक्ष्मण, तुम राघव के सेवक हो। ऐ मेरे मन रूप पतङ्ग! तुम लौट आओ और उनका मन रूप पतङ्ग लौट आया, और तब—

कहत सप्रेम नाइ महि माथा। भरत प्रनाम करत रघुनाथा।

तुरन्त पृथ्वी पर प्रणाम करके लक्ष्मण जी ने कह दिया कि हे राघवेन्द्र! भरत जी प्रणाम कर रहे हैं अर्थात् जब धर्म ने प्रमाणपत्र दे दिया कि यह धर्माविरुद्ध काम है, इसका 'धर्म' से विरोध नहीं है, तब भरत रूप 'काम' को, भगवान राम ने अपनाया।

अब, एक और झाँकी, जो लक्ष्मण जी की सेवा को और समग्रता देगी। जब मेघनाद के प्रकरण पर विचार करते हैं तो मनु जी का एक वाक्य जो बारहवें अध्याय में आया है कि

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्मात् धर्मो न हन्तव्यो मानो धर्मो हतो वधीत्।।

मनु जी कहते हैं कि यदि हम धर्म को मारेंगे, यदि हम धर्म को पीड़ा देंगे, तो धर्म हमको मार डालेगा। यदि हम धर्म की रक्षा करेंगे, तो धर्म हमारी रक्षा करेगा। **'तस्मात् धर्मो न हन्तव्यो'**, इसलिये धर्म को कभी हानि नहीं पहुँचानी चाहिये। **'मानो धर्मो हतो वधीत्।'** हमारे द्वारा सताया हुआ धर्म कहीं हमें मार न डाले। यह मनु जी की शब्दावली का अक्षरार्थ है।

अब ध्यान रखिये, कि धर्म किसी को तब मारता है, जब लोग उसे सताते हैं लक्ष्मण जी ने मेघनाद को पहले नहीं मारा था। पहले मेघनाद ने 'वीरघातिनी शक्ति' लक्ष्मण जी पर फेंकी। तब लक्ष्मण जी ने कहा कि ठीक है, एक बार मार दो, कोई बात नहीं, पर यह ध्यान रखना कि मुझे मारोगे तो मैं जीवित हो जाऊँगा क्योंकि मेरे पास तो हनुमान भी हैं और भगवान भी हैं, पर जब मैं तुम्हें मारुँगा तो तुम्हें कोई जीवित नहीं कर सकेगा। वही हनुमान, जो लक्ष्मण जी को राम जी के पास ले आए, वही हनुमान, मेघनाद को भी मरने के बाद रावण के पास ले गए।

बिनु प्रयास हनुमान उठायो। लङ्का द्वारि राखि तेहि आयो।।

पर विडम्बना यह थी कि राम जी के पास, जब लक्ष्मण जी को लाए तो, हनुमान

जी महाराज ने उन्हें जिलाने का प्रयास भी किया और जब मेघनाद को ले गए, तो कहा कि इसका दाह-संस्कार करो। मेघनाद ने एक दुस्साहस भरी प्रतिज्ञा की थी कि—

कहँ कोसलाधीस द्वौ भ्राता। धन्वी सकल लोक बिख्याता।।
कहँ नल नीलद्विविध सुग्रीवा। अङ्गद हनूमान बल सींवा।।
कहाँ विभीषण भ्राता द्रोही। आजु सबहिं हठि मारहुँ ओही।।

मेघनाद ने आठ वीरों का नाम लिया—राम, लक्ष्मण, नल, नील, द्विविध, सुग्रीव, अङ्गद और हनुमान। इन आठों के देखते-देखते मैं भ्राता-द्रोही विभीषण को मार डालूँगा। यह मेघनाद का घोषणा पत्र था और उसने यहीं किया भी। सबको मूर्च्छित कर डाला और अन्त में रामजी से युद्ध करने के लिए उपस्थित हुआ।

लक्ष्मण जी ने कहा—सरकार, यह धर्म के विरुद्ध है।

रामजी ने कहा—क्यों विरुद्ध है?

लक्ष्मण जी ने कहा—जोड़ी से युद्ध होता है सरकार, आप जानते हैं कि मेघनाद कौन है?

रामजी ने कहा—मैं नहीं जानता।

लक्ष्मण जी ने कहा—'मेघनाद अधर्म है और अधर्म को तो धर्म ही मार सकता है। इसीलिये तो कहते हैं कि धर्म की जय हो, अधर्म का नाश हो। इसीलिये लखनलाल जी धर्म और मेघनाद अधर्म है।

लखनलाल जी ने कहा—सरकार, मेघनाद से मैं युद्ध करूँगा क्योंकि जोड़ी से युद्ध होना चाहिये। आप राजा हैं और यह राजकुमार है।

रामजी के मुख पर थोड़ी उदासी छा गई।

तब लक्ष्मण जी ने कहा—आप उदास क्यों हो रहे हैं। अरे! यह रावण का बेटा है और मैं राघव का बेटा हूँ। यदि मेघनाद की माता मन्दोदरी है तो मेरी माता मैथिली है। मन्दोदरी माने—'**मन्दा:उदरे यस्या:**' जिसके पेट से मन्द लोगों का ही जन्म होता है। मन्दोदरी का तो व्यक्तित्व सुअर और कुक्करी की भाँति है। जिस प्रकार सुअर बिआती है, उसी प्रकार यह भी मन्दों को, राक्षसों को जन्म देती है। जिसके उदर से भगवद्विमुखों का ही जन्म होता है और मेरी माँ तो मैथिली है। यदि मेघनाद ने इन्द्र को जीता है तो मैंने

तो इन्द्रियों को जीता है। यह राजकुमार है तो मैं रामकुमार हूँ। सरकार दोनों का युद्ध सङ्गत रहेगा।

प्रभु ने कहा—बिल्कुल ठीक है।

लछिमन मेघनाद द्वौ जोधा। भिरहिं परस्पर कर अति क्रोधा।।

दोनों युद्ध करने लगे। पूरी सेना समाप्त हो गई। जब मेघनाद ने देखा कि मेरी सारी शक्ति क्षीण हो गई है, तब उसने सोचा कि अन्तिम बार तो मैं अपना काम कर ही लूँ और तब उसने अपनी 'वीरघातिनी शक्ति' विभीषण पर फेंक दी—

वीरघातिनी छाँड़ेसि साँगी। तेजपुञ्ज लछिमन उर लागी।।

जब विभीषण जी पर यह शक्ति फेंकी तो धर्म तो धर्म ही है। लक्ष्मण जी ने कहा कि यदि यह शक्ति, विभीषण जी को लगेगी तो रामजी को कलङ्क लग जाएगा और मेरे रहते हुए यदि रामजी को कलङ्क लगा तो मेरा रहना व्यर्थ है। यदि, मैं (लक्ष्मण) नहीं रहूँगा तो हजारों लक्ष्मण आ जाएँगे, तुरन्त विभीषण को पीछे धकेला और कहा कि, आओ शक्ति, मैं तुम्हें अपनी छाती से लगाने को तैय्यार हूँ। शक्ति का प्रयोग हो गया। वहाँ धर्म निरपेक्षता थी शक्ति के लगते ही कुमार लक्ष्मण मूर्च्छित हो गए। थोड़ी देर के लिए 'धर्म' मूर्च्छित हो गया, निश्चेष्ट हो गया क्योंकि धर्म में तीन ही अक्षर हैं और अधर्म में साढ़े तीन अक्षर हैं।

मूर्च्छा भई सक्ति के लागे। पुनि चलि गयउ निकट भय त्यागे।।

रामजी ने सोचा कि-'धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे,' मैं धर्म को स्थापित करने आया हूँ और जब मेरे कारण धर्म ही गिर गया तो मैं क्या करूँगा? अत: रामजी दु:खी हो गए—

यास्यामि कालसदनं सह लक्ष्मणेन,
सीता प्रवेक्ष्यति भयात् जलराशि मध्ये।
यास्यन्ति वानरचमूपतय: स्वगेहान,
हा हन्त! नास्तितिरेक विभीषणस्य।।

मैं लक्ष्मण के साथ चला जाऊँगा, सीताजी समुद्र में कूद पड़ेंगी, वानर अपने घर लौट जाएँगे, पर अरे! विभीषण की क्या गति होगी?

राघवेन्द्र जी रो रहे हैं। तब जाम्बवान जी ने कहा—

अञ्जना सुप्रजायेन मातरिष्वाच सुव्रतः।
हनुमान कपि शार्दूलः प्राणः धारयते क्वचित्।।

क्रोध में आकर जाम्बवान ने कहा कि हनुमान कहीं मर तो नहीं गए? इतना सुना तो हनुमान जी ने पूँछ फड़फड़ाई और गर्जन हुआ—

जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।

हनुमान जी महाराज ने कहा कि आज्ञा हो सरकार—

पातालतर्क्कि सुधार समानयामि,
निष्पीड्य चन्द्रममृतं किं ताहरामि।
उद्दण्डचण्डकिरणं किं वारयामि,
कीनाशपाशमनिशं किं चूर्णयामि।।

आज्ञा हो जाए क्या पाताल से अमृत ले आऊँ? क्या चन्द्रमा को निचोड़ दूँ? क्या सूर्यनारायण को उदय होने से रोक दूँ? क्या यमराज के फन्दे को तोड़ दूँ?

जामवन्त जी ने कहा कि ऐसा कुछ नहीं करना है—

जामवन्त कह बैद सुषेना। लङ्का रहइ को पठई लेना।।

जामवन्त जी ने कहा कि सुषेन को लङ्का से लाना होगा क्योंकि यह ध्यान रखिये कि लङ्का 'प्रवृत्ति' है। प्रवृत्ति माने संसार का व्यवहार। वैद्य ही सद्‌गुरु हैं—'सद्‌गुरु बैद्य बचन बिस्वासा' यह सिद्धान्त है कि जब तक सद्‌गुरु, संसार के व्यवहार में रहेगा, गृहस्थी के कच्चड़ में फँसा रहेगा, तब तक वह ठीक से अपनी चिकित्सा नहीं कर सकेगा। इसलिये, सद्‌गुरु को चाहिये कि वह प्रवृत्ति अर्थात् संसारके व्यवहार से हट जाए पर प्रवृत्ति से हटने के लिये, सांसारिक बन्धनों से मुक्त होने के लिये, दृढ़ वैराग्य का आना बहुत आवश्यक है और हनुमान जी महाराज तो स्वयं दृढ़ वैराग्य हैं **'प्रबल वैराग्य दारुण प्रभञ्जन तनय'** हैं। अतः वैराग्यरूप हनुमान जी ने वैद्य सुषेन से कहा कि इस लङ्का रूप प्रवृत्ति से तुम्हें चलना है।

सुषेन ने कहा-कुछ भी करो, घर तो नहीं छोड़ूँगा।

हनुमान जी ने कहा कि यदि तुम घर को नहीं छोड़ोगे तो हम घर को ही रामजी के चरणों में ले चलते हैं। **'आनेउ भवन समेत तुरन्ता'**, और घर के सहित उनको रामजी

के चरणों में ले आए। किवाड़ खटखटाया। हनुमान जी जानते थे कि यहाँ के डाक्टर जरा बदमाश हैं। यदि वैसे बुलाकर ले जाऊँगा तो कहेंगे कि दवा नहीं है, थर्मामीटर नहीं है, इसलिये पूरी की पूरी डिस्पेंसरी ही उठा लिये चलते हैं और डिस्पेंसरी सहित ले आकर किवाड़ खुलवाया तो सुषेन ने देखा कि पचास वानर खड़े हैं। चुप, चुप, कुछ बोलना नहीं, नहीं तो गला घोंट देंगे। चुपचाप सुषेन ने चिकित्सा की और कहा कि सञ्जीवनी चाहिये। ये सञ्जीवनी क्या है, जिसे हनुमान जी लाएँगे—

रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान श्रद्धा मति पूरी।।

श्री रामचन्द्र जी की भक्ति ही सञ्जीवनी बूटी है। सञ्जीवनीबूटी मिलती कहाँ पर है? तो कहते हैं कि पर्वत पर और ये पर्वत कौन से हैं? तो कहते हैं कि—

पावन पर्वत बेद पुराना। राम कथा रुचिराकर नाना।।

श्री हनुमान जी महाराज बूटी लाए, लक्ष्मण जी को जिलाया। आज लक्ष्मण जी दण्ड बने, राम जी के धर्म की ध्वजा बने। '**धर्म दण्ड्योऽसि**' अर्थात् दण्ड ने स्वयं गिरकर भी, राम जी को नहीं गिरने दिया। रामजी के यश को बचाकर रखा। देखिये, डण्डा जब गिरता है तो झण्डा भी गिर जाता है, पर यह तो एक विचित्र ही डण्डा है, जो स्वयं तो गिरा, पर झण्डे को नहीं गिरने दिया। कितना मधुर दण्ड है यह क्योंकि यह तो धर्म का दण्ड है। कुमार लक्ष्मण स्वस्थ हो गए। सुषेन ने उन्हें जिला दिया 'हृदय लाइ भेंटे प्रभु भ्राता' लक्ष्मण जी से पूछा गया कि आपको पीड़ा कहाँ हुई?

लक्ष्मण जी ने कहा—मुझे तो पीड़ा नहीं हुई, पीड़ा तो रघुवीर को हुई—

हृदय घाव मेरे किन्तु पीर रघुबीरहिं

घाव तो मेरे हृदय में हुआ किन्तु पीड़ा तो राघव जी को हुई क्योंकि धर्म की पीड़ा तो भगवान को होती है। क्योंकि—

जब जब होय धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर महा अभिमानी।।
तब तब प्रभु धरि विविध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।।

मनुस्मृति के अनुसार 'धर्म एव हतो हन्ति', जब धर्म को कोई मारता है तो धर्म उसे मार डालता है। अब धर्म रूप लक्ष्मण ने अधर्म रूप मेघनाद के साथ तुमुल युद्ध करने का निर्णय लिया और उसको मार डाला।

सुमिरि कौसलाधीस प्रतापा। सर सन्धान कीन्ह करि दापा।।
छाड़ेहि बान माझ उर लागा। मरती बार कपहु सब त्यागा।।

इस प्रकार जीवन पर्यन्त इस धर्म रूप लक्ष्मण ने मोक्ष रूप राम का साथ निभाया। जब तक जीवन में धर्म नहीं आता, मोक्ष मिल ही नहीं सकता। धर्म के साथ मोक्ष जुड़ा हुआ है।

रावण के मरने में सबसे बड़ा कारण मेघनाद है। जब तक मेघनाद है, तब तक रावण मर ही नहीं सकता। अतः मेघनाद को मारकर कुमार लक्ष्मण ने राम जी को विजयश्री दिलाई और अन्ततोगत्वा अयोध्या वापस आए। अपनी 'श्रद्धा क्रिया' उर्मिला जी से मिले, उर्मिला जी से आरती उतरवाई और निरन्तर राम जी के साथ अपनी भूमिका निभाते रहे-सेवक के रूप में, सखा के रूप में और भिन्न भिन्न उपकरणों के रूप में। इस प्रकार यह द्वितीय पुरुषार्थ 'धर्म' है।

बन्दउँ लछिमन पद जल जाता। सीतल सुखद भगत सुख दाता।।
रघुपति कीरति बिमल पताका। दण्ड समान भयउ जस जाका।।

पूरे रामायण के फलक में इस धर्म नामक पुरुषार्थ ने एक विचित्र भूमिका निभाकर रामजी को पूर्ण जय दिलवा दी। **'यतो धर्मस्ततो जयः'** जहाँ धर्मरूप लक्ष्मण है वहीं रामजी को विजय मिलेगी और जहाँ लक्ष्मण न हों तो राम को विजय नहीं मिलेगी क्योंकि शास्त्र का विरोध है कि जहाँ धर्म होगा वहीं विजय होगी और जहाँ अधर्म होगा, वही पराजय होगी। मेघनाद रूप अधर्म के कारण रावण को पराजय और लक्ष्मण रूप धर्म के कारण रामजी को विजय मिली।

इस प्रकार दो पुरुषार्थों (अर्थ और धर्म) की व्याख्या हो चुकी। कल 'काम' रूप भरत की व्याख्या होगी और आप चौंकेंगे कि भरत को काम कैसे कहा जा रहा है? 'काम' की क्या व्याख्या है? यह कल के गर्भ में छोड़िये।

मुदित अवधपति सकल सुत बधुन्ह समेत निहारि।
जनु पाए महिपाल मनि क्रियन्ह सहित फल चारि।।

।।सीताराम जय सीताराम।।

लखनसिय रामचन्द्र की जय

''सियावर रामचन्द्र भगवान की जय।।

षष्ठ वाक् पुष्पाञ्जलि सम्पन्न

।।श्री राघवः शन्तनोतु।।

।। श्रीमद्राघवो विजयतेतराम् ।।

अथ सप्तम वाक् पुष्पाञ्जलि

श्री तुलसीपीठ आमोदवन, चित्रकूट

दिनाङ्क २४.३.९९

मङ्गलाचरण

आगच्छ वायुसूनो त्वं मया रामायणी कथा।
प्रारभ्यते भव श्रोता गृहाणासनमुत्तमम्।।

रामरत्नमहं वन्दे चित्रकूट पतिं हरिम्।
कौसल्याशुक्तिसम्भूतं जानकी कण्ठभूषणम्।।

श्रीसीतापादपाथोज मकरन्द मधुव्रतम्।
शोभारतं शुभरतं भरतं हृद्भावये।।

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्ग सीतासमारोपितवामभागम्।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम्।।

श्री सीतानाथ समारम्भां श्रीरामानन्दार्यमध्यमाम्।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे श्रीगुरुपरम्पराम्।।

।।श्री चित्रकूट विहारी विहारिणी जू की जय।।

सीताराम जय सीताराम। सीताराम जय सीताराम।।

रामबाम दिसि जानकी लखन दाहिनी ओर।
ध्यान सकल कल्यानमय सुरतरु तुलसी तोर।।

।।सियावर रामचन्द्र कीजय।।

मुदित अवधपति सकल सुत बधुन्ह समेत निहारि।
जनु पाए महिपाल मनि, क्रियन्ह सहित फल चारि।।

मानस/बाल० ३२५

मिथिला का मङ्गलमय विवाह मण्डप, चारों ओर आनन्द का वातावरण। श्रीरामचन्द्र भगवान भी आज बहुत सुन्दर सजे हैं। मिथिलानियों को देखकर, उनके नक्शे कुछ अधिक ही बढ़ जाते हैं। इतना सुन्दर आनन्द प्रभु कर रहे हैं। आज प्रभु ने सीताजी के साथ पाणिग्रहण करके अत्यधिक शोभा प्राप्त की है। माण्डवी जी के सहित श्रीभरत जी, उर्मिला जी के सहित लक्ष्मण जी और श्रुतिकीर्ति जी सहित श्री शत्रुघ्न जी, इस प्रकार ये चार-चार जोड़ियाँ बहुत सुन्दर लग रही हैं। अद्‌भुत है यह दृश्य।

आज, प्रभु ने अपने मस्तक पर मौर धारण कर रखा है, उसकी भी एक अद्‌भुत लीला है। **'मौर'** को संस्कृत भाषा में **'मौलिः'**, हिन्दी भाषा में **'मौरी'** तथा मिथिला भाषा में **'मौरिया'** कहते हैं। आज, सकल भूपाल सिरमौर ने अपने सिर पर जो **'मौल'** रखा है, वह अद्‌भुत ही है और उसको भगवान राम ने अपने स्वप्नादेश से अपनी पसन्द का बनवाया है। यह रामकथा का बड़ा निगूढ़ प्रसङ्ग है, जो किसी रामायण में नहीं लिखा, पर हमारी अवधी और भोजपुरी के ग्राम्य-गीत, महिलाओं के हृदय के रामायण में लिखा है। इस गीत को किसी ने बनाया नहीं, यह हजारों वर्षों से हमारे यहाँ गाया जाता ह। यह इतना सुन्दर गीत है कि मैं स्वयं संस्कृत का विद्वान और जगद्‌गुरु होने पर भी, नियम से इसका प्रतिदिन पाँच बार पाठ करता हूँ। जिस प्रकार वेद नित्य हैं और वेद के मन्त्रों में रचनाकार का ज्ञान नहीं होता, उसी प्रकार वैदिक मन्त्रों की भाँति यह गीत भी नित्य है और उसी प्रकार पुण्यजनकतावच्छेदक भी है।

भगवान शङ्कर का धनुष, रामजी तोड़ चुके हैं। विश्वामित्र जी की अनुमति से, जनक जी के पुरोहित, लग्न पत्रिका लेकर, श्री अवध आ चुके। बारात की तैय्यारी चल रही है। अब मिथिला को बारात जाएगी। उसी समय भगवान राम ने अयोध्या की मालिनी को, आधी रात के बाद सबेरे वाली रात, जिसको हमारे जौनपुर में भिनुसरही रात कहते हैं, ऐसे प्रत्यूष काल में सपना दिया। मालिनियाँ को जगाया कि अरे मालिन! जाग जाओ! सबेरा हो रहा है। कहते हैं—

मलिया जे सूतल ऊँची अटरिया हे,
मालिन सूतेली फुलवारि हे, मलिनियाँ
जागो जागो आहे मलिनियाँ मलिया जगावे ले२
जागो मालिन भइले भिनुसार हे। मलिनियाँ जागो...
मलिया जे सूतल.....

यहाँ का दृश्य कितना अपूर्व है! माली ऊँची अट्टालिका पर और मालिन फुलवारी में सो रही है। मालिन को फुलवारी में ही भगवान राम ने जगाया। जब मालिन ने आँख खोली, सामने निहारा तो, इन्द्रनीलमणिश्याम, लोकलोचनाभिराम, कोटिमन्मथाभिराम, नीलसरोरुहश्याम, सजलनीलघनश्याम, नीलातिशीतपुष्पश्याम, परब्रह्म परमधाम, आप्तकाम, पूर्णकाम, परम निष्काम शोभाधाम, श्रीराम को सामने पाया।

अँखिया दे खोल मलिनियाँ आगे निहारै ले
दुलहा रामचन्दर बबुआ ठाढ़ हे, मलिनियाँ दुलहा...

मालिन ने रामचन्द्र जी को सामने खड़े देखा। रामचन्द्र जी ने कहा—मालिन भौजी प्रणाम!

मालिन ने कहा—सुना है आपने मिथिला में धनुष तोड़ा है!

भगवान ने कहा—बिल्कुल तोड़ा है! मेरा ब्याह निश्चित हुआ है, तुम्हारी देवरानी आ रही है।

मालिन ने कहा—क्या करूँ?

भगवान ने कहा—'भौजी, हमारे लिए **'आरसी मौल'** या **आरसी मौरिया'** की रचना कर दो। भगवान राम कहते हैं कि—

आज लागी आहे मलिनियाँ लगन मधिम रही
आज लगनियाँ भइली तेजि हे, मलिनियाँ
आज लगनियाँ.....
बाबा घर आहे मलिनियाँ हमरो सगुनवा ऊखे
अरसी मउरिया रचि देहु हे, मलिनियाँ अरसी.....
मलिया जे सूतल ऊँची अटरिया हे
मालिन सूतल फुलवारि हे, मलिनियाँ मलिन.....

जब रामचन्द्र जी ने मलिन से कहा कि मेरे लिये आरसी मौरिया की रचना कर दो, तो मालिन तो चकित हो गई, उसने कहा 'आरसी मौरिया' क्या होती है, कैसी होती है, मैं तो जानती ही नहीं। संस्कृत में 'आरसी' शब्द का अर्थ है 'ऋषीणा इयं आरसी' जिसकी प्रशंसा ऋषियों ने की, उसे आरसी कहते हैं। 'आरसी मौरिया' कैसी होती है, तो रामजी ने कहा कि उसका नक्शा तो मैं तुम्हें बतलाऊँगा।

अरसी मउरिया दुलरुवा, अँखियों न देखली है
अरसी मउरिया कइसन होय हे, मलिनियाँ.....

अब रामचन्द्र जी ने बताया—

आजू बाजू आहे मलिनियाँ हीरा मोती माणिक
बिचवा में सीता सुकुमारि हे, मलिनियाँ, बिचवा में.....
मण्डप में मोहे मलिनियाँ सारी सरहजिया हे
कोहबर में सीता सुकुमारि हे, मलिनियाँ, कोहबर.....
मलिया जे सूतल ऊँची अटरिया हे
मालिन सूतेली फुलवारि हे, मलिनयाँ, मालिन.....
जागो जागो आहे मलिनियाँ, मलिया जगावे ले
जागो मलिन भइली भिनुसार हे।
मलिया जे सूतल ऊँची अटरिया हे, मालिन सूतल फुलवारि हे
आरसी मौल धारण कर्तार भगवान की, जय हो।

भक्त वत्सल भगवान की, जय हो।

आप लोगों को भले ही यह ग्राम्य गीत लगे, किन्तु मैं इस गीत से इतना प्रभावित हूँ क्योंकि इसका बहुत सुन्दर सैद्धान्तिक विवेचन है। श्री रामचन्द्र जी मालिन से आरसी मौरिया की रचना करने को कहते हैं और यह भी बताते हैं कि आजू, बाजू हीरे, मोती, माणिक और मध्य में सीताजी का चित्र होना चाहिये। पूरा सीताजी का चित्र बताया कि तुम्हारी देवरानी ऐसी हैं, पूरा नक्शा बता दिया भगवान राम ने और आज उसी मौर को भगवान राम ने धारण किया है। **'सोहत मौर मनोहर माथे'** इसका तात्पर्य यही है कि भगवान राम ने सीताजी को अपने मस्तक पर धारण किया। भाव यही है कि भगवान भी तभी अच्छे लगते हैं जब भक्ति को अपने मस्तक पर धारण करते हैं। ज्ञान की शोभा तभी होती है जब ज्ञान अपने मस्तक पर भक्ति को धारण कर लेता है। जब तक भक्ति को ज्ञान अङ्गीकार नहीं कर लेता तब तक ज्ञान को कोई पूछता भी नहीं। इतना सुन्दर दृश्य, और ऐसे अप्रतिम सौन्दर्य से सम्पन्न प्रभु को सीताजी सहित निहारकर, भरत जी को माण्डवी के साथ, लक्ष्मण जी उर्मिला जी के साथ और शत्रुघ्न जी को श्रुतिकीर्ति जी के साथ विराजमान देखकर चक्रवर्ती जी को मानो चारों क्रियाओं सहित चारों फल मिल

गए, यह यहाँ की वस्तुस्थिति है।

हम पहले यह कह चुके हैं कि दैन्यपूर्वक भगवद्कैंकर्य ही 'अर्थ' है और वही श्रीशत्रुघ्नलाल जी हैं और उनकी क्रिया है सेवा, वही हैं श्रुतिकीर्ति जी। संस्कृत में श्रुति का अर्थ होता है वेद। श्रुतौ कीर्तिः यस्याः, वेद में जिनकी कीर्ति विराजमान है, वे हैं श्रुतिकीर्ति।

भगवत्भजन ही धर्म है और वह धर्म है 'कुमार लक्ष्मण' और उस भगवत्भजन रूप धर्म की क्रिया है श्रद्धा। वही श्रद्धा यहाँ हैं भगवती उर्मिला जी। 'उर्मीः लाति इति उर्मिला" जो लक्ष्मण जी के हृदय रूप महासागर में रामभक्ति की लहरें उपस्थित कर देती हैं, वे हैं उर्मिला। सामान्यतः एक सामान्य पत्नी को निहार कर पुरुष में काम की लहर आती है पर ये उर्मिला जी कितनी अद्‌भुत महिला हैं कि इन्हें देखकर, लक्ष्मण जी के हृदय में राम-प्रेम की लहर आ जाती है। एकान्त में पत्नी को देखकर, पति का हृदय राम-प्रेम में डूब जाए, ऐसी पत्नी संसार में कहीं देखी? कलियुग में भी यह इतिहास एक बार दोहराया गया। श्री गौराङ्गमहापुत्र का भव्य विवाह, जब भगवती विष्णुप्रिया जी से हुआ। पहली रात के मिलन के सम्बन्ध में विष्णुप्रिया जी सोचकर बैठी थीं कि मेरे पति मुझे बाहुओं में समेट लेंगे। परन्तु गौराङ्गमहाप्रभु, सजधज कर बैठी हुई अपनी पत्नी के पास आए। एक बार नख-शिख उन्हें देखा, तुरन्त उन्हें विष्णुप्रिया जी के सौन्दर्य में राधारानी का सौन्दर्य अनुभूत हुआ। मिलन को कौन कहे, उनके चरणों पर गिर पड़े गौराङ्गमहाप्रभु।

वास्तव में, संसार में सब कुछ नश्वर है। यदि संसार में कुछ सार है तो वह है भगवत्प्रेम में। जब भगवत्प्रेम उज्जवल होकर भक्त के हृदय में प्रतिष्ठित होता है, तो उस राम-रस के सामने काम-रस निश्चित रूप से बाधित हो जाता है। तब संसार में कुछ भी नहीं रह जाता, साथ में केवल रहते हैं दो चार बूँद आँसू। ऐसी पत्नी जिसको देखकर भगवत्प्रेम उमड़े, यह अद्‌भुत ही है, यह बहुत बड़ा जब सौभाग्य उदित होता है, तब ही ऐसा होता है।

विविक्तवर्णा भरणा सुखश्रुतिः प्रसादयन्ति हृदयान्यपि द्विषाम्।
प्रवर्तते न कृत पुण्य कर्मणां प्रसन्नगम्भीर पदा सरस्वती।।

भरवि।

इस श्लोक में दो अर्थ होंगे क्योंकि संस्कृत में 'सरस्वती' शब्द के दो अर्थ होते हैं।

१. सरस्वती-वाणी की देवी

२. सरस्वती-पत्नी

श्री भारवि कहते हैं कि जब भगवान की बड़ी कृपा होती है, तब ऐसा संयोग बनता है। **'विविक्त वर्णा भरणा'** अर्थात् विशुद्ध वर्ण ही जिसके आभूषण हैं, 'सुख श्रुतिः' अर्थात् जिसका श्रवण ही सुखदायक है, जो शत्रुओं के भी हृदय को आह्लादित करती है, ऐसी प्रसन्न गम्भीर पदों वाली सरस्वती सामान्य व्यक्ति को नहीं, जो बहुत पुण्यवान होते हैं, उन्हीं को प्राप्त होती है।

एक अर्थ तो इस प्रकार हुआ। दूसरा अर्थ इस प्रकार है–

विविक्त वर्णो वाली, प्रशस्त वर्ण, प्रशस्त कुल में उत्पन्न, सुन्दर आभूषणों से सुसज्जित, शत्रुओं के हृदय को भी आनन्दित करने वाली, ऐसी पत्नी भाग्यवानों को ही मिला करती हैं, जिन्हें देखकर हृदय में रामप्रेम का उद्दीपन हो रहा हो। जो पत्नी, पति में राम-प्रेम का सञ्चार कर दे, ऐसी पत्नी तो जिनके महान भाग्य होते हैं, जो कल्प कल्पान्तर, युग युगान्तर, जन्म जन्मान्तर के अनन्त-अनन्त पुण्यों से सम्वलित होते हैं, उनके जीवन में ऐसा संयोग हो सकता है, जहाँ पत्नी को देखकर, रघुपति के प्रेम का उद्दीपन हो जाए, जहाँ पत्नी को देखकर 'भोग' समाप्त कर 'योग' की इच्छा हो जाए, जहाँ पत्नी 'बुभुक्षा' का कारण न बनकर 'मुमुक्षा' का कारण बन जाए। सौभाग्य है, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न का जिन्हें ऐसी पत्नियाँ मिलीं।

वास्तव में, उर्मिला जी ने बहुत बड़ा बलिदान किया। किसी ने कहा 'साकेत' मैथिलीशरण गुप्त जी ने बहुत अच्छा लिखा है किन्तु वास्तव में यदि देखा जाए तो उर्मिला जी का अपमान ही हुआ है। गोस्वामी जी ने तो बहुत कुछ लिख दिया था। 'साकेत' में तो उर्मिला जी को मिथ्याचारिणी सिद्ध किया गया है। गीता जी के, तृतीय अध्याय के षष्ठ श्लोक में स्पष्ट वर्णन आया है–

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते।।

जो कर्मेन्द्रियों का तो संयम करता है, परन्तु मन से विषयों का चिन्तन करता है, उसे मिथ्याचारी कहा जाता है। उर्मिला जी के विरह का वर्णन मैथिलीशरण गुप्त जी ने

'साकेत' में किया। विरह तो तब होता है, जब व्यक्ति विषयों का चिन्तन करे। उर्मिला जी ने तो प्रसन्नतापूर्वक सुख से लक्ष्मण जी से कह दिया था, कि आप जाएँ, प्रभु की सेवा करें। मैं यहीं से अपने मूक समर्थन द्वारा आपको शक्ति देती रहूँगी। उर्मिला जी ने कभी उनके विषयों का चिन्तन नहीं किया, निरर्थक लिख डाला कि—

मुझे फूल मत मारो।
मैं अबला बाला वियोगिनी, कुछ तो दया विचारो।

उर्मिला जी को समझने के लिये बहुत बड़ी साधना की आवश्यकता है। उर्मिला जी ने कुमार लक्ष्मण को धन्य किया, जरा सा भी उनको शिथिल नहीं होने दिया। 'जो अपने पति को पतन से बचा लेती है, उसे पत्नी कहते हैं। पत्नी तो एक मन्दिर है, जैसे मन्दिर में जाकर मन शुद्ध होता है, उसी प्रकार भारतीय पत्नी के पास जाकर, पति के मन को रघुपति के चरण में विलीन होना चाहिये, यही उसकी परिभाषा है। देखिये, आज 'उर्मिला' जी 'श्रद्धा' बनीं और यही कहा कि—

मेरे मानस के हरिण आज बनचारी।
मैं रोक न लूँगी तुम्हें तजो भय भारी।
जाओ होकर निःशङ्क मुदित बन जाओ।
रघुपति की सेवा करो अभयपद पाओ।।
मेरे मानस के हरिण.....

मातु चरन सिर नाय चलउ तुरत सङ्कित हृदय
बागुर विषम तोराय मनहुँ भाग मृग भाग बस।।

तीसरे पुरुषार्थ का नाम है 'काम' और यही 'काम' भरत हैं। इसमें आप चौंकिये नहीं, गम्भीरता से यह विषय समझ में आ जाएगा। सामान्य रूप से काम शब्द के दो अर्थ किये जाते रहे हैं किन्तु बहुत प्रचलित अर्थ एक ही है और आज तक वक्ता अधिकांशत: उसी अर्थ को मानते हैं। क्योंकि—

जिनकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी।।

इस प्रकार '**श्रद्धा**' ने '**धर्म**' को इतना सम्बल बनाया कि उनको धर्म का दण्ड ही बना डाला। कल आप सुन चुके हैं कि अन्य डण्डे जब गिरते हैं तो झण्डा भी गिर जाता है पर यह डण्डा स्वयं गिरा पर झण्डे को ऊँचा रखा। श्रीराम के यश का झण्डा ऊँचा

ही रहा। मेघनाद के शक्ति के प्रहार से स्वयं यह डण्डा गिरा अवश्य पर स्वयं गिरकर झण्डे को ऊँचा रखना, यह **'धर्मदण्ड'** की ही अपनी एक विशेषता है।

आइये, अब भरत-चरित्र की ओर चलते हैं। भरत चरित्र तो आप बहुत सुन चुके हैं पर सिद्धान्त में आपको बहुत रस आएगा। अब तीसरे पुरुषार्थ **'काम'** की चर्चा करते हैं।

सामान्य रूप से लोग यही जानते हैं कि स्त्री पुरुष का समागम रूप 'काम पुरुषार्थ' है क्या इसको पाने के लिए पुरुष यत्न करें? अरे यह तो सबको मिलता है, कुत्ते, वानर, पशुओं को भी मिल जाता है। उन्होंने ऐसी कौन सी तपस्या करी? इसलिये इस काम को निश्चित नरक का द्वार श्रीगीताजी में कहा गया—

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्।।
अ० १६/२१

कहते हैं कि आत्मा को नष्ट करने वाले, ये नरक के तीन द्वार हैं—काम, क्रोध और लोभ। तो जो नरक का द्वार है, वो पुरुषार्थ कैसे हो सकता है? जबकि हमारे यहाँ काम के बाद मोक्ष की चर्चा है। अर्थ का साध्य 'काम' है और 'धर्म' का साध्य **'मोक्ष'** हैं। काम और मोक्ष ये दोनों ही साध्य हैं और अर्थ और धर्म साधन हैं। तो क्या हमारा साध्य नरक का द्वार हो जाएगा और काम के बाद ही मोक्ष मिलता है। कदाचित् इसी अवधारणा में भूलकर एक तथाकथित नास्तिक दार्शनिक ने अपने नास्तिक नहीं प्रत्युत विदेशी पञ्जे में जकड़े अपने को भगवान कहलवाने वाले, अपनी मनोवृत्ति और विदेशी संस्कृति को भारत पर थोपते हुए, धूमकेतु, रजनीश नामक दार्शनिक ने सम्भोग से समाधि की चर्चा कर डाली। परन्तु यहाँ 'काम' का क्या अर्थ है, आइये देखते हैं।

यहाँ वह 'काम' जिसकी गीताजी में चर्चा करते हैं—**'धर्माविरुद्धोभूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।'** धर्म से अविरुद्ध काम मैं हूँ। यहाँ काम का अर्थ है इच्छा। यहाँ का काम पुरुषार्थ है। **कमु कान्तौ कान्तिरिहेच्छा।** भगवत्प्राप्ति के लिए उपयोगी सामग्री पाने की इच्छा ही यहाँ 'काम' है। ऐसी सामग्री, जिसको पाने के पश्चात् भगवान मिल जाएँ, यही यहाँ काम है। और संक्षिप्त भाषा में बोलूँ तो 'मुमुक्षा' ही 'काम' है, अर्थात् भव बन्धन से छूटने की इच्छा ही 'काम' है।

दशरथ राज दुलारे कब राम मिलेंगे
दिवस न भूख, नींद नहीं रजनी
मानस सलिल हमारे कब कञ्ज खिलेंगे। दशरथ.....
तुम बिन छनक न चैन पड़त मोहे
'गिरिधर' प्राण अधारे कब चरण धुलेंगे। दशरथ.....

भगवान को प्राप्त करने की जो हृदय में तलफन है, वही 'काम' है और भगवत्प्राप्ति के लिए उठने वाली तलफन रूप "काम" का आकार है भरत, और भरत कुछ नहीं है। भगवान को पाने की तलफन होती कैसी है? उसके पास भी हाथ-पैर होते होंगे, मुख होता होगा, वाणी होती होगी! भगवत्कृपा से भगवत्प्राप्ति की इच्छा ने ही भरत का रूप धारण कर लिया। परिष्कार की भाषा में बोलू तो भगवत्प्राप्ति अनुकूलेच्छा व्यापारावच्छिन्न चैतन्य का नाम ही 'भरत' है। भरत कहते-कहते तो मन भर जाता है। ऐसा ही मेरा भी अनुभव है कि जिस दिन मेरा छः महीने का अनुष्ठान पूरा हो रहा था, उस दिन मेरे मन की स्थिति कुछ ऐसी ही हो रही थी, गुफा से निकलने का मन ही नहीं कर रहा था और जब प्रभु से विदा लेने की घड़ी आई तो मन ऐसा भर आया और यह मैंने किसी को नहीं बताया कि मैं तीन घण्टे तक बेहोश रहा। यहाँ आने का मन ही नहीं कर रहा था, पर क्या करता! अब यह संसार हमारे योग्य नहीं रह गया। यहाँ मुझे बिच्छू की भाँति डङ्क लगता है और लोग मुझे पहचान नहीं पा रहे हैं। मेरा यह गीत, मेरे इन्हीं मनोभावों को व्यक्त करता है—

न गिरिधर को छेड़ो हे संसार वालों
मेरा मन कहीं अब तो लगता नहीं है
तुम्हें पाके दशरथ के प्राणों के प्यारे,
मेरा मन कहीं अब तो भगता नहीं है।

देखिये, आज आद्य जगद्गुरु के भाव में कह रहा हूँ कि, हे संसार वालों! यदि तुमने जरा सी भी भूल की, तो वही परिणाम होगा, जो यदुवंशियों का हुआ। भागवत में उद्धव जी, विदुर जी से कहते हैं—

दुर्भगोवत लोकोऽयं यदवो नितरामपि।
ये सम्वसन्तो न विदुर हरिं मीना इवोडुपम्।।

श्रीमद्भा० ३/२/८

उद्धव जी ने कहा कि यह संसार बहुत दुर्भाग्यशाली है और उससे भी अधिक दुर्भाग्यशाली ये यदुवंशी हैं, जिन्होंने अपना कितना बड़ा सौभाग्य खोया। यदुवंशी कृष्ण के साथ रहते रहे, साथ-साथ खेले, खाए, बातचीत की और इतने दिन साथ रहने पर भी उनको साधारण मानते रहे और सारा समय बीत गया और वे भी अँगूठा दिखाकर चले गए, अर्थात् भगवान को यदुवंशी उसी प्रकार नहीं जान पाए, जिस प्रकार समुद्र में रहने वाली मछली चन्द्रमा को नहीं पहचानती। यद्यपि समुद्र से दोनों उत्पन्न होते हैं, चन्द्रमा भी समुद्र से उत्पन्न हुआ और मछली भी समुद्र से उत्पन्न हुई पर चन्द्रमा तो ऊपर आकाश में आनन्द लेने लगा और मछली नालायक समुद्र में ही रह गई। इसलिये प्रयास करना चाहिये। समय बहुत अनुकूल भी है और प्रतिकूल भी। अब नाटक का समय नहीं है। यदि चित्रकूट की गरिमा रखनी है और चित्रकूट में कुछ प्राप्त करना है तो मैं विश्वास दिलाता हूँ कि यदि आप निश्छल भाव से मेरी बात मान लेंगे, तो निश्चित किसी न किसी दिन राम मिलेंगे। यदि आपने मेरी बात नहीं मानी तो काम, दाम और धाम तो मिल जाएगा पर 'राम' कभी नहीं मिलेंगे और फिर आप पछताते रहेंगे। हमें तो अपना काम करना है। सन्त के पास संसार नहीं होता सन्त के पास तो सरकार होते हैं। सन्त शब्द दो अक्षरों से मिलकर बना है, स+अन्त। स का अर्थ है संसार। यहाँ शङ्का नहीं करनी चाहिये। 'यहाँ सकन्ध्वादित्वात् पररूप हुआ है, सवर्ण दीर्घ नहीं। ''सस्य संसारस्य अन्तः यस्मात् सः सन्तः'', जिसके चरणों में बैठने से संसार का अन्त तो हो ही जाता है और केवल साँवले सरकार विराजमान हो जाते हैं। इसलिये मन के इस पापी अभिमान को छोड़कर भगवान को पाने का प्रयास करना चाहिये, क्योंकि

चित्रकूट रघुनन्दन छाए। समाचार सुनि सुनि मुनि आए।।

गोस्वामी जी आज्ञा करते हैं कि चित्रकूट में सैलानी और छैला बनकर मत आइये। चित्रकूट आना हो तो मुनि बनकर आइये। चित्रकूट तो मुनियों की स्थली है और मुनि उसे ही कहते हैं, जो भगवान का मनन करता है। चित्रकूट में सुख-सुविधा ढूँढ़ने मत आओ। यहाँ तो प्रयास करो कि जितनी असुविधाएँ हों, उतना ही आनन्द हो जाए क्योंकि भगवान सर्वत्र तो व्यापक हैं ही पर चित्रकूट में तो वह व्याप्त हैं। चित्रकूट की धूल के एक-एक कण में भी भगवान मिल सकते हैं। जब हमारे हृदय में अभिमान ही भरा रहेगा तो भगवान कैसे मिलेंगे? उनको हृदय में विराजमान करने के लिए इस अभिमान रूप शत्रु को हटाकर अपने हृदय को खाली रखना पड़ेगा।

देखिये, आज भरत जी महाराज मुनि बनकर चित्रकूट आ रहे हैं, अब इतनी भूमिका यदि न दी जाए तो विषय आपको समझ में नहीं जाएगा। हम कह चुके हैं कि यहाँ 'काम' की परिभाषा है **'मुमुक्षा'**। भवबन्धन से छूटने की इच्छा ही 'काम' है और भरत जी, यही 'काम' हैं अर्थात् परिष्कृत रूप में भगवान को पाने की तलफन ही 'काम' है, जिसने भरत का रूप धारण करके हम सबको सुख दिया। एक बार गोस्वामी जी से कहा गया कि भरत का चित्र तो बता दीजिये। तब गोस्वामी जी ने कहा कि आँखे बन्द करके कल्पना करो, ध्यान करो कि—एक साँवली सी दुबली पतली मूर्ति, कटहल की छाल की तरह खड़े हुए रोम, आँखों में आँसू और जीभ पर राम जी का नाम, ऐसा सुन्दर साँवला सा स्वरूप है, भरत जी का।

पुलक गात हिय सिय रघुबीरू। जीह नाम जप लोचन नीरू।।

कितना सलोना चित्र है! 'पुलक गात', शरीर पुलकित हो चुका है और 'हिय सिय रघुबीरू', हृदय में दूर से ही स्पष्ट रूप से श्रीसीताराम भगवान के दर्शन हो रहे हैं, 'जीह नाम जपु', जिह्वा से राम, राम जप रहे हैं और 'लोचन नीरू', और आँखों से आँसुओं की झड़ी लगी हुई है।

जब हमारे सामने 'भरत' का नाम आता है तो बरबस हमारा ध्यान अवधी भाषा में भरत शब्द के अर्थ की ओर चला जाता है, जिसका अर्थ होता है 'भर रहा है', तो इस प्रकार जो हमारे हृदय में राम प्रेम को भर रहा है, वह है भरत।

संस्कृत भाषा में **'बिभर्ति इति भरतः'** अर्थात् जो अपने हृदय में श्री सीताराम जी को धारण करता है, वह भरत है।

दूसरी व्युत्पत्ति है—**'भरं तनोति तनु विस्तारे सौक्ष्म्ये च'**, **'भरं तनोति इति भरतः'** अर्थात् जो भगवान के भी बोझे को हल्का कर देता है, उसे भरत कहते हैं।

संसार का भार उठाते-उठाते भगवान बोझिल हो गए, कितना करें! एक बार, इसी चित्रकूट में दोनों भाई अलग हो रहे थे। आज जब भाई-भाई में अलगाव होता है, भेद होता है तो भाई-भाई, सम्पत्ति का बँटवारा करते हैं पर वह एक आदर्श चित्रकूट में दोहराया गया। चित्रकूट का कितना सौभाग्य है कि उसने यह आदर्श देखा, जब भाई-भाई मिल रहे थे। पिता की सम्पत्ति के बँटवारे में राम जी को वन और भरत जी को भवन मिला। **'पिता दीन्ह मोहि कानन राजू'** रामजी ने कहा कि बँटवारे में कुछ

तो बाँटना पड़ेगा, पर हे भरत, मेरे पास कोई सम्पत्ति तो है नहीं, मेरे पास तो विपत्ति है, भक्तों की विपत्ति लेते लेते मैं इतना बोझिल हो गया हूँ कि और भाई तो सम्पत्ति का बँटवारा करते हैं और तुम, मेरी विपत्ति का बँटवारा कर लो—

बाँटी बिपति सबहि मोहि भाई। तुम्हहिं अवधि भरि बड़ि कठिनाई।।

विचार कीजिये कि यह कितना सुन्दर भाई है।

इसीलिये गोस्वामी जी ने कहा—

तुलसी ज्यों-ज्यों घटत तेज बल, त्यों-त्यों प्रीति अधिकाई।।
भयउ न, हैं न, होहिंगे कबहूँ, भुवन भरत से भाई।।

भगवान को पाने की तलफन ही यहाँ 'काम' है, इस बात को समझने के लिए आपको **'उज्ज्वलनीलमणि'** नामक ग्रन्थ की ओर ले जा रहा हूँ। उज्ज्वलनीलमणिकार श्रील रूपगोस्वामी जी एक सच्चे भगवत्प्रेमी और भगवत्पारदर्शी थे। यह तो साधना की वस्तु है। वह वाग्विलास नहीं है। उनका भगवान के प्रति अनन्य प्रेम था। उनके भाई का नाम सनातन गोस्वामी था। वे बङ्गाले के नवाब के दीवान थे। एक दिन हिसाब में चार पैसे का घाटा हो गया। रात भर दीपक जलाकर, उस हिसाब किताब में इतने तन्मय हो गए कि शर्बत माँगने पर किसी ने उन्हें आटा घोलकर दे दिया तो उसको भी पी गए, उनको ज्ञान ही नहीं रहा। सबेरे उठकर उनके मन में आया कि अरे! साधारण से यवन के हिसाब में हम इतना तन्मय हो गए कि पूरी रात आँख फोड़ दी, यदि इतनी तन्मयता राधाकृष्ण में होती तो बेड़ा पार हो जाता और उन्होंने उसी समय, यवन का साम्राज्य छोड़ दिया और दोनों भाई, श्री गौराङ्ग महाप्रभु से कृष्ण-मन्त्र की शिक्षा और दीक्षा लेकर श्रीवृन्दावन आए। इतना उत्कट् वैराग्य हुआ रूपगोस्वामी जी को कि एक दिन सनातन गोस्वामी जी, रूप गोस्वामी जी के पास आए। रूपगोस्वामी जी की इच्छा थी कि भैय्या को अपने हाथ से खीर बनाकर खिलाऊँ, पर उनके पास तो कुछ था ही नहीं, पर इतना संकल्प करते ही वृषभानुनन्दिनी राधारानी जी, छोटी सी ग्वाल किशोरी का रूप बनाकर वहाँ आईं और कहा—बाबा! तेरे मन में संकल्प उठा है न! यह लो दो कटोरे खीर है। मैंने बहुत अच्छी बनाई है, तेरे लिये और तेरे भैय्या के लिये। नैवेद्य लगाया। सनातन गोस्वामी ने कहा—इतना स्वाद कहाँ से आया? तब रूप गोस्वामी ने कहा कि आपको खिलाने का मन में संकल्प जगा, तब राधा रानी ने भिजवाया। तब उन्होंने एक

थप्पड़ लगाया और कहा कि मूर्ख! अपने मिथ्या सङ्कल्प को पूर्ण करने के लिए राधारानी को कष्ट दिया? आज से ऐसी गलती कभी न करना! अर्थात् भगवान से कुछ नहीं चाहना।

जाहि न चाहिय कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु।
बसहु निरन्तर तासु मन सोइ राउर निज गेहु।।

अपने सांसारिक सङ्कल्प के लिये भगवान को क्यों कष्ट दिया जाए? भगवान तो हमारे प्रेम के पात्र हैं। कितना मधुर सङ्कल्प है और कितना मधुर भगवत्प्रेम है। ऐसे महापुरुष ने एक ग्रन्थ लिखा 'उज्ज्वलनीलमणि।' श्रील रूपगोस्वामी जी, तीन दिन तक आटा भिगोकर रखते थे और उसके टिक्कर बना लेते और वैसे ही भोग लगा लेते थे। एक दिन मदनमोहन जी ने कहा थोड़ा नमक तो डाल दिया करो। तब रूपगोस्वामी जी ने कहा कि आज तो नमक माँग रहे हो, कल को चीनी माँगोगे, ऐसे तो हम तुम्हारी सेवा नहीं कर सकते। आप मन्दिर में ही रहो। ऐसे परम भागवत निष्किञ्चन लोग, जो यह जानकर भी कि भगवान के रहते हुए भी यदि मुझे संसार से भीख माँगनी पड़े, तो भगवान को भी छोड़ने को तैय्यार। वे कहते कि हम तो तुझे नहीं चाहते, तेरे प्रेम को चाहते हैं। हम तुम्हारे बिना बस तलफते रहे, रोते रहें—**'मगन होके निशिदिन ही रोता रहूँ मैं।'** महापुरुष केवल भगवान को नहीं, भगवत्प्रेम चाहते हैं। वही भगवत्प्रेम, जो भगवान से भी अधिक मूल्यवान है, श्रील रूपगोस्वामी इसी भगवत्प्रेम को 'काम' की संज्ञा देते हैं। वही भगवत्प्रेम अवतार लेकर 'भरत' बनकर आ गया। प्रेम ने ही भरत का अवतार लिया। यदि 'ब्रह्म ने राम का अवतार लिया तो भगवत्प्रेम ने भरत का अवतार लिया। अयोध्यावासियों ने रामजी के ब्रह्मरूप को बाद में जाना, चित्रकूट में जब वसिष्ठ जी ने बताया, तब जाना—

धरमधुरीन भानुकुल भानू। राजा राम स्वबस भगवानू।।

पर अयोध्यावासियों ने भरत जी को पहले ही पहचान लिया था। देखिये, अयोध्या काण्ड के एक सौ चौरासीवें (१८४) दोहे की चौथी पंक्ति—

भरतहि कहहिं सराहि सराही। राम प्रेम मूरति तनु आही।।

यहाँ गीताप्रेस ने थोड़ी सी गल्ती कर दी है। लिखते हैं—**'राम प्रेम मूरति तनु आही'**, पर इतनी बुद्धि तो होनी ही चाहिये कि 'मूर्ति' और 'तनु', दोनों एक ही अर्थ के

वाचक हैं। मूर्ति माने भी शरीर होता है और तनु माने भी शरीर होता है, तो एक ही अर्थ को बताने के लिये दो शब्दों का प्रयोग गोस्वामी जी क्यों करेंगे? इसलिये यहाँ 'तनु' शब्द का प्रयोग उचित नहीं है, यहाँ 'तनु' शब्द के स्थान पर 'जनु' शब्द का प्रयोग उचित है—

भरतहि कहहिं सराहि सराही। राम प्रेम मूरति 'जनु' आही।।

भरत जी महाराज, साक्षात् राम प्रेम के अवतार हैं। रामप्रेमावच्छिन्न अभिधानात्मक भावनानुकूल रामप्रेमावच्छिन्न सम्वित्तुप्रकारक सम्विदानन्द का नाम भरत हे। इसलिये राम प्रेम ही भरत है।

अब, आप ध्यान रखिये कि जो मैं 'उज्ज्वल नीलमणि' की चर्चा कर रहा था, तो आप सोच रहे होंगे कि जगद्गुरु जी, विषय से बहक गये पर ऐसा नहीं है। जिस राम प्रेम की मैं चर्चा कर रहा हूँ, इसी प्रेम को 'उज्ज्वल नीलमणिकार' श्रीलरूपगोस्वामी जी ने '**काम**' कहा है—

प्रेमैवगोपरामाणां काम इत्यगमत्प्रथाम्।

गोपियों के निश्छल, निर्मल, निष्कलङ्क, निर्दोष, निरुपद्रव, निश्शेम, निष्कम्प, निष्प्रकारक, निर्लेप, निर्वाण, निर्मोह, निरद्रोह विशुद्ध भगवत्प्रेम ने ही 'काम' की प्रथा प्राप्त कर ली, अतः उसे 'काम' कहा गया। गोपियों के प्रेम को इसलिये 'काम' कहा गया क्योंकि तब तक प्रेम, प्रेम रहता है, जब तक उसे भगवान नहीं चाहते और जब हमारे प्रेम के लिए भगवान तरसने लग जाएँ, जब हमारे प्रेम की कामना भगवान को हो जाती है, तब उसको 'काम' कहते हैं। '**काम्यते भगवता यः स कामः।**' यही भरत हैं—

भरत सरिस को राम सनेही। जग जपु राम राम जपु जेही।।

ऐसा लगता है कि मेरी व्याख्या को सिद्ध करने के लिये ही गोस्वामी जी ने चौपाइयाँ लिखी हैं। अर्थात् जब हमारे प्रेम के रस को पीने के लिए भगवान इच्छा कर लें, तब जान लो कि अब ठीक है। हमसे एक व्यक्ति ने कहा कि गुरुजी, भगवान की सेवा के लिये हमने नौकर रखा है। हमने कहा कि सावधान! आज से भगवान की सेवा न किया करो। अरे! इस शरीर की उपयोगिता ही क्या है, जब यह भगवान की सेवा में भी नहीं आ सकता। शरीर की तभी तक उपयोगिता है जब तक यह भगवान की सेवा

में लगा रहे। इसलिये जब तक हो सके भगवान की सेवा अपने हाथ से करो। अपने हाथ से भोग लगाओ। इतनी भावना से भोग लगाओ की भगवान तरसने लगें। इसीलिये तो हम भरत को 'काम' कहते हैं कि सारा संसार तो राम, राम जपता है और राम जी, भरत, भरत जपते रहते हैं, इसीलिये भरत काम हैं। **'काम्यते भगवता'** कामदगिरि विहारी जी ही जिसकी कामना करें, यह तो वह **'काम'** हैं।

कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि हमारे रस को पाने के लिये भगवान तरसने लगते हैं। भगवान को भी स्वाद चाहिये। सब्जी में स्वाद तब आता है, जब उसमें ठीक से तेल डालते हैं और संस्कृत में तेल को स्नेह कहते हैं। जैसे स्नेह (तेल) से भोजन में स्वाद आता है, उसी प्रकार हमारे स्नेह से भगवान को भजन में स्वाद आता है। जैसे हम और आप स्नेह चाहते हैं, वैसे ही भगवान भी स्नेह चाहते हैं, पर भगवान को कड़ुवा वाला तेल नहीं चाहिये, उन्हें तो मीठा वाला तेल चाहिये। कड़ुवा तेल क्या है? यह संसार का जो प्रेम है, जैसे-पति प्रेम, पत्नी-प्रेम, पुत्र-प्रेम, पुत्री-प्रेम, रुपये पैसे का प्रेम, बँगले-कोठी का प्रेम है, यही कड़ुवा तेल है, इससे भगवान की छाती में जलन होती है। जब ये सब सांसारिक प्रेम छोड़कर केवल उन्हीं से प्रेम हो जाए, तब वही मीठा तेल है और मीठे तेल की सब्जी खाकर भगवान चकाचक प्रसन्न हो जाते हैं। भगवती कर्माबाई कोई मन्त्र जानती थीं क्या? **'पुरुष सूक्त'** थोड़े ही जानती थीं। अरे, वो तो कुछ नहीं जानती थीं। **'नाभ्यासीद्'** कहना उनको थोड़े ही आता था। वे तो जाट की बेटी थीं, बाल-विधवा थीं। उन्होंने तो मारवाड़ी गीत का एक छोटा सा टुकड़ा बना रखा था और उसे वे बड़े प्रेम से गाती थीं—

जीमो जीमो म्हारा मदन गोपाल, कर्माबाई रो खीचड़ लो।
मैं आरा चरणा री दासी, थे प्रभु घट घट अन्तरवासी
जीमो जीमो म्हारा जसुदा रा लाल, कर्माबाई रो खीचड़ लो।

इतना रस भगवान को उस खिचड़ी में आया कि जगन्नाथ जी को कर्माबाई की खिचड़ी के बिना कुछ अच्छा नहीं लगता और सबसे बड़ी बात तो यह थी कि जब कर्माबाई का परमपद हुआ, तो जैसे अपनी माँ के बिना छोटा बच्चा रोता है, उसी प्रकार जगन्नाथ जी तीन दिन तक 'अम्माँ, अम्माँ' कहकर रोते रहे। कितना भाव और भक्त वात्सल्य है, हमारे प्रभु का! जिसके लिये भगवान रोने लग जाएँ, जिसको पाने के लिए भगवान को तलफ लग जाए, वह धन्य है।

सबहिं कहावत राम के सबहिं राम की आस।
राम कहत जेहिं आपनो तेहि भज तुलसीदास।।

वह भजनीय है, जिसे राम जी अपना कहते हैं। इसलिये

भरत सरिस को राम सनेही। जग जपु राम राम जपु जेही।।

इसलिये भरत 'काम' हैं, जगद्गुरु ने यह प्रस्थापना की है। मैं हँसी-खेल में थोड़े ही कह रहा हूँ, शास्त्रों का चिन्तन करके गौरव पूर्वक कह रहा हूँ कि मैंने बिना मूल का कुछ लिखा नहीं और बिना अपेक्षा के कुछ कहा नहीं—

'नामूलं लिख्यते किञ्चिन्नानपेक्षितमुच्यते।'

ध्यान रखिये कि यह भरत रूप 'काम' इतना सुन्दर है कि जब ये चित्रकूट में आया, तभी इस 'चित्रकूटगिरि' का नाम 'कामदगिरि' पड़ा। अभी तक, बहुत से लोगों को यह ज्ञान नहीं है कि चित्रकूट क्या है और कामद क्या है? समस्या इसी बात की है कि हम अभी तक चित्रकूट को समझ नहीं पाए और एक बात सही यह भी है कि जिस दिन चित्रकूट हमारी समझ में आ जाएगा, उसी दिन हमारे मन से त्रिकूट चला भी जाएगा। काम, क्रोध और लोभ का कूट ही त्रिकूट है और यह त्रिकूट इसलिये नहीं जा रहा है क्योंकि हमें चित्रकूट समझ में आ नहीं रहा है और चित्रकूट समझ में न आने का यह कारण है कि हमारा अहङ्कार, चित्रकूट समझाने वाले सन्तों के चरणों में विनम्र भाव से बैठने के लिये स्वीकृति नहीं देता। सन्तों के सामने बैठना कैसे चाहिये, इसका हमको ज्ञान नहीं है। अब मैं, आपको समझाता हूँ कि 'चित्रकूट' क्या है और 'कामद' क्या है? पहले यह 'कामद' नहीं था, जिसकी हम परिक्रमा करते हैं। यह एक विन्ध्याचल का शिखर है और इस शिखर का नाम है चित्रकूट। हम आप जहाँ बैठते हैं, वह चित्रकूट की एक 'उपत्यका' है। पहाड़ की निचली वाली भूमि को हम 'उपत्यका' कहते हैं और पहाड़ की ऊँची वाली भूमि को 'अधित्यिका' कहते हैं। जिनकी हम परिक्रमा करते हैं, इन्हीं का नाम 'चित्रकूट' है।

उदय अस्त गिरिवर कैलासू। मन्दरु मेरु सकल सुर बासू।।
सैल हिमाचल आदिक जेते। चित्रकूट जसु गावहिं ते ते।।

यह एक प्रतापी पर्वत है। यह कोई ऐसा वैसा पर्वत नहीं है। मैं किसी की निष्ठा नहीं डिगा रहा हूँ, पर सत्य कहने में सङ्कोच नहीं करूँगा कि जब हम गोवर्धन जी में

गिरिराज जी की परिक्रमा करते हैं, तो लगभग तीन, चार मील तक ऐसा प्रकरण आता है, जहाँ जल्दी दर्शन ही नहीं होते। बीच में सड़क बन जाने से खून खौल जाता है कि हम तो श्रद्धा से परिक्रमा करें और हमारे बीच से मोटर गाड़ी जाए पर हमारे चित्रकूट में किसी माई के लाल का साहस नहीं हुआ जो इसे तोड़ सके। **'कामदेश्वर भगवान शैल शृंग भवभङ्ग** हेतु हैं। उन्होंनें आक्रामकों को चुनौती दी, जिससे इनमें राजमार्ग नहीं बनाया जा सका। प्रारम्भ से प्रारम्भ करो तो पूर्व मुखारबिन्द से लेकर पूरे दर्शन होते हैं। श्रावण मास में भगवान कामद जब हरे-भरे हो जाते हैं तो इतने सुन्दर लगते हैं मानों भगवान ने हरा भरा मुकुट पहनकर, इन पाप रूप जन्तुओं को मारने के लिये मृगया वेष धारण किया है। जब तक यहाँ भरत जी नहीं आए थे, तब तक इन्हींका नाम था चित्रकूट, पर जब काम रूप भरत जी यहाँ पर आ गए तो इनका नाम पड़ गया **'कामद'** **'कामं भरतं ददाति इति कामदः'**

कामद भे गिरि राम प्रसादा। अवलोकत अपहरत विषादा।।

यह 'काम' बहुत सुन्दर है। एक बार किसी महानुभाव ने मुझसे पूछा कि गुरु जी, गीता जी में चार प्रकार के भक्तों का वर्णन है—

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।।

गीता/७/१६

आप मुझे यह बताइये कि आप इनमें से भरत जी को क्या मानते हैं?

मैंने सहजता से कहा कि इन चारों में से मैं भरत जी को कुछ नहीं मानता।

उन महानुभाव ने कहा कि फिर आप उन्हें क्या मानते हैं?

मैंने कहा कि देखो, वहाँ प्रतिज्ञा है कि यहाँ मैं उनको गिना रहा हूँ, जो मुझको भजते हैं। अब, जो मुझको भजते हैं, (आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी) उनको तो मैंने गिना दिया पर जिनको मैं भजता हूँ, उनको नहीं गिनाया।

'चतुर्विधा भजन्ते मां किन्त्वहं यान भजामि तान्न गणयामि।'

इसलिये—'जग जपु राम राम जपु जेही,' जिनके भक्त भगवान स्वयं हैं। भगवान स्वयं, रामावतार में भरत के और कृष्णावतार में गोपियों के भक्त हैं। रामावतार में देखिये—

भरत सरिस को राम सनेही। जग जपु राम राम जपु जेही।।

अब, कृष्णावतार में देखिये—

एवं मदर्थोज्झितलोकवेद-
स्वानां हि वो मय्यनुवृत्तयेऽबलाः।
मया परोक्षं भजता तिरोहितं
मासूयितुं मार्हथ तत् प्रियं प्रियाः।

१०/३२/२१

इसलिये, भगवान, भरत और गोपियों को भजते हैं और अतएव भगवान ने भरत और गोपियों की चर्चा यहाँ नहीं की, पर बिना भरत का नाम लिये उनकी गीता कैसे पूरी हो जाती? इसलिये बार-बार 'भरतर्षभ' कहकर, भरत का नाम ले ही लेते हैं। वे कहते हैं कि हे अर्जुन! 'भरतः ऋषभः यस्य' अर्थात् तुम्हारे लिये भरत श्रेष्ठ होने चाहिये। यदि तुम्हें कुछ करना है, तो भरत का अनुगमन करो। जिस प्रकार भरत जी ने मेरी आज्ञा का पालन किया, उसी प्रकार मेरी आज्ञा का पालन करके यदि युद्ध करोगे, तभी तुम्हारा कल्याण होगा। जो गुरु और गोविन्द के वाक्य में हस्तक्षेप करे, वह शरणागत नहीं हो सकता। आदेश में हस्तक्षेप नहीं किया जाता। यदि गुरुदेव ने कहा कि सूर्यनारायण नीले हैं, तो यही कहो कि हाँ सरकार! यदि श्वेत कहा तो यह हमारी गलती थी। जब भगवान ने पूरी गीता कह डाली पर एक स्मरण शेष था। ढूँढते रहे कि 'ब्रज' का नाम कब लूँ? अन्त में, जाते-जाते, पूरी गीता का अन्तिम श्लोक पढ़ा कि—

सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।।

गीता १८/६६

आप कहेंगे कि गुरु जी, 'व्रज' माने तो जाना होता है, ब्रज का नाम यहाँ कहाँ लिया?

हम कहते हैं कि लिया क्योंकि यहाँ 'आचार क्युप् प्रत्ययान्त है। जैसे-पिक इव आचरति पिकति, वैसे ही व्रज इव ओचरति इति व्रजति और व्रजजीति व्रज। व्रज इव आचर। हे अर्जुन! सम्पूर्ण धर्मों को छोड़कर, मेरी शरण में उसी प्रकार चले आओ, जैसे ब्रज की गोपियाँ गई थीं—**'ब्रजैव आचरत्'**। जिस प्रकार गोपियों ने सबको छोड़ दिया, उसी प्रकार मेरी शरण में आओ। एक साथ दोनों काम तो नहीं होंगे कि धान भी कूटो

और काँख भी ढकी रहे।

दो कि होइ इक सङ्ग भुआलू। हँसब ठठाइ फुलाउब गालू।।

दोनों एक साथ तो नहीं होंगे क्योंकि दोनों एक दूसरे के विरोधी हैं। हाँ, यदि एक होगा तो दूसरा भी हो जाएगा। जैसे–वृक्ष के मूल का सिञ्चन करो तो पत्ते भी हरे हो जाएँगे, उसी प्रकार यदि भगवान की शरण में चले जाओ तो घर भी चकाचक हो जाएगा और यदि यह कहो कि घर को लेकर भगवान के यहाँ जाएँ तो गड़बड़ हो जाएगा।

'काम' कितना एकाङ्गी है। देखिये, अयोध्या का राज्य प्रासाद है। हमारी बड़ी राजमाता जी, आज राज्यसभा की अध्यक्षा हैं। चक्रवर्ती जी के निधन पश्चात् यह विचार किया जाने लगा कि बिना राजा के राज्य सभा का सञ्चालन कैसे होगा? भरत अभी राजा बनने को तैयार नहीं है। तब वसिष्ठ जी ने एक व्यवस्था दी कि राज्यसभा का कार्यवाहक अध्यक्ष बड़ी राजमाता जी को बना दिया जाए। बड़ी राजमाता अर्थात् भगवती कौसल्या जी, आज पहली बार राज्यसभा की अध्यक्षता कर रही हैं। मन्त्रीगण उपस्थित हैं तथा श्री भरत जी भी उपस्थित हैं। कार्यवाही का प्रारम्भ। सबके यहाँ शोक प्रस्ताव रखा जाता है, चक्रवर्ती जी के यहाँ 'विशोक प्रस्ताव' रखा गया। शोचनीय वह होता है, जो भगवान का भक्त नहीं होता। चक्रवर्ती जी ने तो इतना बढ़िया भजन किया है कि और कोई कर ही नहीं सकेगा–

सोचनीय नहीं कौसलराऊ। भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ।।

वसिष्ठ जी ने कहा कि मैं 'विशोक प्रस्ताव' रख रहा हूँ। महाराज के प्रति कोई शोक करने की आवश्यकता नहीं है, और अब मैं बड़ी राजमाता जी की आज्ञा से, इस राज्यसभा में प्रस्ताव करता हूँ कि भरत अयोध्या का राज्य सिंहासन स्वीकार कर लें।

प्रस्ताव बहुत सुन्दर था और उसकी व्याख्या भी बहुत सुन्दर थी। वसिष्ठ जी ने अपना मन्तव्य प्रकट करते हुए बहुत स्पष्ट शब्दों में कहा कि–चक्रवर्ती जी ने तुम्हें राज्य–पद दिया है, अतः उसे तुम्हें स्वीकारना चाहिये। पहला प्रस्ताव यह है, और उसमें विकल्प भी है कि यदि तुम सार्वकालिक राज्यसत्ता स्वीकार नहीं कर सकते, तो जब तक श्री रामचन्द्र जी अयोध्या वापस लौटकर नहीं आ जाते, तब तक इन चौदह वर्षों तक तुम राज्य सँभालो!

वसिष्ठ जी के इस प्रस्ताव का मन्त्रियों ने समर्थन किया और अपने अध्यक्षीय

भाषण में, बड़ी राजमाता जी से अनुमोदन किया–

कौसल्या धरि धीरज कहई। पूत पथ्य गुरु आयसु अहई।।

कौसल्या जी ने धैर्य धारण करके कहा कि गुरु की आज्ञा पथ्य है। **'पथोऽनिपेतं पथ्यम्'** अर्थात् मार्ग से विचलित न होना। गुरुदेव जो कहें, उसे मान लेना चाहिये। अत: आज्ञा का पालन करो!

अब जरा भरत जी का उत्तर देखिये कि वह कितना सुन्दर है! अब तक मानस जी के प्रवचनों में यही कहा जाता है कि भरत जी ने गुरुजी की आज्ञा का उल्लङ्घन किया। यह तो बहुत अन्याय किया गया। यदि भरत जी ने गुरु जी की आज्ञा का उल्लङ्घन ही किया तो आगे चलकर यह पंक्ति कैसे लिख दी गई–

पूरन राम सप्रेम पियूषा। गुरु अपमान दोष नहिं दूषा।।

अर्थात् चन्द्रमा ने जब गुरु का अपमान किया तो उस अपमान के दोष से चन्द्रमा दूषित हो गया पर भरत रूप चन्द्रमा, गुरु के अपमान से कभी दूषित नहीं हुआ। आप सोचिये, गुरु का सबसे बड़ा अपमान क्या है? गुरु का सबसे बड़ा अपमान है, उसकी आज्ञा का उल्लङ्घन करना। अब यहाँ परस्पर विरोध प्रतीत होता है। अब यहाँ यह प्रश्न है कि यदि गुरु का अपमान नहीं है तो यह क्या हुआ, मैं तो कहूँगा कि गुरु का सम्मान हुआ। अब आप यहाँ विचार करिये कि भरत जी महाराज ने, वसिष्ठ जी से एक प्रश्न किया कि गुरुजी, आप एक बात बताइये कि आप यह जो बोल रहे हैं कि–

राय राजपदु तुम्ह कहँ दीन्हा। पिता बचन फुरि चाहिय कीन्हा।।

यह कहते हुए मैं सङ्कुचित नहीं हो रहा हूँ और रामचरितमानस में मेरी यह अपनी प्रस्थापना है। **'इयं मदीया वैयक्तिकी प्रस्थापनां'**

भरत जी ने कहा–गुरु जी, पिताजी ने मुझे क्या दिया?

गुरुजी ने कहा–पिताजी ने तुम्हें राजपद दिया है।

भरतजी ने कहा–गुरुदेव आज आप शोक में हैं–

बहुरि लखन सिय प्रीति बखानी। सोक सनेह मगन मुनि ज्ञानी।।

इस समय जब आप शोक और स्नेह में हैं तो **'सोक सनेह सयानप थोरा'**, शोक और स्नेह में चतुरता हल्की पड़ जाती है, इस कारण आप ठीक नहीं बोल पा रहे हैं।

आपको प्रभु के प्रति इतना शोक हो गया है कि आप सर्वज्ञता का प्रयोग नहीं कर पा रहे हैं, पर इसमें आपका दोष नहीं है।

भरत जी, यहाँ पर अपने गुरु की अल्पज्ञता नहीं कह रहे हैं। वे तो यही कहते हैं कि राम लक्ष्मण और सीताजी के प्रति आपको अगाध प्रेम है।

इतना कहते कहते तो वसिष्ठ जी फूट फूटकर रोने लगे।

भरत जी ने कहा—'गुरुदेव, मैं अपनी माँ से पूछकर बता रहा हूँ कि पिताजी ने क्या कहा था?

कैकेई जी ने कहा कि यह तो महल की बात है इसलिये गुरुदेव कह नहीं पा रहे हैं। मैं बताती हूँ बेटे! तुम्हारे पिताजी ने मुझसे यही कहा था कि मुझे भरत को युवराज बनाना है।

रिसि परिहरि अब मङ्गल साजू। कछु दिन गए भरत जुबराजू।।

भरत जी कहा—गुरुदेव, अब तो यह निश्चित हो गया है कि पिताजी ने मुझे 'राजपद' न देकर 'युवराजपद' दिया है। मैं युवराज पद लेने को तैयार हूँ पर एक बात यह बताइये कि क्या संविधान में यह है कि राजा के चुनाव के पहले ही युवराज का चुनाव कर लिया जाए? क्या कभी ऐसा होता है कि राष्ट्रपति के चुनाव से पहले उपराष्ट्रपति का चुनाव कर लिया जाए? पिताजी ने यदि मुझे युवराज पद दिया है तो मैं उसे लेने को तैयार हूँ परन्तु पहले आप चित्रकूट चलकर राघव जी को राजा बना दीजिये, तब मैं युवराज पद सहर्ष सवीकार कर लूँगा।

अब आप ही बताइये कि यहाँ पर भरत जी ने गुरु जी का अपमान किया या सम्मान किया। रामचरितमानस तो त्याग का विषय है, साधना का विषय है।

भरत जी ने दूसरी बात यह कही कि गुरुदेव, आप मुझको यह बतलाइये कि यह राज्य मुझको कब तक के लिये देना चाह रहे हैं? आप मुझे सार्वकालिक शासक बना रहे हैं या कार्यकारी?

तब गुरुजी ने कहा—

सौंपेहु राज राम के आए। सेवा करेहु सनेहु सुहाए।।

राम जी के आने पर तुम, उनको राज्य सौंप देना और प्रेम से उनकी सुहावनी सेवा

करना, अथवा हे राम के प्रेम से सुहावने लगने वाले भरत, तुम उनकी सेवा करना। 'सनेह सुहाए' भरत जी का विशेषण है।

अब, भरत जी ने पूछा कि गुरुदेव! यदि मुझे सदा के लिए राजा नहीं बनना है तो क्या यह कोई रीति है कि जब तक भगवान भोग न लगाएँ तब तक पुजारी जी ही उस थाली में भोजन कर लें? क्या यह कोई रीति है कि जब तक जगद्गुरु जी न आएँ तब तक विद्यार्थी ही उनके सिंहासन पर बैठ जाएँ? यदि उस सिंहासन पर चेला बैठ जाएगा तो क्या वह सिंहासन जगद्गुरु के योग्य रह जाएगा? प्रभु के पात्र में यदि पुजारी भोजन कर लेगा, तो क्या वह पात्र, प्रभु के प्रसाद पाने योग्य रह जाएगा? इसी प्रकार पहली बात तो यह है कि मुझे सार्वकालिक राजा बनना नहीं है और यदि जब तक राजा जी नहीं आएँगे, तभी तक के लिए यदि आप मुझे राज्य सत्ता सौंपेंगे तो राम जी से पहले मैं उस सिंहासन पर बैठूँगा, तो क्या वह सिंहासन बाद में रामजी के योग्य रह जाएगा? क्या यह आर्य परम्परा है? आर्य परम्परा तो यहाँ तक कहती है कि यदि धोखे से गुरु जी के चरण में, शिष्य का चरण छू जाए तो उसको दस बार दण्डवत कर लेना चाहिये और यदि गुरुजी की पादुका शिष्य के चरण से छू जाए तो प्रायश्चित कर लेना चाहिये। हे प्रभो! मेरे बैठने से यह सिंहासन अशुद्ध हो जाएगा, और दूसरी बात यह है कि जब कीचड़ में हाथ डालकर, हाथ धोना ही पड़ेगा तो इससे अच्छा तो यही है कि कीचड़ में हाथ डाला ही न जाए—

प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरात्संर्शनं वरम्।

अब तीसरा, बहुत अच्छा पक्ष है।

भरत जी ने कहा—प्रभो! आप मुझे क्या दे रहे हैं?

गुरुजी ने कहा—मैं तुम्हें राज्य दे रहा हूँ।

भरतजी ने कहा—यह राज्य कौन सा है? जानते हैं आप? यह राज्य संसार का है और यह संसार बेर के फल के समान है—

गुरु बिबेक सागर जगु जाना। जिन्हहिं बिस्व कर बदर समाना।।

यह संसार का राज्य तो बेर का फल है और बेर का फल पथ्य नहीं होता—

धात्री फलं भवेत् पथ्यं कुपथ्यं बदरीफलम्।

आँवले का फल पथ्य होता है और बेर का फल कुपथ्य है। बड़ी माताश्री ने कहा कि '**पूत पथ्य गुरु आयसु अहई**', भरत जी ने कौसल्या जी से कहा कि, यह पथ्य नहीं है। आप आयुर्वेद नहीं जानतीं, यह पथ्य नहीं, यह तो कुपथ्य है।

कौसल्या जी ने कहा कि यह किसको दिया जाए?

भरतजी ने कहा—मैय्या, मैं तो केला हूँ।

कौसल्या जी ने कहा—वह कैसे?

भरत जी ने कहा—केले की कोट में केला ही होता है न! जब मेरी माँ कदली है तो मैं भी कदली हूँ। '**तन पसेउ कदली जिमि काँपी,** और केले और बेर का सङ्ग नहीं निभा करता। केले के साथ बेर रखने पर गड़बड़ होगा क्योंकि बेर हिलेगा तो उसके अङ्ग फट जाएँगे—

कह रहीम कैसे निभे केर बेर को सङ्ग।
वह डोलत रस आपने, वाको फाटत अङ्ग।।

तो हे प्रभो! वह राज्य रूप बेर मेरे अङ्गों को फाड़ डालेगा। हे सरकार! ये बदरी का पेड़ तो बदरी नारायण को ही चाहिये, मुझे नहीं चाहिये।

चौथा पक्ष, भी बड़ा मधुर है।

भरत जी कहते हैं कि गुरुदेव, मैं आपकी बात टालूँगा नहीं। आप यह बताइये कि पिताजी ने मुझे क्या दिया है?

वसिष्ठ जी ने कहा—'**राय राजपद तुम्ह कहँ दीन्हा।**'

भरत जी ने कहा—गुरुजी, आपने बिल्कुल ठीक कहा है कि पिताजी ने मुझे 'राजपद' दिया है पर आपकी ही कृपा से 'राजपद' शब्द में मुझे तत्पुरुष और बहुब्रीहि ये दो समास भासित हो रहे हैं।

राज्ञः पदं राजपदम् अर्थात् राजा के चरण को राजपद कहते हैं।

द्वितीय समाज व्यधिकरण बहुब्रीहि है—**राज्ञः पदं यस्मिन्** अर्थात् जिस पर राजा का चरण विराजमान होता है, उस पादुका को भी राजपद कहते हैं।

भगवन! इन दो समासों से मेरे पिताजी ने दो सङ्केत दिये हैं

१. मेरे पिताश्री का सङ्केत है कि भरत कर्मधारय समास से सङ्केतित अयोध्या के राजपद को छोड़कर श्री चित्रकूट में विराजमान राजा श्रीराम के पद अर्थात् चरण को स्वीकार कर लेना। यही तुम्हारी पैतृक सम्पत्ति है, क्योंकि मैं यानी चक्रवर्ती दशरथ जी ने जीवन पर्यन्त श्रीराम चरण से ही प्रेम किया है—

बन्दउँ अवध भुआलु, सत्य प्रेम जेहिं राम पद।
बिछुरत दीनदयालु प्रिय तनु तृन इव परिहरेउ।।

२. दूसरा सङ्केत यह था जिसे व्यधिकरण बहुब्रीहि समास से समझा जा सकता है कि हे भरत, यदि तुम्हें राजा श्रीराम के पद अर्थात् चरण उपलब्ध न हों, तब तुम राजपद अर्थात् 'राज्ञः पदं यस्मिन्', जिस पर राजा राम के चरण विराजते हैं, उस पादुका को ही ले आकर राजसिंहासन पर विराजमान करा देना, तुम उस पर कदापि नहीं बैठना।

इस प्रकार गुरुदेव के 'राजपद' शब्द से श्रीरामचरण तथा रामचरण पादुका को अपनी पैतृक सम्पत्ति मानकर उन्हें ही पाने के लिये श्री भरत चित्रकूट आ रहे हैं।

भरत चले चित्रकूट हो रामा राम को मनाने यहाँ भगवत् दिदृक्षा, जिसे हम पहले मुमुक्षा कह चुके हैं 'काम' पुरुषार्थ है और वही भगवान श्रीराम के दर्शनों की इच्छा ही सम्प्रति श्रीभरत का आकार ले चुकी है। यही काम पुरुषार्थ है इसकी क्रिया व्याकुलता है जो इस समय श्रीभरत की पत्नी माण्डवी बन चुकी है क्योंकि व्याकुलता के बिना भगवान की दर्शनेच्छा पुष्ट नहीं होती। इधर श्री माण्डवी श्री भरतभद्र के श्रीराम प्रेम महायज्ञ में सफल धर्मपत्नी के रूप में पूर्ण सहयोग करती हैं। इसकी विस्तृत व्याख्या कल।

मुदित अवधपति सकल सुत बधुन्ह समेत निहारि।
जनु पाए महिपाल मनि क्रियन्ह सहित फल चारि।।

।।सियावर रामचन्द्र की जय।।

सीताराम जय सीताराम। सीताराम जय सीताराम

सप्तम वाक् पुष्पाञ्जलि सम्पन्न

।।श्री राघवः शन्तनोतु।।

।। श्रीमद्राघवो विजयतेतराम् ।।

अथ अष्टम वाक् पुष्पाञ्जलि

श्री तुलसीपीठ आमोदवन, चित्रकूट

दिनाङ्क २५.३.९९

मङ्गलाचरण

आगच्छ वायुसूनो त्वं मया रामायणी कथा।
प्रारभ्यते भव श्रोता गृहाणासनमुत्तमम्।।

रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे।
रघुनाथाय नाथाय श्रीसीतायाः पतये नमः।।

श्रीसीतानाथ समारम्भां श्रीरामानन्दार्यमध्यमाम्।
अस्मदाचार्य पर्यन्तां वन्दे श्रीगुरुपरम्पराम्।।

श्री हरिगुरुवैष्णवचरणकमलेभ्यो नमः।

सीताराम जय सीताराम। सीताराम जय सीताराम।
सीताराम जय सीताराम। सीताराम जय सीताराम।।

राम बाम दिसि जानकी लखन दाहिनी ओर।
ध्यान सकल कल्यानमय सुरतरु तुलसी तोर।।

।।लखन सिय रामचन्द्र की जय।।

मुदित अवधपति सकल सुत बधुन्ह समेत निहारि।
जनु पाए महिपाल मनि क्रियन्ह सहित फल चारि।।
बाल दो० ३२५

सियावर रामचन्द्र भगवान की जय।

परिपूर्णतम परात्पर परमात्मा भगवान मर्यादा पुरुषोत्तम, मैथिली मनोरम, अशरण शरण, परिकलित राजीव चरण, भक्त-भय-सङ्कट-शोकहरण, कारण-करण, तारण-तरण, सरयू तरल तरङ्ग विच्छालित पादारविन्द, निस्यन्दमान प्रेम मकरन्द, विलुब्ध निखिल मुनि मनो मिलिन्दवृन्द, वृन्दारकागण, जेगीयमान दिव्य गुण-गण-गौरव, भग्न-भक्त-रौरव, परिकलित-विशुद्ध-वैभव, अभिनव-जलधर-सुन्दर, निखिल गुणगणमन्दिर, भव-वारिधिमन्दर-मन्दर, समर-निहत-दशकन्धर, केशरिकन्धर, कोटि-कोटि मन्मथ-सुन्दर, हक्षान्मन्मथ-मन्मथ, कोटि-कोटि कन्दर्पदर्पदलन, सकल-कलाप-कलाप-कलन, परब्रह्म, जगदीश्वर, जगदात्मा, जगत् छरण्य, जगन्नियन्ता, जगत् स्वरूप, श्रीमद्कोसलभूप रघुनन्दन, प्रभु श्रीरामचन्द्र की नखमणि चन्द्रिका के मङ्गलमय आलोक में अब अष्टम पुष्प समर्पित।

आप सुन चुके हैं कि, मिथिला के मण्डप में आज भगवान श्री राघवेन्द्र दुलहा के रूप में विराजमान हैं। एक ओर जहाँ ब्राह्मणों की वेद-ध्वनि, दूसरी ओर लोकगीत, तीसरी ओर दीपमालिका और चौथी ओर दैवीय सम्पत्ति का एक अभूतपूर्व संघटन, ये सब कुछ मङ्गलमय हैं। चक्रवर्ती जी, चारों पुत्रों को, चारों पुत्रवधुओं के सहित निहारकर इतने प्रसन्न हो रहे हैं मानों आज उनको क्रियाओं के सहित चारों फल मिल गए हैं। फल तब तक स्थायी नहीं होते, जब तक उन्हें क्रियाएँ नहीं मिलतीं। बिना क्रियाओं के फलों का नष्ट होना, शङ्कित और सम्भव दोनों रहता है, इसलिये क्रियाएँ आवश्यक हैं। हम अपने व्याख्या के क्रम में कह चुके हैं कि दैन्यपूर्वक भगवद्कैंकर्य ही 'अर्थ' है और वही अर्थ हैं श्री शत्रुघ्नलाल जी। किङ्कर शब्द का अर्थ है—**'किं करोमि किं करोमि इति यः स्वामिनं पृच्छति सः किंकरः'** मैं क्या करूँ, मैं क्या करूँ, इस प्रकार जो निरन्तर स्वामी से पूछता रहता है, उसे किङ्कर कहते हैं। जो सेवक, स्वामी के बुलाने पर छिप जाए, वह किङ्कर थोड़े ही है। भरत जी ने हनुमान जी को भेंटा तो अपने को सेवक बताया—

अरिहुक अनभल कीन्ह न रामा।। मैं सिसु सेवक जद्यपि बामा।।

श्रीरामचरित मानस जी के अयो०, १८३ वें दोहे की छठवीं पंक्ति में भरत जी नेअपने को सेवक कहा पर हनुमान जी ने जब अपना परिचय दिया तो कहा—

दीनबन्धु रघुपति कर किङ्कर। सुनत भरत भेंटे उठि सादर।।

मैं दीनबन्धु रघुपति का किङ्कर हूँ, सेवक नहीं ध्यान रखिये, जो सेवा करता है, वह सेवक है और जो निरन्तर सेवा में सावधान रहता है, वो किङ्कर है।

इस प्रकार, दैन्यपूर्वक भगवद्कैङ्कर्य ही यहाँ का 'अर्थ' है और वही शत्रुघ्न जी हैं और उनकी 'क्रिया' 'सेवा', यही श्रुतिकीर्ति जी हैं।

सर्वोपद्रवशून्य, अनन्य निष्ठा सम्पन्न भगवद्भजन ही 'धर्म' है और वह हैं श्री लक्ष्मण जी और उनकी पत्नी हैं भगवती उर्मिला जी। वही इस धर्म की क्रिया 'श्रद्धा' हैं।

अब तीसरी व्याख्या 'भगवत् प्राप्ति इच्छा अर्थात् मुमुक्षा रूप काम भरत जी हैं और उनकी क्रिया है 'व्याकुलता' और यही हैं श्री माण्डवी जी। माण्डवी जी स्थूल रूप से तो श्री अयोध्या में रहती हैं पर व्याकुलता के रूप में वह भरत जी को कभी नहीं छोड़तीं। भमवद् विरह की वेदना में जब तलफन होती है, वही 'काम' मुमुक्षा है। जब मुमुक्षा में व्याकुलता आ जाती है तो चार चाँद लग जाते हैं। जब भरत जी की व्याकुलता बढ़ती है तो उनकी 'व्याकुलतावच्छिन्न भावना' दो काम करती है, वह जड़ को चेतन बना देती है और चेतन को जड़ बना देती है–

होत न भूतल भाउ भरत को। अचर सचर चर अचर करत को।।

अयो० दोहा २३८

इतनी बड़ी व्याकुलता कि जिसने जड़ को तो चेतन बना डाला और चेतन को जड़ बना डाला। जड़ों में चेतनता का संचार किया और पत्थर को भी पिघला डाला। रामायण जी में एक पंक्ति आई है

द्रवहिं बचन सुनि कुलिस पषाना। पुरजन प्रेम न जाइ बखाना।।

अयोध्याकाण्ड के दो सौ बीसवें (२२०) दोहे की इस पंक्ति पर जब विचार करते हैं तो हृदय के फटने की परिस्थिति बन जाती है। **'द्रवहिं बचन सुनि कुलिस पषाना'** यह बात क्यों कही गई है? जब कभी मुझे भाव नहीं समझ में आते हैं तो मैं गोस्वामी जी से पूछता हूँ कि अब आप ही मुझको बतलाइये, टीकाओं में तो कुछ मिल नहीं रहा है, तब जो भाव गोस्वामी जी ने मुझको बताया वो मैं आपसे निवेदन कर रहा हूँ–

बात ऐसी है कि बृहस्पति से प्रार्थना करने के लिये इन्द्र आये थे और जहाँ इन्द्र होंगे उनके हाथ में वज्र तो रहेगा ही, इसीलिये तो इन्द्र का एक नाम 'वज्रपाणि' भी है। कहते

हैं कि जब इन्द्र बृहस्पति से बात कर रहे थे और इधर भरत जी की व्याकुलता बढ़ रही थी। भरत जी के व्याकुलता भरे वचनों को सुनकर 'कुलिस पषाना' अर्थात् इन्द्र के हाथ में विराजमान वज्र के पत्थर भी पिघलकर रोने लग गये थे, तब इन्द्र ने कहा कि जब मेरे हाथ में रहने वाले वज्र के पत्थर पिघल रहे हैं तब क्या होगा? कुलिष के पाषाण पिघल रहे थे यहाँ 'तत्पुरुष समास' होगा।

भरत जी की यही 'व्याकुलता' ही माण्डवी जी हैं—जो उस 'काम रूप भरत' को 'राम' जी तक पहुँचाने में समर्थ हो पा रही हैं। 'मण्डयति इति माण्डवी', जो राम-प्रेम का मण्डन करती हैं, उसे माण्डवी कहते हैं। जब तक प्रेम में व्याकुलता न हो, तो प्रेम कैसा? **'प्रेम वियोगी ना जिये, जिये तो पागल होय'** प्रेम वियोगी जीता नहीं, और जीता है तो पागल हो जाता है।

एक बार रूपगोस्वामी जी के शिष्य बाजार जा रहे थे। उन्होंने रूपगोस्वामी जी से पूछा—बाबा! हम बाजार जा रहे हैं, कुछ लाना हो तो बताइये।

रूपगोस्वामी जी ने कहा—**''कृष्ण-भाव रस भाविता मतिः क्रीयतां यदि कुतोऽपि लभ्यते''** यदि कृष्णभाव से भीगी हुई बुद्धि को खरीद सको तो बाजार से ले आओ। भगवत्प्रेम में मतवाली बुद्धि ला सको, तो बाजार से ले आओ।

शिष्यों ने कहा—बाबा! उसके लिये पैसा कहाँ है?

रूपगोस्वामी जी ने कहा—''पागल! **'तत्र मूल्यमथलौल्यमेकलम्'** उसका मूल्य तो विकलता ही है, जितनी विकलता बढ़ेगी, छटपटाहट बढ़ेगी, उतना ही कृष्ण-प्रेम भी बढ़ेगा। जिसकी आँख में आँसू नहीं हैं, वह भगवत्प्रेम का अधिकारी नहीं हो सकता। इसलिये भगवान के प्रति जो व्याकुलता है, वही इस प्रेमापरपर्याय काम की क्रिया है और यह मेरी यहाँ नई प्रस्थापना है

आइये, देखते हैं कि यह प्रेम है कैसा, जिसे हमने 'भरत'कहा है। गोस्वामी जी कहते हैं—

१. **गुणरहितम्**-यह प्रेम सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुण से रहित है।

२. **कामनारहितम्**-इसमें कोई लौकिक कामना नहीं रहती।

३. **प्रतिक्षणवर्धमानम्**-यह निरन्तर बढ़ता है, घटता नहीं है।

४. **अविच्छिन्नम्**-इसको कोई काट नहीं पाता।

५. **सूक्ष्मतरम्**–यह प्रेम अति सूक्ष्म परब्रह्म से भी सूक्ष्म है।

६. **अनुभवरूपञ्च**–यह अनुभव रूप होता है।

अब आपको एक झाँकी की ओर ले चलते हैं। श्री भरत जी चित्रकूट की ओर जा रहे हैं। मार्ग में निषादराज से भरत जी की भेंट होती है। निषादराज के मन में यह शङ्का होती है कि भरत जी राघवेन्द्र जी के पास चतुरङ्गिणी सेना के साथ क्यों जा रहे हैं? यह सोचकर वे–

अस कहि भेंट सँजोवन लागे। कन्द मूल फल खग मृग माँगे।।
मीन पीन पाठीन पुराने। भरि भरि भार कहारन्ह आने।।

मानस, अयो-१९२

निषादराज भेंट सँजोने लगे। कन्द मूल फूल, ख़ग-मृग, मीन-पीन अर्थात् मछलियाँ, ये तीन प्रकार के उपहार वे भरत जी के लिये ले जा रहे हैं। सामान्यतः यह सन्देह होने लग जाता है कि कन्दमूल फल लिया तो ठीक किया खाने पीने के लिये लिया, खग-मृग ले आए, खेलने और मन बहलाने के लिये, अच्छे-अच्छे पशु-पक्षी चिड़ियाघर में रखने के लिये लाए पर मछली क्यों लाए?

मीन पीन पाठीन पुराने। भरि भरि भार कहारन्ह आने।

इस पर थोड़ा शास्त्रीय समाधान की चर्चा करूँ। पहला समाधान तो यह है कि इस पंक्ति को पढ़कर ऐसा नहीं समझना चाहिये कि वह मत्स्याहार करते थे। मीन अर्थात् मछली का आना शगुन माना जाता है–

सन्मुख आयो दधि अरु मीना। कर पुस्तक दुइ बिप्र प्रबीना।।

बाल० दो० क्र० २०३

दूसरी बात, मछली एक प्रेमी है–

जग जस भाजन चातक मीना। नेम प्रेम निज निपुन नबीना।।

बाल० २३४

तीसरी बात यह है कि निषादराज, मीन को ले आकर मत्स्यावतार का स्मरण करा रहे थे कि जैसे मत्स्यावतार में मीन रूप धारी भगवान ने, प्रलयसागर में डूबते हुए मनु को बचाया था, उसी प्रकार, इस बार आपने भी अयोध्यावासियों को, डूबते हुए शोक-सागर से बचा लिया। यह मेरा नवीन भाव है कि इस बार आपने मत्स्यावतार की भूमिका निभाई।

चौथा भाव यह है कि निषादराज जी, भरत जी का मनोवैज्ञानिक परीक्षण कर रहे थे। उन्होंने सोचा कि यदि भरत जी सात्विक होंगे तो कन्द-मूल, फल ले लेंगे, यदि रजोगुणी होंगे तो खग-मृग लेंगे, तब तो थोड़ा सा युद्ध करूँगा और यदि तमोगुणी होंगे तो मछली के ऊपर टूट पड़ेंगे, तब तो आसानी से मार डालूँगा पर भरत जी इन तीनों में से कुछ नहीं थे, सात्विक भी नहीं थे, राजस् भी नहीं थे और तामस भी नहीं थे। भरत जी तो गुणातीत हो चुके थे। इस प्रकार भरत जी ने तीनों प्रकार की भेंटें न स्वीकार करते हुए, भेंट लाने वाले को ही भेंट लिया।

ये चार समाधान तो मैंने मछली पर सुनाए अब एक और शास्त्रीय-समाधान कह रहा हूँ, आपको अच्छा लगेगा वास्तव में यहाँ-'**मीन पीन पाठीन पुराने**' में बहुब्रीहि हुआ है। वह भी बहुब्रीहि में '**अतद्गुण सम्विज्ञान बहुब्रीहि**' हुआ है तद्गुण सम्विज्ञान बहुब्रीहि नहीं। जैसे किसी ने कहा-'पीताम्बरो हरिः' इसका अर्थ हुआ-पीला है अम्बर जिसका ऐसे भगवान।

इसी प्रकार 'मीन-पीन' शब्द बहुब्रीहि में है तो इसका विग्रह इस प्रकार होगा-'**मीनाः पीनाः यस्मिन्**' अर्थात् मछली मोटे होते हैं, जिसमें, और मछली मोटे होते हैं जल में। इस प्रकार 'मीन-पीन' जल का पर्याय है। मछली मोटे होते हैं जिसमें, वह कौन सा जल है? क्या कुएँ का जल है? क्या कुएँ का जल लेकर आए, तो इसके उत्तर में कहते हैं कि 'पाठीन पुराने', अर्थात् 'पठितमेव पाठीनम्' और पुराने शब्द पुराणे का अपभ्रंश है अर्थात् जो पुराण में पढ़ा गया है, ऐसा जल लेकर आए। पुराण में कौन सा जल पढ़ा गया है—

गंगा गङ्गेति यो ब्रूयात् योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्व पापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति।

जो सौ योजन से अधिक दूरी पर होता हुआ भी गङ्गा-गङ्गा कहता है, वह सब पापों से मुक्त हो जाता है। पुराणों में इस प्रकार से गङ्गा जी का महत्व पढ़ा गया है। अतः इसका अर्थ यह हुआ कि गङ्गा जी की मध्यधारा से, जहाँ मोटे-मोटे मछली होते हैं, ऐसा सुन्दर जल बहँगियों में भर-भरकर कहार ले आए-'**भरि-भरि भार कहारन्ह आने**', वे मछली नहीं गङ्गाजल लेकर आए थे।

मीन पीन पाठीन पुराने। भरि भरि भार कहारन्ह आने।।

इस प्रकार, आज भेंट लेकर निषादराज, भरत जी के समक्ष उपस्थित हो रहे हैं।

धन्य है वह राम प्रेम! निषादराज को भेंट लेने के पश्चात् भी, वे राम प्रेम रूप भरत जी सन्तुष्ट नहीं हुए और निषादराज से एक बड़ी करुण बात कही–

पूँछेउ सखहिं सो ठाऊँ देखाऊ। नेकु नयन मन जरनि जुड़ाऊ।।

अयो० १९८

भरत जी ने निषादराज से कहा–भैय्या। वह स्थान दिखलाओ, जिसे देखकर मैं अपने हृदय और नयनों की जलन जुड़ा सकूँ अर्थात् शीतल कर सकूँ। भैय्या, शृङ्गवेरपुर का वह स्थान दिखाओ–

जहँ सिय राम लखन निसि सोए। कहत भरे जल लोचन कोए।।

अयो० १९८

आज भरत जी ने शृङ्गवेरपुर को देखा और जब निषादराज द्वारा बिछाई हुई चटाई पर उनकी दृष्टि पड़ी, जहाँ सीताजी की साड़ी के दो चार स्वर्ण बिन्दु पड़े थे–

कनक बिन्दु दुइ चारिक देखे। राखे सीस सीय सम लेखे।।

अयोध्या १९९

कितना मधुर दृश्य था! जब उन दो चार स्वर्ण बिन्दुओं को भरत जी ने देखा, तो उनको उठाकर अपने शीश पर रख लिया, मानों भरत जी ने कनक बिन्दुओं से यह प्रश्न किया कि क्यों रे कनक बिन्दुओं! तुमने सीताजी को छोड़ क्यों दिया, साथ में चले क्यों नहीं गए? तब उन कनक बिन्दुओं ने मानो उत्तर दिया कि महाराज, हम जाना तो चाहते थे पर सीताजी ने कहा, नहीं बेटे! तुम्हें हम एक उपहार दे रहे हैं कि तुम इसी चटाई में चिपके रहो। जब मेरे देवर भरत, राम प्रेम में तन्मय होकर आएँगे, तो तुम्हें, उनके सिर पर चढ़ने का सौभाग्य मिल जाएगा! उस सौभाग्य को पाने के लिये, इसी चटाई में हम चिपके रहे। इस परम महाभागवत ने पूरे वातावरण को व्याकुलतामय कर दिया। भरत जी की व्याकुलता का सबसे अच्छा उदाहरण है कि अचर को तो सचर कर डालते हैं और सचर को अचर कर डालते हैं।

भरत जी ने प्रयाग को देखा। सब लोग प्रयाग में नहाए–

विधि सितासित नीर नहाने। दिए दान महिसुर सनमाने।

अयो० २०४

राम-प्रेम की विलक्षणता देखिये कि कितना प्यारा है यह 'काम'।

सबने प्रयाग में स्नान किया, तब गुरुदेव ने कहा—बेटे, तुम स्नान नहीं करोगे?

भरत जी ने कहा–नहीं गुरुदेव, मैं त्रिवेणी में स्नान नहीं करूँगा।

गुरुदेव ने कहा—क्यों बेटे!

भरत जी ने कहा—गुरुदेव, इसी त्रिवेणी में सरस्वती रहती है। जिस सरस्वती के कारण मेरी माता की बुद्धि राम-विरुद्ध हो गई और यदि मैंने भी इसमें स्नान किया तो कहीं मेरी बुद्धि भी राम विरुद्ध न हो जाए, तब तो सब कुछ नष्ट हो जाएगा। कितना मधुर है यह भावपक्ष।

भरत जी ने दूर से ही हाथ जोड़ लिया।

'निरोधस्तु लोकवेदव्यापारन्यासः' यही लोकवेद का व्यापार न्यास है। भरत जी ने हाथ जोड़कर कहा कि हे तीर्थराज! आज मैं आपसे भीख माँग रहा हूँ

मागउँ भीख त्यागि निज धरमू। आरत काह न करइ कुकरमू।।

अयो० २०४

आज, अपना धर्म छोड़कर भीख माँग रहा हूँ। मैं क्षत्रिय हूँ और क्षत्रिय धर्म के अनुसार भीख नहीं माँगता!

दूसरी बात मैं रघुकुल का हूँ और रघुकुल के लोग देना जानते हैं पर लेना नहीं जानते।

तीसरा भाव तो बड़ा ही मनोहर है कि मैं वैष्णव हूँ और वैष्णव भगवान को छोड़कर, किसी से कुछ नहीं माँगता।

चौथा भाव यह है कि इस प्रयाग में मेरी दो-दो कन्याएँ हैं। गङ्गा जी भी हमारे कुल की कन्या हैं क्योंकि भगीरथ जी की कन्या हैं और यमुना जी भी हमारे कुल के प्रवर्तक सूर्यनारायण की कन्या हैं और कन्याओं के यहाँ जाकर कुछ दिया जाता है परन्तु मैं अभागा हूँ जो कन्याओं के यहाँ आकर, कुछ देने के अपेक्षा, उनसे कुछ माँग रहा हूँ। आज मैंने यह अपना धर्म छोड़ा-आज भरत जी उनसे माँग रहे हैं—

अरथ न धरम न कामरुचि गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदान न आन।।

अयो० २०४

यह देखिये काम की व्याख्या। '**प्रेमैवगोपरामाणाम् कामइत्गमत्प्रथाम्**। यहाँ 'काम' और कुछ नहीं है। भगवान के प्रति प्रेम, भगवान को पाने की तलफन, भगवत् प्राप्ति की इच्छा, यही यहाँ 'काम' है। भरत जी ने अर्थ, धर्म, लौकिक काम और मोक्ष, चारों को छोड़ा और तुरन्त सरस्वती जी ने प्रायश्चित किया कि भरत!

तात भरत तुम सब विधि साधू। राम चरन अनुराग अगाधू।।

अयो० २२२

यहाँ की शब्दावली बड़ी मधुर है। सरस्वती जी ने कहा कि हे भरत! तुम सब प्रकार से साधु हो। आज इस व्याकुलता ने तो अचर को भी सचर बना दिया है। जल से वाणी हुई। जल, जड़ है, चेतन हो गया और बोलने लगा '**तात भरत तुम सब विधि साधू।**'

रामायण जी में तीन प्रकार के साधु हैं, विभीषण केवल साधु हैं, रामजी सुठि साधु हैं और भरत जी सब विधि साधु हैं। वास्तव में साधु वही है जिसमें गृहासक्ति न हो, जो घर छोड़े। विभीषण ने घर छोड़ा, रावण की लात से, इसलिये वे साधु हैं। राम जी ने घर छोड़ा कैकेई की बात से अतः वे 'सुठि साधु' हैं और भरत जी ने लात से भी नहीं, बात से भी नहीं प्रत्युत घर छोड़ा अपने हृदय के आघात से, अतः भरत जी सर्व विधि साधु हैं–

चलत पयादेहि खात फल, पिता दीन्ह तजि राजु।
जात मनावन रघुबरहिं भरत सरिस को आजु।।

अयो० २२२

पूरे चित्रकूट को राम-मय करते हुए यह भगवत्प्रेम रूप काम, अब अपनी परिणित पर पहुँच चुका है और अब उसकी परिणित देखिये। हमारा चित्रकूट कितना सौभाग्यशाली है कि पहले तो चित्रकूट था, पर जब भरत जी आए तो यह चरित्रकूट बन गया। भाई-भाई का अनन्य प्रेम परिलक्षित होता है। आप जानते हैं कि सारे तीर्थों में तो पूर्णमासी का महत्व है, पर हमारे चित्रकूट में तो अमावस्या का विशेष महत्व है क्योंकि अमावस्या के दिन सूर्य-चन्द्रमा, एक साथ रहते हैं अर्थात्–'**अमा सह वसतः सूर्य चन्द्रो यस्यामि सा अमावस्या।**' जिस प्रकार हमारे चित्रकूट में राम रूप सूर्य और भरत रूप चन्द्रमा, एक साथ मिलते हैं, अतः हमारे यहाँ अमावस्या की पूजा होती है। यहाँ दीपावली इसीलिये पूजी जाती है। दीपावली माने दीपानां अवली अर्थात् दीपों की

पंक्ति। यहाँ बहुत से दीपक एक साथ जले। मुनियों का ज्ञान दीपक, भक्तों का भक्ति-दीपक, जापकों का राम नाम मणि दीपक (राम नाम मणि दीप धरू) इधर रघुकुल दीपक (रघुकुल दीपहि चले लवाई) उधर नित्य के रघुकुल दीपक भरत (जानेहु सदा भरत कुलदीपा) इस प्रकार ये पाँच-पाँच दीपक मिलकर यहाँ जले, अत: दीपों की अवली यहाँ आ गई इसलिये दीपावली यहाँ हो गई।

आप पूछ सकते हैं कि जगद्गुरु जी, इसे चित्रकूट क्यों कहते हैं?

संस्कृत में कूट का अर्थ होता है समूह। जैसे अन्नकूट माने अन्नों का समूह। वैसे ही चित्रकूट माने चित्रों का समूह। वास्तव में सीताजी जब यहाँ पर आईं तो उन्होंने चित्रकूट के हर पत्थर पर रामजी के चित्र बनाए तो **'चित्राणां कूटानि यस्मिन्'** अर्थात् जिसमें राम जी के चित्रों के समूह विराजमान हैं, उसे चित्रकूट कहते हैं। इस प्रकार हमारा यह चित्रकूट, राम जी के चित्रों का जीता जागता एलबम है। इस एलबल रूप चित्रकूट को भरत जी ने देखा तो–

सानुज सखा समेत मगन मन। बिसरे हरष सोक सुख दुख गन।
पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं। भूतल परेउ लकुटि की नाईं।।

यह चित्रकूट का बड़ा मार्मिक प्रसङ्ग है। इस कथा को वही कह सकता है, जो चित्रकूट की धरती से जुड़ता है। आज यह 'काम' अपनी अन्तिम परिणति को प्राप्त कर रहा है, राम को प्राप्त कर रहा है। श्री चित्रकूट में आकर भरत जी ने जब राघवेन्द्र जी को निहारा, तब माण्डवी रूपा व्याकुलता ने कहा, कि हे प्राणेश्वर, प्राणपति! अब रघुपति के चरण पकड़ लीजिये। मैं पहले भी कह चुका हूँ कि पत्नी उसी को कहते हैं, जो अपने पति को रघुपति तक पहुँचा देती है। उसे पत्नी कदापि नहीं कहते जो अपने पति को 'काम' का स्मरण कराती है, पत्नी तो उसे कहते हैं जो अपने पति को 'राम' का स्मरण कराती है। भरत जी से व्याकुलता रूपिणी माण्डवी जी ने कहा कि रघुपति के चरण पकड़ लो, और तब भरत जी, **'पाहि नाथ', 'पाहि गोसाईं'** कहकर लकुटि की भाँति पृथ्वी पर गिर पड़े–

पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं। भूतल परेउ लकुटि की नाईं।।

भरत जी रामजी के चरणों में न गिरकर, पृथ्वी पर क्यों गिरे, यह तो वही जानें पर उनकी कृपा से मुझे जो भाव सूझे हैं, वे दो चार भाव कह रहा हूँ। अब दो चार उत्प्रेक्षाएँ

देखिये—

१. पहला भाव यह है कि भरत जी को बहुत डर लगा कि मेरा शरीर बहुत दुर्बल हो गया है और दुर्बलता के कारण कठोर भी हो गया है और राघव जी के चरण बहुत कोमल हैं। यदि चरण पर गिरूँगा तो कहीं मेरे शरीर की कठोरता से उन्हें चोट न लग जाए, इसलिये—'**भूतल परेउ लकुटि की नाईं।**'

प्रेमी और कामी दोनों में ही विकलता और तन्मयता होती है पर इन दोनों में एकही अन्तर होता है कि प्रेमी को प्रेमास्पद का सुख इष्ट होता है और कामी का अपना सुख इष्ट होता है।

प्रेम कहते किसे हैं, रूपगोस्वामी जी ने अपने ग्रन्थ '**भक्तिरसामृतसिन्धु**' में लिखा है—

''सम्यङ्मसृणित स्वान्तो ममत्वातिषयाङ्कितः भावः स एव सान्द्रात्माबुधैः प्रेमा निगद्यते।''

समता की अतिशयता को ज्ञान और ममता की अतिशयता को प्रेम कहते हैं। प्रेम और ज्ञान में इतना ही अन्तर है। ज्ञान में-समंब्रह्म, समंब्रह्म, समंब्रह्म अर्थात् ब्रह्म सम है, ब्रह्म सम है, ब्रह्म सम है।

प्रेम में—मम ब्रह्म, मम ब्रह्म, मम ब्रह्म अर्थात्! ब्रह्म मेरा है, ब्रह्म मेरा है, ब्रह्म मेरा है। ज्ञान में भगवान सबके हैं और प्रेम में भगवान मेरे ही हैं। सबके होंगे, हम नहीं जानते पर भगवान मेरे ही हैं, यही प्रेम है।

भरत जी को लगा कि कहीं प्रभु को चोट न लग जाए। जैसे 'श्रीमद्भागवतम्' के दशम स्कन्ध के इकतीसत्वें अध्याय के उन्नीसवें श्लोक में जब गोपियों ने कहा—

यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु,
भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु।
तेनाटवीमटसि तद्व्यथते न किंस्वित्
कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः।।

श्रीमद्भा० १०/३१/१९

ये गोपी हैं। 'गोपी' शब्द में 'गो' का अर्थ हैं इन्द्रियाँ और 'पी' का अर्थ है पीना।

'गोभिः पिबति' अर्थात् जो अपनी इन्द्रियों से भगवान को ही पीती रहती हैं। जो अपने नयनों से रूपामृत पीती हैं, श्रवणों से वचनामृत पीती हैं, रसना से गानामृत पीती हैं, चर्मेन्द्रिय से स्पर्शामृत पीती हैं, नासिका से सौगन्ध्यामृत पीती हैं, वे गोपी हैं।

गोपी ने कहा—हे प्रभो! आपके इतने कोमल-कोमल चरण हैं, जिनको हम भयभीत होकर अपने वक्ष पर रखते हैं, उन्हीं को घसीटते हुए आप वृन्दावन में चल रहे हो? हमारी बुद्धि भ्रमित हो रही है और ममता की पराकाष्ठा कर दी! **'भवदायुषां न कहकर, हे प्रभो! भवान् आयुः यासाम्'** आप ही हमारी आयु हैं अथवा **भवति आयुर्यासां ताः भवदायुषः तासाम्',** आपमें हमारा जीवन है और आप हमारे जीवन हैं इसलिये हमारी बुद्धि को ये कल्पना करके ही चक्कर आ रहा है। इतनी ममता है!

इसलिये गोस्वामी जी ने कहा—

निन्दा अस्तुति उभय सम, ममता मम पद कञ्च।
ते सज्जन मम प्रानप्रिय गुन मन्दिर सुख पुञ्ज।।

भगवान के चरणों में ममता हो जाए, यह कितने बड़े सौभाग्य की बात है।

२.दूसरा भाव—**'पाहि नाथ कहि पाहि गुसाईं।'**

भरत जी पृथ्वी पर क्यों गिरे, इसका एक बड़ा करुण भाव था। उन्होंने विचार किया कि वह सेवक, सेवक नहीं, जो स्वामी को सङ्कोच में डाल दे। जो स्वामी को सङ्कोच में डाल दे, वह राक्षस है। **'दिव्यति इति देवः'** दिव् धातु का अर्थ है देना, अर्थात् जो देता है, उसे देवता कहते हैं। **'रक्षति सर्वं स्वार्थम् यः सः राक्षसः'** जो सब कुछ अपने लिये बचाकर रख लेता है, उसे राक्षस कहते हैं। यह नहीं होता कि जिसके पास अधिक अङ्ग हों, वही राक्षस है। आप कहेंगे कि रावण के दस मुख थे, इसलिये वह राक्षस है पर शेष नारायण के पास तो रावण के सिर से सौ गुना अधिक अर्थात् एक हजार मुख हैं पर उनको तो राक्षस नहीं कहा गया। इसलिये जिसके पास अधिक अङ्ग हैं, तो वह राक्षस है ऐसा नहीं समझना चाहिए। वास्तव में राक्षस वह है जो अपने व अपनों के लिये सब कुछ रख लेता है। बँगला, कार, घर-द्वार, सब कुछ मेरे लिये व मेरे बच्चों के लिये है, ऐसी धारणा करने वाला, एक मुख वाला होकर भी राक्षस है और सब कुछ दूसरों के लिए है, ऐसी धारणा करने वाला अनन्तमुख वाला होकर भी देवता है।

भरत जी सोचते हैं कि वह सेवक नहीं, जो अपने स्वामी को सङ्कोच में डाल दे—

जो सेवक साहिबहि सँकोची। निज हित चलइ तासु मति पोची।।

अयो० २६८

भरत जी ने सोचा कि अपने स्वामी को सङ्कोच में नहींडालूँगा। मान लो, कि प्रभु यदि उठाना नहीं चाह रहे हों और मैं उनके चरणों पर पड़ जाऊँगा, तो प्रभु सङ्कोच में पड़कर, मुझे उठा लेंगे, तो अपराध हो जाएगा। अत: पृथ्वी पर गिर रहा हूँ, मन होगा तो उठाएँगे, नहीं तो चित्रकूट की तलहटी में पड़ा रहूँगा, मुझे कोई आपत्ति नहीं है पर अब चित्रकूट छोड़कर श्री अवध नहीं जाऊँगा। सेवक की सबसे बड़ी परिभाषा यही है कि वह अपने स्वामी को सङ्कोच में न डाले।

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो
भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्।
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते
जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक्।

श्रीमद्भा० १०/१४/८

अपना अपराध बोध करते हुए ब्रह्मा भगवान श्रीकृष्ण से कहते हैं—हे ब्रजेन्द्रनन्दन शिखिपिच्छमौले परमेश्वर! जो व्यक्ति अपने किये हुए कर्मों के प्रतिकूल फलों को मुस्कुराकर भोगता हुआ, उनमें आप श्री की कृपा कादम्बिनी की समीक्षा करता हुआ, आप श्री के चरण कमलों में, मनसा, वाचा, कर्मणा नमन करते हुए, आपके भजन रस में अपना जीवन-यापन करता है, वह मुक्ति के भी परम आश्रय चरणारविन्द आप श्री के परम प्रेमानुभव का उत्तराधिकारी बन जाता है।

प्रभु की कृपा की प्रतीक्षा करनी चाहिये और उन्हें सङ्कोच में नहीं डालना चाहिये। इसलिये-'**भूतल परेउ लकुटि की नाईं।**

३.तीसरा भाव—

भरत जी लकुटि की भाँति गिर रहे हैं। लकुटि का अर्थ होता है लाठी। मानो भरत जी ने कहा—सरकार! रघुवंश एक बाँस की कोट है, उसको तो कैकेई ने जला दिया—'**भइ रविवंश वेणु बन आगी**', जलते-जलते एक मैं लकुटि बच गया हूँ, मुझे सँभाल लीजिये, नहीं तो मैं भी जल जाऊँगा, इसलिये लकुटि की भाँति गिरे। तब भगवान राम ने कहा कि यदि तुम लकुटि हो तो मैं तुम्हें उसी प्रकार सँभालूँगा जैसे हमारे

दृष्टिहीन लोग अपनी लकुटि को सँभालते हैं। मुझे तो लगता है कि यही कारण है कि 'कृष्णावतार' में अपनी लकुटि प्रभु ने कभी नहीं छोड़ी, चित्रकूट के राम-भरत-मिलाप का स्मरण कर लेते थे कि हमारे भैय्या लकुटि की भाँति गिरे थे–

पाहि नाथ कहि पाहि गुसाईं। भूतल परेउ लकुटि की नाईं।।

वास्तव में, लकुटि की भाँति गिरा देखकर लक्ष्मण जी ने सङ्केत किया–

भरत प्रनाम करत रघुनाथा।

यह सुनते ही राम जी, उसी प्रकार उठे, जिस प्रकार कोई दृष्टिबाधित व्यक्ति सुनकर उठता है, देखकर नहीं।

उठे राम सुनि प्रेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषङ्ग धनु तीरा।।

अयो० २४०/८

रामचन्द्र जी यह सुनकर जब अधीर होकर उठे तो उनका वस्त्र कहीं चला गया, निषङ्ग कहीं चला गया, धनुष कहीं गिर गया, बाण कहीं गिर गया।

लक्ष्मण जी ने कहा–भैय्या ये आप क्या कर रहे हैं? आपके हाथ से धनुष बाण गिर रहा है और जब धनुष बाण गिरता है तो वीर की हार हो जाती है। आप हारेंगे क्या?

रामजी ने कहा कि उस पगले से तो मैं बचपन से हारता आया तो आज हार जाऊँगा तो क्या, **'हारेहु खेल जितावहि मोही।'**

राम जी के जीवन में बहार आ गई। चित्रकूट मेंजब वे अधीरता से उठे तो प्रथम तो राघवेन्द्र जी का उत्तरीय (दुपट्टा) गिर गया और वह इस कारण गिरा कि कदाचित् भरत मुझसे पूछ सकते हैं कि हे राघवेन्द्र, जब कोई दूर जाने लगता है तो अपने भाई बन्धुओं को बुलाकर मिल लेता है। आपने अपने जाने से पहले, मुझको क्यों नहीं बुलाया? आप मुझे बुलवा लेते, मुझसे मिलकर जाते तो कितना अच्छा होता।

'राघव अपने वन जाने से पहले मुझको बुलवा लेते।'

यदि भरत मुझसे यह प्रश्न करेंगे कि मैंने क्या अपराध किया था, तो मैं क्या उत्तर दूँगा? उत्तर न दे सकने की विवशता के कारण अपना उत्तरीय गिरा दिया।

तरकश इसलिये गिरा दिया जिससे भरत जी मुझे कर्कश न समझ लें।

धनुष इसलिये गिरा दिया क्योंकि धनुष टेढ़ा होता है, यदि इसे पकड़ा रहूँगा तो भरत जी मुझे टेढ़ा मान लेंगे।

तीर अर्थात् बाण इसलिये गिरा दिया क्योंकि बाण निर्वाण देता है और सगुणोपासक मोक्ष नहीं लेता। अत: –

उठे राम सुनि प्रेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषङ्ग धनु तीरा।।

भरत जी ने चार वस्तुऐं छोड़ी थीं–अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष और रामचन्द्र जी ने भी पट, निषङ्ग, धनुष और तीर छोड़ा।

बरबस लिये उठाइ, उर लाए कृपानिधान।
भरत राम की मिलनि लखि बिसरे सबहि अपान।

अयो० २४०

'बरबस लिये उठाइ', भरत जी उठना नहीं चाह रहे थे। जैसे हमारी बनारसी भाषा में कहते हैं जब कोई छैला चला जाता है कि 'हम न उठब, का करिबै' वैसे ही भरत जी भी छैला गए, मचल गए कि हम नहीं उठेंगे, आपने हमें क्यों नहीं बुलवाया? इतना क्यों तलफाया? तब रामजी ने उनको बरबस उठा लिया।

'बरबस लिये उठाइ' का दूसरा भाव यह है कि चित्रकूट जी ने सोचा कि यदि रामजी और भरत जी मिलने लगेंगे तो हमें तो अवसर ही नहीं मिलेगा, तो इन दोनों के मिलने से पहले ही मैं, भरत जी को अपने गले से लगा लूँ। इस प्रकार चित्रकूट जी ने ही भरत जी को अपने गले से लगा लिया। तब भगवान रामजी को बलपूर्वक उन्हें उठाना पड़ा–**'बरबस लिये उठाइ।'**

भगवती पृथ्वी ने भरत जी को चिपका लिया था तब रामजी ने कहा कि इसे छोड़ दो!

पृथ्वी ने कहा–क्यों छोड़ दूँ?

रामजी ने कहा–मैं तो आपका भार उतारने आया हूँ।

पृथ्वी ने कहा–आप सबको तो भार कह सकते हैं, और लोग भार हो सकते हैं, उनको उतारो, पर भरत भार नहीं है, ये तो शृंङ्गार हैं और शृंङ्गार को क्यों उतारने आए हैं?

पृथ्वी भरत जी को छोड़ना नहीं चाहती थीं। तब–

रामजी ने कहा–इस अवतार में आप मेरी सास हैं, सीता, आपकी बेटी हैं, आपने सीताजी को तो दिया पर दामाद को कुछ नहीं दिया, तो आज इस भरत को मुझे दहेज में दे दीजिये!

इस प्रकार—

बरबस लिये उठाइ उर लाए कृपा निधान।
भरत राम की मिलनि लखि बिसरा सबहि अपान।।

आज, 'काम' ने, राम को पा लिया और निष्काम हो गया। इस प्रकार, दोनों ही राम हो गए।

भरत राम ही की अनुहारी। सहसा लखि न सकहिं नर नारी।।

बाल० ३११

काम शब्द कमु धातु से, कर्म में धञ् प्रत्यय करके निष्पन्न होता है। **'काम्यते इति कामः'** जिसे सभी चाहते हैं, वही काम है। प्रत्येक प्राणी परम्पराया मुमुक्षा तथा भगवत् दिदृक्षा को चाहता है। सभी के मन में भगवान के दर्शनों की इच्छा की ललक होती है। इसी को उपनिषद की भाषा में विविदिषा कहते हैं।

'तमेतं ब्रह्मणा विविदिषन्ति वेदानुवचनेन यज्ञेन तपसा नाशकेन'

अर्थात् ब्रह्म को जानने की इच्छा, स्वाध्याय, यज्ञ, तप और उपवास से जगाई जाती है। इसी को सूत्र की भाषा में 'ब्रह्मजिज्ञासा' कहते हैं—

'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' ब्रह्म सूत्र १/१/२

यही प्रभु से मिलने की इच्छा 'काम' है और उसके मूर्त रूप हैं श्री भरत जी। भरत जी के हृदय में उमङ्गित हो रही भगवान मिलन की तलफन तो देखिये। श्री चित्रकूट यात्रा में वनवासी कोल किरात, वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी, सन्यासी तथा परमहंस महात्मा जब भरत जी से मिलते हैं, तब प्रणामपूर्वक भरतभद्र जी जिस किसी से व्याकुलतापूर्वक पूछते हैं कि लक्ष्मण, श्रीराम, भगवती सीता किस वन में विराज रहे हैं, उनसे समाचार प्राप्त कर उन सबको लक्ष्मण कीभाँति अपना आराध्य मान लेते हैं। इस प्रसङ्ग में उद्धृतमानस जी की पंक्तियाँ देखिये—

मिलहिं किरात कोल वनवासी। बैखानस बटु जती उदासी।।
करि प्रनामु पूछहिं जेहि तेही। केहि वन लखनु राम वैदेही।।
ते प्रभु समाचार सब कहहीं। भरतहि देखि जनम फल लहहीं।।
जे जन कहहिं कुसल हम देखे। ते प्रिय राम लखन सम लेखे।।

मानस २/२२४/४,५,६,७,८

भगवान के दर्शन करके भी भरत रूप काम कभी तृप्त नहीं हुआ। भरत जी कहते हैं—

दर्शन तृपित न आजु लगि प्रेम पियासे नैन

भागवत जी के अनुसार भगवान के दास्य की इच्छा ही काम है—

कामं च दास्ये न तु काम काम्यया

श्रीमद्भा० ९/४/२०

यही सिद्धान्त भरत जी के व्यक्तित्व की समग्रता है, जिसे चित्रकूट मार्ग की वधूटियों ने बड़ी सरस रीति से व्याख्यायित किया है—

चलत पयादे खात फल पिता दीन्ह तजि राजु।।
जात मनावन रघुबरहि भरत सरिस को आजु।।

मानस दो० २२२

जन्म से लेकर लीला विश्राम पर्यन्त श्री भरत के हृदय में प्रभु के दास्य की ललक ही लगी रही और उत्तरकाण्ड में उन्होंने अपनी यह विवशता हनुमान जी के समक्ष प्रकट कर ही दी—

कहु कपि कबहुँ कृपाल गोसाईं। सुमिरेहिं मोहिं दास की नाईं।।
निज दास ज्यों रघुबंस भूषन कबहुँ मम सुमिरन कर्‌यो

हनुमान जी कहिये कि क्या कृपालु श्रीराम, कभी मेरा दास के रूप में सुमिरन करते हैं? यही धर्माविरुद्ध भगवद् दिदृक्षारूप भगवत सेव्येच्छा स्वरूप काम ही श्री भरत है, जो पुरुषार्थ ही नहीं परम पुरुषार्थ हैं अर्थात् परम पुरुष श्रीराम भगवान भी उन्हें निरन्तर चाहते हैं। उनकी उस काम की क्रिया है व्याकुलता और वही व्याकुलता श्री माण्डवी जी हैं।

इस प्रकार तीसरे पुरुषार्थ 'काम' की व्याख्या सम्पन्न हो गई। यह काम 'सेक्स' नहीं है। यह 'काम' तो भगवत्प्राप्ति की इच्छा और उससे होने वाली तलफन होती है, वही 'काम' है। यहाँ भगवत्प्रेम ही 'भरत' है और वह प्रेम व्यक्ति को नौंवी भूमिका में मिलता है। संसार का प्रेम तो व्यक्ति को सहज में ही मिल जाता है पर भगवान के प्रेम में व्यक्ति को नौ भूमिकाओं को प्राप्त करना पड़ता है और इसीलिये भगवान राम का जन्म नवमी को होता है—

आदौश्रद्धा ततः साधु सङ्गोऽथ भजन क्रिया।
ततोऽनर्थनिवृत्तिःस्यात् ततो निष्ठा ततो रुचिः।।
अथासक्तिः ततो भावः ततः प्रेमाभ्युदञ्चति

१. **आदौ श्रद्धा**— पहले व्यक्ति को भगवान के चरणों में आस्था रखनी पड़ती है। यह प्रेम प्राप्त करने की पहली भूमिका है।

२. **साधु-सङ्ग**— भगवान के प्रेम के दीवाने महापुरुषों के चरणों में बैठना, यह दूसरी भूमिका है।

३. **भजन क्रिया**—इसके पश्चात् इन सन्तों के चरणों में बैठकर उनसे भजन की क्रियाओं का ज्ञान करना, ये तृतीय भूमिका है।

४. **ततोऽनर्थनिवृत्तिस्यात्**—जब भजन की क्रियाओं का ज्ञान हो जाएगा, तब पूजा में अनर्थ नहीं आएँगे। तब अनर्थों की निवृत्ति अपने आप हो जाएगी। यह चौथी भूमिका है।

५. **ततो निष्ठा**—तब हमारी भगवान में निष्ठा होगी। यह पाँचवी भूमिका है।

६. **ततो रुचिः** —तब रुचि बढ़ेगी, और यह छठी भूमिका है।

७. **अथासक्तिः** —इसके पश्चात् आसक्ति हो जाएगी। बिना सत्सङ्ग सुने जीवन रसहीन लगने लगेगा, यह सातवीं भूमिका है।

८. **ततोभावः** —इसके अनन्तर भगवान के प्रति हमारा भाव हो जाएगा, यह आठवीं भूमिका है।

९. **ततः प्रेमाभ्युदञ्चति**—तब नवीं भूमिका में हमारे अन्दर भगवान का प्रेम आएगा।

जब नौवी भूमिका में भगवान के प्रति प्रेम आया तो 'रामनवमी' के दिन भगवान राम का प्राकट्य हुआ। इसलिये आज रामनवमी के मङ्गलमय पर्व पर इस 'काम' की व्याख्या को 'राम' तक पहुँचाकर विराम ले रहे हैं। अब कल मोक्ष की व्याख्या होगी।

सीताराम जय सीताराम। सीताराम जय सीताराम।

अष्टम वाक् पुष्पाञ्जलि सम्पन्न २५/३/९९

।।श्री राघवः शन्तनोतु।।

।। श्रीमद्राघवो विजयतेतराम् ।।

अथ नवम वाक् पुष्पाञ्जलि

श्री तुलसीपीठ आमोदवन, चित्रकूट

दिनाङ्क २६.३.९९

मङ्गलाचरण

आगच्छ वायुसूनो त्वं मया रामायणी कथा।
प्रारभ्यते भव श्रोता गृहाणासनमुत्तमम्।।

जयति चिन्मय चित्रकूट:
रजत रत्न सुवर्ण कूट:
विविध वर्ण विचित्र कूट:
जयति.....

महित मन्दाकिनी तरङ्ग:
विहित कलिमल कलुष भङ्ग:
ललित सीताराम रङ्ग:
कलित कामद मित्रकूट:
जयति.....

प्रकृति दिव्य विभा विभात:
कोकिलाकृत सुप्रभात:
सतत मनसूयावदात:
योगिमुनि विरतित्रकूट:
जयति.....

द्रुमलता सुमकुञ्जमाल:
पृथित रघुपति पर्णशाल:
मैथिली लक्ष्मण रसाल:
मोहबीज हनित्र कूट:
जयति.....

अतुल तुलसीपीठ शोभः
पवनसुत हत पदक्षोभः
सुखद साधन सुधन लोभः
प्रभु पदाङ्क पवित्रकूटः
जयति.....

भरत चारु चरित्रकूटः
विषय विपिन लवित्र कूटः
भव महाब्धि वहित्र कूटः
भवतु हृत 'गिरिधर' त्रिकूटः
जयति.....

रामरत्नमहं वन्दे चित्रकूट पतिं हरिम्।
कौसल्याशुक्ति सम्भूतं जानकी कण्ठ भूषणम्।।

पार्वतीफणि बालेन्दु भस्म मन्दार मण्डिता।
पवर्ग रचिता मूर्तिः अपवर्ग प्रदायिनी।।

श्री सीताराथ समारम्भां श्री रामानन्दार्यमध्यमाम्।
अस्मदाचार्य पर्यन्तां वन्दे श्री गुरुपरम्पराम्।।

।।सीताराम जय सीताराम।।सीताराम जय सीताराम।।

राम बाम दिसि जानकी लखन दाहिनी ओर।
ध्यान सकल कल्यानमय सुरतरु तुलसी तोर।।

।।लखन सिय रामचन्द्र की जय।।

मुदित अवधपति सकल सुत बधुन्ह समेत निहारि।
जनु पाए महिपाल मनि क्रियन्ह सहित फल चारि।।

परिपूर्णतम् परात्पर परमात्मा, घनदर्प, कन्दर्प, सोदर्य-सौन्दर्य, हृद्य निरवद्य रूप कोसलभूप सकल-कला-कलाप-कलन, श्रीमद्चित्रकूट विहारी विहारिणी जू की

भुवन-पावनी कृपा से आज यह व्याख्यान-माला, विश्राम को प्राप्त करेगी। इसका अन्त नहीं होगा क्योंकि यह अनन्त है।

हरि अनन्त हरिकथा अनन्ता। कहहिं सुनहिं बहु विधि सब सन्ता।।

चक्रवर्ती जी हर्षित हो रहे हैं अपने चार-चार पुत्रों को पुत्रवधुओं सहित निहारकर मानों क्रियाओं सहित चारों फल मिल गए। अब तक पुरुषार्थ चतुष्टय के अन्तर्गत भगवद् कैंकर्य रूप अर्थ श्री शत्रुघ्नलाल जी व उनकी क्रिया सेवा 'श्री श्रुतिकीर्ति जी हैं, लक्ष्मण जी धर्म और उनकी क्रिया 'श्रद्धा' श्री उर्मिला जी हैं, भगवत्प्रेम रूप इच्छा ही यहाँ 'काम' हैं, वह हैं श्री भरत जी और उनकी क्रिया हैं व्याकुलता रूपी श्री माण्डवी जी और अब पुरुषार्थ चतुष्टय का अन्तिम सोपान है मोक्ष और मोक्ष ही यहाँ भगवान राम को माना गया है। भगवान राम मोक्ष रूप हैं।

'भवबन्धनान् मोक्षणं मोक्षः'

भवबन्धन से छूटना ही मोक्ष है।

भगवान शङ्कर से पूछा जाता है कि भूतभावन आप काशी में किसके बल पर मोक्ष का सदावर्त लुटाते हैं।

गोस्वामी जी की बहुत स्पष्ट बात कह रहा हूँ

इहाँ न पच्छपात कछु राखउँ। बेद पुरान सन्त मत भाखऊँ।।

यह गोस्वामी जी का पक्षपात नहीं है स्वयं अथर्व श्रुति कहती हैं—**'तारकं ब्रह्म व्याषष्टे'** अर्थात् स्वयं राम नाम का उच्चारण करे—

'म्रियमाणस्य दक्षिणे कर्णे, सह गम्ये भगवान भूतभावनः तारकं ब्रह्मव्याषष्टे।'

'अथर्व की राम तापनीय उत्तर श्रुति में भगवान कह रहे हैं कि काशी में मरने वाले के दक्षिण कान में भगवान शशाङ्क शेखर, काशीश्वर, भयङ्कर प्रलयङ्कर, शङ्कर, राम नाम का उपदेश करके, मोक्ष का दान कर लेते हैं। वहाँ मन्त्र भी दिया।

तारकंब्रह्म व्याषष्टे राम रामायेति।

वहाँ पूरा वर्णन लिखा है, उसी को गोस्वामी जी ने हिन्दी में कह दिया—

कासी मरत जन्तु अवलोकी। जासु नाम बल करउँ बिसोकी।।

बाल० दोहा ११९

राम कह कर, भगवान शङ्कर, काशी में मरते हुए व्यक्ति को मोक्ष दे डालते हैं। तो जिसका नाम लेने से मोक्ष हो गया, तब तो वह मोक्ष रूप ही हुआ और इसीलिये—

अहंभवन्नाम जपन्कृतार्थो,
वसामि काश्याम निशम्भवान्या।
मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहम्
दिशामि मन्त्रं तव राम नामं।।

अध्यात्म रामायण

भगवान स्वयं अपने श्रीमुख से कहते हैं कि हे राघवेन्द्र, भगवती पार्वती के साथ आनन्द-वन में निवास करते हुए मैं, आपका रामनामात्मक मन्त्र जपकर कृतार्थ होता रहता हूँ। 'राम' कहकर मैं सबको मुक्त कर देता हूँ ओऽम नहीं कहता क्योंकि 'ओऽम्' सुनने का सबको अधिकार नहीं। राम एक ऐसा मन्त्र है जिसको बृहस्पति से लेकर चाण्डाल तक सब जप सकते हैं। 'प्रणव' के जपने में बड़ी बाधा है। माताओं को प्रणव कहने का अधिकार नहीं है। राम कहना चाहिये। जो पुण्य 'श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ को 'प्रणव' के उच्चारण से मिलेगा, वही पुण्य आपको 'राम' कहकर मिल जाएगा।

वास्तव में श्रीकृष्ण का रूप बहुत अधिक आकर्षक है और शास्त्र की आज्ञा है रूप कृष्ण, नाम राम का। राम नाम अत्यन्त व्यापक है। रामनाम रामोपासकों के लिये तो ठीक है ही, परन्तु यदि आप राधेश्याम के उपासक हैं तो प्रत्याहार बना लीजिये—राधे का 'रा' ले लीजिये और श्याम का अन्तिम 'म' ले लीजिये अर्थात् एक का आदि ले लो और एक का अन्त ले लो तो बन जाएगा-राम।

एक बार तुलसीदास जी महाराज मथुरा आए तो लोग उनको चिढ़ाने लगे तब तुलसीदास जी ने कहा कि अरे मथुरा में भी 'राम' है।

वहाँ के लोग कहने लगे कि कैसे यहाँ राम हैं?

तब तुलसीदास जी ने कहा तुम लोग जानते नहीं हो, तो क्या बताएँ? उन्होंने कहा

मथुरा में से अन्तिम 'रा' और आदि का वर्ण 'म' ले लो तो 'राम'बन जायेगा। इसके बाद तो केवल 'थु' 'थु' ही बचेगा।

मथुरा में भी राम हैं नहिं जानत है कोय।
आदिम अन्तिम काढ़ि दो मुख में पड़िगा साय।।

राम तो राम हैं। 'रा' माने 'रामायण' और 'म' माने 'महाभारत'। दोनों ही तो इतिहास हैं हमारे।

इसीलिये कुमार लक्ष्मण कहते हैं—

राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अविगत अलख अनादि अनूपा।।

कुमार लक्ष्मण ने स्पष्ट कहा—**राम ब्रह्म जन्माद्यस्य यतः।** ब्र०सू० १/१/२

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते
येन जातानि जीवन्ति।
यत् प्रयन्त्यभिसम्विशन्ति
तद् विजिज्ञासस्वतद्ब्रह्म

उसी का सूत्र बना दिया गया—**जन्माद्यस्य यतः।** आदि शब्द से पालन और प्रलय ले लिया।

आदिश्च आदिश्च आदी, और जन्म च आदि च तेषां समाहारः'

अथवा '**जन्माद्यस्य यतः**' पर एक नवीन व्याख्या प्रस्तुत कर रहा हूँ जन्माद्यस्य में अस्य को अलग मत कीजिये—

'आद्यस्य ब्रह्मणोऽपि यतः जन्म तद् ब्रह्म।'

सृष्टि के आदिकर्ता ब्रह्मा का भी जहाँ से जन्म होता है, उसे ब्रह्म कहते हैं—'जन्माद्यस्य यतः।'

अथवा '**आदत्ते इति आदिः पालनम्, अत्ति इति आदिः प्रलयः, आदिश्च आदी च आदिनी जन्म च आदिनी च तेषां समाहारः, जन्मादि अस्य जगतः जतः जन्मादि, तद् ब्रह्म।**''

सारे संसार का जहाँ से जन्म होता है, जिसके द्वारा पालन होता है और जिसमें जाकर

ही प्रलय होता है, वह ब्रह्म है—

तज्जलानीति शान्त उपासीत्।

छान्दोग्य० ३/१४

बहुत से लोग कहते हैं कि रामायण में राम को ब्रह्म नहीं कहा गया है। यदि रामायण जी में राम जी को ब्रह्म नहीं कहा गया है तो फिर कहाँ कहा गया है?जो पढ़ते नहीं हैं, वे ही इस प्रकार की बातें करते हैं। रामायण जी में जितना खुलकर रामजी को ब्रह्म कहा गया, उतना कदाचित् ही कहीं कहा गया होगा। बालकाण्ड में ही देखिये—

अक्षैयं मधुहन्तारं जाने त्वां पुरुषोत्तमम्
धनुषोष्य परामर्शात् स्वस्ति तेऽस्तु परं तपः

वा०रा०बाल० ७७

भगवान परशुराम कहते हैं कि मैं आपको अक्षैय जानता हूँ और **'मधुहन्तारम्' अर्थात् मधु को मारने वाला, अथवा मधौ चैत्रमासे जिहीते आगच्छति इति मधवः, चैत्रमासे गृहीत जन्मानं तारं तारकं ब्रह्मत्वां जाने।'**

अर्थात् चैत्रमास में जन्म लेने वाले परब्रह्म तारक श्रीराम हैं। देखिये, यदि श्रीरामचन्द्र जी ब्रह्म नहीं हैं तो वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड के उञ्चासवें सर्ग में विश्वामित्र जी ने भगवान राम से अहल्या को तारने की प्रार्थना क्यों की? ब्रह्म के अतिरिक्त कोई किसी को तार नहीं सकता। 'तारण-धर्म' तो केवल ब्रह्म का है। जीव मार सकता है पर तार नहीं सकता।

तदा गच्छ महातेजः आश्रमं पुण्य कर्मणः।
तारयैनां महाभागां अहल्यां देवरुपिणी।।

इसलिये हे राघवेन्द्र! एनां महाभागां अहल्यां तारय। जब तारण धर्म ब्रह्म का है तो तारण-धर्म जीव का कैसे हो जाएगा?

अहल्या कैसी हैं? तो कहते हैं—**'महाभागाम्'** ये तो महाभागा हैं। महाभागा अर्थात्-महीयते पूज्यते इति महासीता, तस्याः आभा इति महाभा, तामेव भजति गच्छति इति महाभागाः, अर्थात् परम पूज्यनीया सीता जी की मङ्गलमयी आभा का जो भजन करती रहती हैं, ये तो वे ही महाभागा हैं। अतः प्रभु, आप इनको तारिये। यह है रामजी का ब्रह्मत्व। वाल्मीकि जी द्वारा ब्रह्मत्व के प्रतिपादन की और क्या चर्चा करूँ? ऋषि,

मुनि यदि भगवान राम को ब्रह्म कहें तो कोई बड़ी बात नहीं, पर यहाँ तो रामायण के खलनायक अर्थात् रावण की पत्नी मन्दोदरी ही भगवान राम को ब्रह्म कह रही है—

व्यक्तमेष महायोगी परमात्मा सनातनः।

मन्दोदरी स्पष्ट कहती है कि भगवान राम परब्रह्म परमात्मा हैं। **'त्वमक्षरं परंब्रह्म'** ब्रह्मा जी कह रहे हैं। इसलिये वेदवेदान्तवेद्यपरब्रह्म भगवान राम हैं।

राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अविगत अलख अनादि अनूपा।।

पूर्व प्रकरण में हम **'स्थाली पुलाकन'** न्याय से मोक्ष और भक्ति की संक्षिप्त व्याख्या कर चुके हैं, अब शास्त्रों की निगूढ़ वीथियों में मोक्ष और भक्ति का, श्रीसीताराम जी में समन्वय करने का प्रयास करते हैं।

मोक्ष पदार्थ क्या है? इस पर साम्प्रदायिक आचार्यों के मतभेद होने पर भी श्रीमद्भागवत में एक सर्वमान्य लक्षण की वेदव्यास जी ने व्यवस्था की। भगवान शुकाचार्य भागवत जी के दसों लक्षणों की व्याख्या करते हुए मुक्ति की एक सार्वभौम व्याख्या प्रस्तुत करते हैं—

मुक्तिर्हित्वान्यथारूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः।

अर्थात् नाशवान अन्यथा रूपों को छोड़कर अपने मौलिक स्वरूप में व्यवस्थित होना ही मुक्ति है। जैसे, अनात्मभाव का त्यागकर आत्म भाव में उपस्थित होना ही मुक्ति है।

परमात्मा श्रीराम के लिये भगवदितर रूपों का चिन्तन अनात्म भाव है और निरन्तर अपने स्वरूप में स्थित रहना ही उनकी मुक्ति है। जीवात्मा का स्वरूप आविर्भूताष्ट गुणात्मक है और परमात्मा का स्वरूप नित्य सिद्धाष्टगुणात्मक है अर्थात् अपहतपापमत्व, विजरत्व, विमृत्युत्व, विशोकत्व, अविजिघित्सत्व, अपिपासत्व, सत्यकामत्व और सत्य सङ्कल्पत्व, ये आठों गुण जीवात्मा में कभी कभी आविर्भूत होते हैं परन्तु परमात्मा में ये नित्य रहते हैं। यही परमात्मा का जीवात्मा से वैलक्षण्य है। यहाँ यह कहना अत्यन्त उपादेय होगा कि और आचार्यों के मत में जीवात्मा और परमात्मा का ऐक्य स्वीकारा गया हो पर वैष्णवाचार्य जीवात्मा और परमात्मा में स्वरूपगत भेद मानते ही हैं और यही श्रौत-सिद्धान्त भी है। क्योंकि कठोपनिषद की श्रुति बहुत स्पष्ट कहती है—

नित्योनित्यानां चेतनश्चेतनाना
मेको बहूनां यो विद्धाति कामान्।
तमात्मस्थं ये च पश्यन्ति धीरा:
तेषां शान्ति: शाश्वती नेतरेषाम्।
कठ०/१३।।

इसलिये श्रुति ने तीन बार षष्ठ्यन्त का और तीन ही बार प्रथमान्त का प्रयोग किया है। जीवात्मा के लिये षष्ठ्यन्त और परमात्मा के लिए प्रथमान्त प्रयुक्त है। इसका सीधा तात्पर्य है कि तीनों काल में जीवात्मा के परमात्मा से शाश्वत सम्बन्ध हैं। षष्ठी का अर्थ सम्बन्ध है और 'प्रायश: राहोशिर:' इत्यादि प्रसङ्गों को छोड़कर षष्ठी भेद में ही हुआ करती है, अभेद में नहीं। परमात्मा नित्यानामध्यनित्य: नित्य जीवों के नित्य सम्बन्धी हैं, चेतनों के अधिष्ठान चेतन हैं और बहुत से जीवों के एकमात्र स्वामी हैं, इन तीन षष्ठियों का प्रयोग करके श्रुति ने स्पष्ट किया है कि जीवात्मा का परमात्मा से स्वरूपत: कभी भी अभेद सिद्ध नहीं हो सकता अर्थात् स्वरूप से जीवात्मा परमात्मा से अलग है परन्तु उसका परमात्मा के साथ अविनाभूत सम्बन्ध है, अप्रथक्भाव है, वह परमात्मा से अलग नहीं रह सकता। सत्ता के अलग होने पर भी वह परमात्मा का विशेषण है। परमात्मा निरन्तर चिदचिदविशिष्ट हैं। यही व्यक्तित्व श्रीराम का है। वहाँ भी श्री लक्ष्मण जीवात्मा का अभिनय कर रहे हैं, भगवती सीता अचित्तत्व माया का अभिनय कर रही हैं और दोनों से भगवान राम विशिष्ट हैं। इस दृष्टि से शास्त्रों ने मोक्ष की चार व्याख्याएँ की हैं–

संसार के बन्धनों को छोड़कर परमात्मा से जुड़ जाना अथवा परमात्मा के निकट चले जाना अथवा परमात्मा के समान लोक में निवास करना अथवा परमात्मा के समान रूप धारण कर लेना ही मोक्ष है और इस व्याख्या पर गोस्वामी श्री तुलसीदास जी की सम्मति भी है। बालकाण्ड के श्रीराम विवाह प्रसङ्ग में, जहाँ गोस्वामी तुलसीदास जी तीन सौ पन्द्रहवें दोहे की छठी पंक्ति में महाराज दशरथ जी के साथ श्रीराम आदि चारों भ्राताओं का समन्वय प्रस्तुत करते हुए वहाँ कहते हैं–

सोहत साथ सुभग श्रुति चारी। जनु अपवर्ग सकल तनु धारी।।

अर्थात् चारों पुत्र मानो चार अपवर्ग हैं—सायुज्य, सालोक्य, सामीप्य तथा सारूप्य ये चार मुक्तियाँ, चारों भ्राताओं के रूप में हैं। इस प्रसङ्ग में शत्रुघ्न सालोक्य, भरत जी सायुज्य, लक्ष्मण कुमार सामीप्य तथा श्रीराम सारूप्य का मङ्गलमय भूमिका निर्वहन कर रहे हैं। श्रीराम को यदि सारूप्य मोक्ष कहा जाये तो इसका तात्पर्य यह है कि जीव को अपने समान रूप दे देना, यही भगवान श्रीराम का धर्म है और यह दृश्य श्रीरामचरितमानस में दो स्थलों पर दिखाई पड़ता है, जटायु भगवान श्रीराम की गोद में आसीन होकर, भुक्ति, मुक्ति और भक्ति, इन तीनों का अलौकिक सुख लूट रहे हैं, यहाँ भगवान श्रीराम ने जटायु को सारूप्य मुक्ति दी—

गीध देह तजि धरि हरि रूपा। भूषन बहु पट पीत अनूपा।।
स्यामल गात बिसाल भुजचारी। अस्तुति करत नयन भरि बारी।।

पर इससे भी सन्तोष नहीं हुआ। यहाँ तो जटायु को चतुर्भुज रूप मिला था। सारूप्य का आनन्द तो पूर्ण रूप से तब उपस्थित हुआ जब हनुमान आदि सभी वानर वीरों को भगवान ने मनुष्य स्वरूप दिया—

लङ्कापति कपीस नल नीला। जामवन्त अङ्गद सुभ सीला।।
हनुमदादि सब बानर बीरा। धरे मनोहर मनुज सरीरा।।

यदि चरित्र का विश्लेषण करें तो प्रायश: भगवान की चार लीलाएँ श्रीरामायण जी में मुख्य भूमिका निभातीं हैं—

१. बाल लीला
२. विवाह लीला
३. रण लीला, और
४. राज्य लीला।

इन्हीं चारों लीलाओं के समुच्चय से रामायण जी की कथा पूर्णता को प्राप्त कर लेती है। इसीलिये हमने एक श्लोकी रामायण का निश्चय करते हुए—

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गम्,
सीतासमारोपितवामभागम्।
पाणौ महासायकचारुचापम्,
नमामि रामं रघुवंशनाथम्।।

इस श्लोक को ही एक श्लोकी रामायण माना है, क्योंकि इसमें भगवान श्रीराम की चारों लीलाओंके दर्शन कराए गए हैं। **'नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गम्'** इस प्रथम चरण से भगवान की बाल लीला, क्योंकि बाल्यावस्था में ही व्यक्ति के अङ्ग कोमल होते हैं, **'सीतासमारोपितवामभागम्',** इस द्वितीय चरण से भगवान की विवाह लीला, क्योंकि विवाह लीला में ही सनातनधर्मावलम्बियों की धर्मपत्नियाँ उनके वाम भाग में बैठतीं हैं। **'पाणौमहासायकचारुचापम्'** इस तृतीय चरण से भगवान की रणलीला, क्योंकि रणलीला में ही शस्त्र उठाने की आवश्यकता होती है 'नमामि रामं रघुवंशनाथम्,' इस चतुर्थ चरण से भगवान की राज्यलीला, क्योंकि राज्य लीला में ही भगवान श्रीराम रघुवंश के नाथ बने। इस दृष्टि से यहाँ भी कहा जा सकता है कि **बाललीला** में भगवान श्रीराम की सालोक्य लीला, क्योंकि उन्होंने सबको अपने लोक में निवास दिया—

जे मृग राम बान के मारे। ते तनु तजि सुरलोक सिधारे।।

विवाह लीला में सायुज्य लीला। सबको उन्होंने गले से लगाया। यहाँ तक कि मिथिला के छोटे-छोटे बालक भी श्रीराम के श्री अङ्ग-सङ्ग को प्राप्त कर कृतकृत्य हुए। सब उनसे चिपके—

सब सिसु एहिं मिस प्रेमबस परसि मनोहर गात।
तन पुलकित अति हरषि हिय देखि देखि रघुनाथ।।

रणलीला में सारूप्य लीला और इसका उपक्रम है—**'गीध देह तजि धरि हरिरूपा',** सभी राक्षकों को भगवान ने मुक्त करके वैष्णव रूप दिया।

राज्यलीला में सामीप्य लीला अर्थात् सामीप्य मुक्ति। इसीलिये सामीप्य मुक्ति का उपक्रम करते हुए भगवान स्वयं कहते हैं—

जा मज्जन तें बिनहिं प्रयासा। मम समीप नर पावहिं बासा।।

इस प्रकार मोक्ष के चारों भेद भगवान श्रीराम की चारों लीलाओं में स्पष्ट हो जाते हैं। **बाल लीला में सालोक्य मुक्ति, विवाह लीला में सायुज्य मुक्ति, रणलीला में सारूप्य मुक्ति और राज्यलीला में सामीप्य मुक्ति परिलक्षित होती है।**

देवहूति-कपिल सम्वाद के प्रकरण में भगवान कपिल ने मुक्ति के पाँच भेद कहे हैं—

सालोक्यसार्ष्टि सामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः

श्रीमद्भा ३/२९/१३

वहाँ वे सालोक्य, सायुज्य, सामीप्य, सारूप्य और एकत्व, ये मुक्ति के पाँच भेद मानते हैं। इस दृष्टि से यदि विचार करें तो भी एक अवान्तर लीला का भेद करने से यहाँ की विसङ्गति बन जाएगी बाललीला में सालोक्य मुक्ति, विवाह लीला में सायुज्य मुक्ति, वन लीला में सारूप्य मुक्ति, रण लीला में सामीप्य मुक्ति और राज्य लीला में एकत्व अर्थात् सम्बन्ध मुक्ति। इस प्रकार भगवान की पाँच लीलाओं में पाँचों प्रकार की मुक्तियों के दर्शन हो जाते हैं। बाललीला में राक्षसों को मारकर उन्हें अपना लोक देते हैं तथा अपने मित्रों को अपने समान स्थान पर विराजमान करवाते हैं, विवाह लीला में मिथिलावासियों को स्पर्श सुख देकर–सायुज्य मुक्ति प्रदान करते हैं, वनलीला में जटायु आदि परम भागवतों को सारूप्य मुक्ति देते हैं, रणलीला में राक्षसों का वध करके उन्हें अपने समीप निवास देते हैं और राज्यलीला में भगवान सबसे अपना मर्यादात्मक सम्बन्ध स्थापित करते हैं तो एकत्व भी यहाँ घट जाता है।

मोक्ष को शास्त्रों ने अपवर्ग की भी संज्ञा दी है। गोस्वामी जी बार-बार कहते हैं–

१. **सोहत साथ सुभग श्रुति चारी। जनु अपवर्ग सकल तनु धारी।।**

२. **तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिय तुला इक अङ्ग।**
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सत्सङ्ग।।

३. **प्रीति सदा सज्जन संसर्गा। तृन सम विषय स्वर्ग अपवर्गा।**

४. **स्वर्ग नरक अपवर्ग समाना। जहँ तहँ देखि धरे धनु बाना।।**

अपवर्ग की और चाहे जो व्याख्याएँ होंपर एक व्याख्या बड़ी रोचक एवं मधुर है। अपवर्ग 'न विद्यते पवर्ग यस्मिन्', जहाँ पवर्ग अर्थात्, प, फ, ब, भ और म, इन पाँचों अक्षरों से जुड़े हुए भाव न रहें, उसे अपवर्ग कहते हैं।

प अर्थात् जहाँ पाप और पुण्य न हो।

फ अर्थात् जहाँ कर्म के फल न हों।

ब अर्थात् जहाँ कर्मों के बन्धन न हों।

भ अर्थात् जहाँ भव-भय न हो।

म अर्थात् जहाँ मरण न हो।

उस अखण्ड सत्ता को अपवर्ग कहते हैं। भगवान श्रीराम का यही स्वरूप है। वे पाप और पुण्य से परे हैं। इसलिये श्रुति ने उन्हें 'अपहतपाप्मा' कहा। उनका नाम स्मरण करने से जीव स्वयं पापों से मुक्त हो जाता है।

वे अघारी हैं—

१. **सो करहु अघारी चिन्त हमारी जानिय भगति न पूजा।**

२. **जद्यपि सम नहिं राग न रोषा। गहहिं न पाप पुण्य गुण-दोषा।।**

भगवान को कर्म के शुभाशुभ फल नहीं बाधित करते। इसीलिये नारद जी ने कहा—

करम सुभासुभ तुम्हहिं न बाधा। अब लगि तुम्हहिं न काहुहिं साधा।

भगवान कर्मों के बन्धनों से नहीं बँधते। उनका नाम स्मरण करके ज्ञानी जन स्वयं भवबन्धन काट देते हैं—

जासु नाम जपि सुनहु भवानी। भवबन्धन काटहिं नर ज्ञानी।।

भगवान स्वयं भव-भय से दूर हैं क्योंकि वे स्वयं भव-भय-भञ्जन हैं—

जो भवभयभञ्जन, मुनिमनरञ्जन हैं उन्हें किसी का डर नहीं है—

जासु त्रास डर कहँ डर होई। भजन प्रभाव देखावत सोई।।

भगवान मरण धर्म से ऊपर हैं क्योंकि उनके चिन्तकों को भी जब काल नहीं व्यापता फिर उन्हें कैसे व्यापेगा

इहाँ बसत मोहि सुनहु खगीसा। बीते कलप सात अरु बीसा।।

प्रभु श्रीराम का राम नाम लेकर ही भगवान शङ्कर मृत्युञ्जय बने। इस प्रकार भगवान श्रीराम पूर्णरूप से अपवर्ग हैं। उनकी पाँचों लीलाओं में भी अपवर्ग के बड़े मधुर दृश्य दिखलाई पड़ते हैं। बाललीला में भगवान स्पष्ट पाप और पुण्य, दोनों से दूर

दिखाई पड़ते हैं। उन्हें किसी प्रकार का पाप बाधित नहीं करता, वे किसी प्रकार के पुण्य से विवश नहीं है। इसलिये विश्वामित्र जी कहते हैं—

एहि बिधि देखउँ प्रभु पद जाई। करि बिनती आनउँ दोउ भाई।।

पाप-पुण्य से मुक्त होने में सबसे बड़ा यही प्रमाण है कि उनके चरण-कमल का स्पर्श करके अहल्या जैसी पापिनी का भी उद्धार हो गया।

भगवान को फल आसक्त नहीं कर सकता। इसीलिये विवाह लीला में उनकी फल निरपेक्षता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। जिन सीता जी की प्राप्ति के लिये देव, राक्षस, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, कपटवेश में स्वयंवर में उपस्थित हुए थे, वहाँ केवल गुरुदेव की आज्ञा का पालन करते हुए, समर भूमि देखने मात्र भगवान गए। जब तक गुरुदेव ने आज्ञा नहीं दी तब तक उन्होंने धनुष तोड़ने का मन नहीं बनाया। जब गुरुदेव ने कहा—**'उठहु राम भञ्जहु भव चापा,'** प्रभु ने कह दिया कि मैं फल लेकर क्या करूँगा? तब कह दिया कि, **'मेटहु तात जनक परितापा'**, तुम्हें फल की आकांक्षा से नहीं प्रत्युत जनक जी के प्रति उपकार करने की भावना से यह धनुष तोड़ने की आज्ञा दे रहा हूँ।

वनवास लीला में तो उनकी बन्धन मुक्ति का बहुत स्पष्ट प्रमाण मिल जाता है। राज्य को भी भगवान श्रीराम बन्धन मानते हैं और वनवास की बात सुनकर तो उनका मन, भवन से मुक्त हुए हाथी के बच्चे के समान आनन्द में झूम उठता है—

नव गयन्द रघुबीर मनु राज अलान समान।
छूट जानि बन गमन सुनि उर अनन्द अधिकान।।

अयो० दोहा क्र० ५१

रणलीला उनकी भय मुक्ति का स्पष्ट प्रमाण है। रणलीला में इतने भयङ्कर-भयङ्कर प्रकरण आए, पर श्रीराम निर्भय ही बने रहे। उन्हें किसी प्रकार का भय नहीं लगा। नागपाश में बँधने पर देवता डरे पर भगवान श्रीराम नहीं।

रन सोभा लगि प्रभुहि बँधायो। नागपास देवन्ह भय पायो।।

यहाँ तक कि राम-रावण युद्ध को देखकर देवता भयभीत हुए पर श्रीराम के मन में तनिक भी भय नहीं आया। वे तो पहले ही घोषणा कर चुके हैं—

प्रात कहेहु मुनि सन रघुराई। निर्भय जज्ञ करहु तुम्ह जाई।।

राज्य लीला, मरण से अतीत होने का प्रमाण है। अयोध्या आकर भगवान श्रीराम निरन्तर राज्य करते रहे। **'दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च'** कहकर महर्षि वाल्मीकि ने कह दिया कि श्रीराम अनन्तकाल तक भक्तों के हृदय रूप अयोध्या में विराजमान होकर प्रशासन करेंगे ही। प्रत्येक विधा, श्रीराम के चरित्र में अविरलतया दृष्टिगोचर होती है। मोक्ष ज्ञान प्रधान होता है। श्रुति कहती हैं—**'ऋते ज्ञानान् न मुक्तिः',** ज्ञान के बिना मोक्ष नहीं होता इसीलिये भगवान राम को अखण्डज्ञाननिधान और अखण्डज्ञानस्वरूप कहा गया है—

ज्ञान अखण्ड एक सीतावर। माया बस्य जीव सचराचर।।

सुनहु राम सर्वज्ञ सुजाना। प्रनतपाल गुन ज्ञान निधाना।।

भक्तों की दृष्टि से परमात्मा की प्राप्ति मोक्ष और भगवान की दृष्टि में भक्ति की प्राप्ति। इन दोनों दृष्टियों से भगवान श्रीराम मोक्ष स्वरूप हैं। जहाँ चित्रकूट के ऋषिगण भगवान को हृदय से लगा लेते हैं—

मुनि रघुबरहिं लाय उर लेहीं। सुफल होन हित आसिष देहीं।

सिय सौमित्र राम छवि देखहिं। साधन सकल सुफल करि लेखहिं।। अपने भक्तों से भगवान भी उसी प्रकार मिल रहे हैं—

मुनि जेहिं ध्यान न पावहीं नेति नेति कह बेद।

कृपासिन्धु श्री कपिल सन करत अनेक बिनोद।।

इसी दृष्टि से भगवान श्रीराम जी के प्रति लक्ष्मण जी ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया—

राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अविगत अलख अनादि अनूपा।।

मोक्ष निरहङ्कार होता है। उसके जीवन में किसी प्रकार का अभिमान नहीं आता। भगवान श्रीराम जी से परशुराम जी कहते हैं कि धनुष तोड़ने पर तुझे अहङ्कार हो गया है, तूने अपने को विश्व विजयी मान लिया है तब भगवान श्रीराम स्वयं कहते हैं, प्रभो! मैंने धनुष तोड़ा ही नहीं। आपने ऐसा क्यों सोचा?

छुवतहिं टूट पिनाक पुराना। मैं केहि हेतु करब अभिमाना।।

लक्ष्मण जी भी कहते हैं—

छुवत टूट रघुपतिहिं न दोसू। मुनि बिनु काज करिय कतरोसू।।

क्योंकि कर्तृत्वाभिमान मोक्ष में सबसे बड़ा बाधक है इसलिये भगवान राम के चरित्र में कर्तृत्वाभिमान नहीं दीखता। रावण-वध के पश्चात् श्रीसीता जी को रणभूमि दिखाते हुए श्रीराम कहते हैं—

कह रघुबीर देखु रन सीता। लछिमन इहाँ हते इन्द्रजीता।
कुम्भकरन रावन दोउ भाई। इहाँ हते सुर मुनि दुखदाई।।
इहाँ सेतु बाँध्यो अरु थापेउँ सिव सुख धाम।
सीता सहित कृपानिधि संभुहिं कीन्ह प्रनाम।।

मोक्ष का अकर्तृत्व एवं अभिमान रहितता तथा पाप पुण्यादि जीव धर्मों से अतीत होना, ये सभी लक्षण भगवान श्रीराम के चरित्र में परिलक्षित होते हैं। रावण जैसे दुर्दान्त राक्षस का वध करके भी उनमें कर्तृत्व का अभिमान न आना, यक्ष गन्धर्वादि दैवीय शक्ति तथा दानव शक्तियों द्वारा भी जिस धनुष को तिलमात्र पृथ्वी से अलग नहीं किया जा सका, ऐसे धनुष को तोड़कर भी उनमें कर्तृत्व का लेशमात्र भी प्रस्फुरण न होना, ये सब पक्ष मोक्ष के ही तो समर्थक हैं। मोक्ष आरण्यकों को प्रिय है अर्थात् वन में रहने वाले ऋषि मुनि मोक्ष चाहते हैं और इधर भी सम्पूर्ण वनवासी ऋषि मुनि भगवान श्रीराम को चाहते हैं—

मुनि रघुबरहिं लाय उर लेहीं। सुफल होन हित आसिष देहीं।।

अथर्ववेद की श्रुति श्रीराम की व्याख्या करती हुई यही कहती है कि जिसमें योगिजन रमण करते हैं, वही राम हैं—

रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि।
इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते।।

योगी लोग श्रीराम में रमण करते हैं और वे ही योगीजन मोक्ष में भी रमण करते हैं। योगियों के लिये श्रीराम और मोक्ष दोनों ही परायण हैं, **'मुनिर्मोक्ष परायणः'**। योगी मोक्ष को प्राप्त करना चाहता है और वही श्रीराम को भी पाना चाहता है—

करहिं जोग जोगी जेहिं लागी। लोभ मोह ममता सब त्यागी।।

जब हम **'स्वरूपेण व्यवस्थितिः'** की चर्चा करते हैं तो सम्पूर्ण श्रीराम लीला का

पर्यालोचन करने के पश्चात् यही लगता है कि श्रीराम ने कभी अपना स्वरूप नहीं छोड़ा। इसीलिये तो वे नवमी के दिन प्रकट होते हैं क्योंकि नौ की संख्या कभी अपना स्वरूप नहीं छोड़ती। गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं–

तुलसी अपने राम को भजन करो निःशङ्क।
आदि अन्त निर्बाहिहैं जैसे नौ को अङ्क।।

श्रीराम का व्यक्तित्व हर्ष, शोकादि द्वन्दों से मुक्त रहा है और यह मोक्ष का एक विलक्षण पक्ष है। गुरुदेव द्वारा धनुर्भङ्ग की आज्ञा दिये जाने पर भी श्रीराम को हर्ष शोकादि द्वन्द्व बाधित नहीं कर पाए–

सुनि गुरु बचन चरन सिरु नावा। हरष बिषाद न कछु उर आवा।।

अयोध्याकाण्ड में राज्यलक्ष्मी-प्राप्ति का समाचार सुनकर श्रीराम को प्रसन्नता नहीं हुई और वनवास का समाचार सुनकर उन्हें कष्ट भी नहीं हुआ। इस परिस्थिति का वर्णन करते हुए गोस्वामी जी मङ्गलाचरण में ही भगवान राम के मुखारविन्द की शोभा से मङ्गल की अपेक्षा करते हैं–

प्रसन्नतां या न गताभिषेक-तस्–
तथानमम्ले वनवास दुःखतः।
मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे
सदास्तु सामञ्जुलमङ्गलप्रदा।।

अर्थात् जो अभिषेक के समाचार से प्रसन्नता को प्राप्त नहीं हुई एवं वनवास के दुस्सह विषाद से जिसमें म्लानता नहीं आई, ऐसी श्रीराघवेन्द्र सरकार के मङ्गलमय मुखारविन्द की शोभा हमारे लिये मञ्जुल मङ्गल की प्रदायिनी बनी रहे।

मोक्ष का एकरस स्वभाव श्रीराम में भी पूर्णतः परिलक्षित हो जाता है। अतः दार्शनिक दृष्टि से भी श्रीराम मोक्ष स्वरूप हैं। सांख्य ने प्रकृति से पुरुष का असङ्ग होना ही मोक्ष माना है और श्रीराम के चरित्र से प्राकृत पदार्थों से प्रभु का असङ्ग होना बारम्बार परिलक्षित कराया गया है। अयोध्याकाण्ड में भगवान श्रीराम की चर्चा करते हुए गोस्वामी पाद ने कहा कि वह अयोध्या के पदार्थों से कितना असङ्ग रहे हैं–

कीर के कागर ज्यों नृप चीर, विभूषन ऊपन अङ्गनि पाई।।
अवध तजे मगवास के रूख ज्यों पन्थ के साथी ज्यों लोग लुगाई।।

सङ्ग सुबन्धु पुनीत प्रिया मनो धर्मक्रिया धरि देह सुहाई।
राजिवलोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाईं।।

देवता लोग भी श्रीराम के स्वभाव का वर्णन करते हुए सरस्वती से कहते हैं—

बिस्मय हरष रहित रघुराऊ। तुम जानहु सब राम सुभाऊ।
जीव करम बस दुख सुख भागी। जाइय अवध देव हित लागी।।

योग में भी चित्तवृत्ति के निरोध से मोक्ष की प्राप्ति कही गई है और भगवान राम का तो सहज योगीश्वरत्व सिद्ध है। गोस्वामी जी ने भी उन्हें '**योगीन्द्रंज्ञानगम्यम्**' कहा और वाल्मीकि जी ने भी श्रीराम को महायोगी कहा—

व्यक्तमेष महायोगी परमात्मा सनातनः।

न्याय और वैशेषिक में भी पदार्थों और प्रमाणादि सोलह विषयों के ज्ञान से मोक्ष की बात कही गई है और भगवान श्रीराम में अखण्ड ज्ञान का वर्णन भी आया है—

ज्ञान अखण्ड एक सीतावर।

उत्तरमीमांसा का मोक्ष तो श्रीराम में अक्षरशः घटता ही है क्योंकि श्रीराम '**वेदान्तवेद्य**' हैं।

इस प्रकार श्रीराम रूप मोक्ष को प्राप्त करने के लिये क्रिया रूप में श्रीराम की धर्म सहचारिणी प्राणप्रिया धर्मपत्नी भगवती सीताजी ही भक्ति के रूप में कही जाती हैं। सीताजी स्वयं भक्ति हैं। वास्तव में मोक्ष की क्रिया है भक्ति, जिसे आचार्य शङ्कर ने विवेक चूड़ामणि में कहा है

'मोक्षसाधन सामग्रयां भक्तिरेव गरीयसी'

मोक्ष साधन की सामग्री में सबसे श्रेष्ठ भक्ति है और भगवान की भक्ति ही मोक्ष का सबसे बड़ा साधन है क्योंकि—

रघुपति विमुख जतन कर कोरी। कवन सकइ भवबन्धन छोरी।।

मानस बाल० २००/३

गोस्वामी पाद ने अयोध्याकाण्ड के तीन सौ इक्कीसवें दोहे में स्पष्ट कहा ही है—

सानुज सीय समेत प्रभु राजत परन कुटीर।
भगति ज्ञान वैराग्य जनु सोभित धरे सरीर।।

भगवती सीता जी साध्य भक्ति हैं। भक्ति की व्याख्या करते हुए शाण्डिल्य कहते हैं–

'सा तु परानुरक्तिरीश्वरे'

ईश्वर में परानुरक्ति ही भक्ति है। भगवान नारद कहते हैं–

सात्वस्मिन् परमप्रेमरूपा'

परमात्मा में परम प्रेम ही भक्ति है। सीताजी में ये दोनों लक्षण घटते हैं। सीताजी भगवान के प्रति अनुरक्ति ही नहीं करतीं प्रत्युत अनुरक्ति उनका स्वरूप बन गया है। परम प्रेम उनका स्वरूप है और भगवान राम इस तत्व को भली-भाँति जानते हैं। इसीलिये पुष्वाटिका से सीताजी को जाती हुई जानकर उन्होंने परम प्रेम की मसि बनाकर ही सीताजी को अपने चित्त की भित्ति में लिखा था–

प्रभु जब जात जानकी जानी। सुख सनेह सोभा गुन खानी।
परम प्रेममय मृदु मसि कीन्ही। चारु चित्त भीती लिख लीन्ही।।

भक्ति के ग्यारहों भेद भी सीता जी में घट जाते हैं। नारद जी के मत में भगवद् विषयिनी आसक्ति ही भक्ति है। नारद जी 'भक्तिसूत्र' में कहते हैं–

गुणमहात्म्यासक्ति, रूपासक्ति, स्मरणासविसक्ति, पूजासक्ति, दास्यासक्ति, वात्सल्यासक्ति, सख्याससक्ति नित्यकान्तासक्त्यात्मनिवेदनासक्ति, तन्मयतासक्ति, परमविरहासक्तिरूपा एकधाप्येकादशधा भवति।''

अर्थात् भगवान के ग्यारह वैशिष्ट्यों में आसक्ति का नाम ही भक्ति है।

१. **गुणमहात्म्यासक्ति**–सीताजी भगवान के गुण गणों को सुनने में इतनी तन्मय होती हैं कि उसे सुनकर उनका दुख अपने आप भग जाता है। भगवती सीता रावण के अत्याचार से खिन्न होकर पाँच लोगों से अग्नि की याचना कर रही होती हैं–

कह सीता विधि भा प्रतिकूला। मिलहि न पावक मिटइ न सूला।
देखियत प्रगट गगन अङ्गारा। अवनि न आवत एकहु तारा।।
पावकमय ससि स्रवत न आगी। मानहु मोहि जानि हतभागी।।
सुनहु बिनय मम बिटप असोका। सत्य नाम कर हर मम सोका।।

इस प्रकरण में क्रम से ब्रह्मा जी, तारागण, चन्द्रमा एवं अशोक से अग्नि माँगी।

इसके पहले त्रिजट से अग्नि माँग चुकी हैं—

आन काठ रचि चिता बनाई। मातु अनल पुनि देहु लगाई।।

पाँच लोगों से अग्नि माँगने से उनका तात्पर्य है कि पाँच लोगों से प्राप्त हुई पाँच अग्नियों द्वारा अपने शरीर के पञ्चभूतों को अग्निसात कर देना। जो अपने को समाप्त कर देना चाहती थीं, वही सीता भगवती, अञ्जनानन्दवर्धन प्रभु के द्वारा प्रस्तुत श्रीरामकथा का श्रवण करके इतनी प्रसन्न हुईं इतना प्रभु के गुणगणों को सुनने में उनकी आसक्ति है कि उनका सब दुःख भग गया—

रामचन्द्र गुन बरनै लागा। सुनतहिं सीता कर दुख भागा।।
लागीं सुनै श्रवन मन लाई। आदिहु ते सब कथा सुनाई।।

प्रभु के गुणगणों का सुनने में सीताजी की कितनी आसक्ति है कि वह अपने मरण दुख को भूल गईं और हनुमान जी से प्रार्थना करने लगीं—

श्रवनामृत जेहिं कथा सुहाई। कही सो प्रगट होत किन भाई।।

२. **रूपासक्ति**—प्रभु के रूप को निहारने में तो सीताजी की आसक्ति प्रसिद्ध ही है। पुष्पवाटिका में भी उस छवि को देखकर वह अघाती नहीं—

देखन मिस मृग बिहग तरु फिरहिं बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुबीर छवि बाढ़हि प्रीति न थोरि।।

खर-दूषण युद्ध के प्रसङ्ग में भी श्रीराम को समर विजयी निहारकर सीताजी अत्यन्त प्रसन्न हुईं—

जब रघुनाथ समर रिपु जीते। सुर नर मुनि सबके भय बीते।।
तब लछिमन सीता लै आए। प्रभु पद परसि हरषि उर लाए।।
सीता चितव स्याम मृदुगाता। परम प्रेम लोचन न अघाता।।

वाल्मीकीय रामायण के अनुसार तो सीताजी ने खरदूषण के वधकर्ता, समर विजयी श्रीराम को सभी महर्षियों के बीच में भी निहारकर उन्हें हृदय से लगा लिया।

तं दृष्ट्वा शत्रुहन्तारं महर्षीणां सुखावहम्।
बभूव हृष्टा वैदेही भर्तारं परिषस्वजे।।

३. **स्मरणासक्ति**—भगवती सीताजी की स्मरणासक्ति भी विलक्षण है। वे भगवान के स्मरण में बाधा पड़ने को ही बहुत बड़ी विपत्ति मानती हैं। जैसा कि हनुमान जी महाराज श्रीराम जी से कह रहे हैं कि ठीक है कि मन, वाणी, शरीर से यद्यपि सीताजी आपमें अनुरक्त हैं परन्तु उनकी यही विपत्ति है कि उनको आपका स्मरण करने में उन्हें रावण बाधा पहुँचाता है। श्रीराम का प्रश्न है कि—

बचन काय मन मम गति जाही। सपनेहु बूझि य विपति कि ताही।।

हनुमान जी कहते हैं—

कह हनुमन्त बिपति प्रभु सोई। जब तब सुमिरन भजन न होई।। स्मरण में इतनी आसक्ति कि वह कनक मृग के पीछे दौड़ते हुए प्रभु का स्मरण करती हुई ही अशोक वाटिका के दारुण दिनों को काटती हैं—

जेहि विधि कपट कुरङ्ग सँग धाय चले श्रीराम।
सोइ छवि सीता राखि उर रटत रहति हरि नाम।।

४. **पूजासक्ति**—प्रभु की पूजा में भी सीताजी को आसक्ति है। पूजा का अर्थ है सन्तोष। सीताजी किसी भी प्रकार प्रभु श्रीराम को सन्तुष्ट करना चाहती हैं। सीताजी का प्रत्येक कार्य प्रभु श्रीराम की प्रसन्नता के लिये होता है—

जेहिं बिधि कृपासिन्धु सुख मानहिं। सोइ श्रीकरि सेवा विधि जानहिं।

यहाँ तक कि प्रभु की प्रसन्नता के लिए सीताजी अग्नि में निवास करना भी स्वीकार कर लेती हैं—

तुम पावक महुँ करहु निवासा। जब लगि करउँ निसाचर नासा।।

५. **दास्यासक्ति**—

सीताजी तो प्रभु की दासी बनना ही चाहती हैं। उन्होंने विवाह के पूर्व ही भगवान से माँग लिया है—

तन मन बचन मोर पन साँचा। रघुपति पद सरोज चित राँचा।।
तव भगवान सकल उर बासी। करिहहिं मोहि रघुबर को दासी।।

सीताजी ने कभी स्वामिनी बनना नहीं चाहा।

६. **सख्यासक्ति**—भगवती सीता श्रीराम के प्रति परम विश्वस्त हैं। यहाँ संख्य

शब्द का अर्थ विश्वास है। उनको प्रभु के प्रति इतना विश्वास है कि उसी विश्वास के कारण मिथिला एवं अवध का वैभव छोड़कर वे प्रभु की नित्यसङ्गिनी बनकर वन-वन में भटकीं और उन्होंने बहुत स्पष्ट कहा—

प्राननाथ बिनु तुम्ह जग माहीं। मो कहुँ कतहुँ सुखद कोउ नाहीं।।

प्रभु के इतना बड़ा विश्वास कि सुमन्त्र के समक्ष उनके आत्मविश्वास की बड़ी मनोहर झाँकी, अद्‌भुत दृश्य एवं अद्‌भुत प्रसंग दृष्टव्य है। वे कह देती है श्रीराम के विराजमान होने पर मुझे किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं होगा—

प्राननाथ प्रिय देवर साथा। धीर धुरीन धरे धनु भाथा।।
नहिं मग श्रम भ्रम दुख मन मोरे। मोहि लगि सोच करिय जनि भोरे।।

७. **वात्सल्यासक्ति**—भगवती का वात्सल्य भी दृष्टव्य है। उनका वात्सल्य इतना विशाल है कि वह श्रीराम के प्रति भी परिलक्षित हो जाता है। कौसल्या श्रीराम के मुखारविन्द का लालन करती हैं अर्थात् चूमती हैं—

बार-बार मुख चुम्बति माता।

पर भगवती मैथिली श्रीराम के चरणारविन्द का लालन करती हैं—**'जानकी कर सरोज लालितौ'**, यही उनकी वात्सल्यासक्ति है। भगवान श्रीराम के चरणों पर उनको वात्सल्य है, ममत्व है—

पाणिस्पर्शाक्षमाभ्यां गुरुवर्थेत्यक्त राज्यो।

भगवान श्रीराम वनवास जा रहे हैं। उस वनवास के क्रम में भगवती सीता प्रभु के चरणों का मङ्गलमय संवहन करती हैं, वहाँ उनका वात्सल्य है।

८. **नित्यकान्तासक्ति**—नित्य कान्ताभाव में तो उनकी आसक्ति होनी भी चाहिये और वह उनके लिये स्वाभाविक है क्योंकि भगवान श्रीराम की सीताजी नित्यकान्ता हैं, अनन्त जन्मों की कान्ता हैं। कान्ता-भाव उनका अपना नित्यसिद्ध स्वभाव है। उनकी वह प्राणप्रिया हैं—

सुमिरत रामहि तजहिं जन तृन सम विषय विलासु।
राम प्रिया जगजननि सिय कछु न आचरज तासु।।

इसीलिये उसी कान्ताभाव का परिचय देती हुई सीताजी स्पष्ट कहती हैं—

बिनु रघुपति पद पदुम परागा। मो कहँ कतहुँ सुखद नहिं लागा।
नाथ साथ साँथरी सुहाई। मयन सयन सय सम सुखदाई।

९. **आत्मनिवेदनासक्ति**—उन्होंने प्रभु के प्रति अपना सब कुछ अर्पित कर दिया है। सर्वसमर्पण के अतिरिक्त सीताजी किसी तत्व का चिन्तन नहीं करतीं और अग्नि-परीक्षा के समय यही तो कहा—

जो मन बच क्रम मम उर माहीं। तजि रघुबीर आन गति नाहीं।।
तौ कृसानु सबकी गति जाना। मो कहुँ होहु श्रीखण्ड समाना।।

प्रभु के प्रति उनका आत्मनिवेदन, सब कुछ समर्पित है। प्रभु के सुख में वे सुखी रहती हैं और प्रभु के दुख में दुखी हो जाती हैं। श्री चित्रकूट के निवासकाल में जब श्रीराम दुखी होते हैं तो सीताजी दुखित हो जाती हैं—

जब जब राम अवधसुधि करहीं। तब तब बारि बिलोचन भरहीं
लखि सिय लखन बिकल होइ जाहीं। जिमि पुरुषहि अनुहर परछाहीं।।

१०. **तन्मयतासक्ति**—सीता जी श्रीराम में ही तन्मय रहती हैं। श्रीराम के अतिरिक्त उनका कुछ भी ध्येय और ज्ञेय नहीं है—

छिनु-छिन प्रिय विधु वदन निहारी। प्रमुदित मनहुँ चकोर कुमारी
नाह नेह नित बढ़त बिलोकी। हरषित रहति दिवस जिमि कोकी

एक भी क्षण प्रभु को निहारे बिना, सीताजी नहीं रहतीं। वे श्रीराम से अपने श्रमापनोदन का यही उपाय भी कहती हैं कि मैं आपके मुखचन्द्र को देखकर स्वस्थ एवं सुखी रह लूँगी।

मोहि मग चलत न होइ न हारी। छिन छिन चरन सरोज निहारी

११. **परम विरहासक्ति**—परम विरह में भी उनकी एक आसक्ति है। वे वचन का वियोग भी नहीं सह पातीं। श्रीराम घर रहने के लिये कहते हैं तो इतने में तो वे विकल हो जाती हैं और प्राण छोड़ने के लिये उद्यत हो जाती हैं—

अस कहि सीय बिकल भईं बारी। बचन बियोग न सकीं सँभारी।
देखि दसा रघुपति जिय जाना। हठि राखे रखिहहिं नहिं प्राना।।

कदाचित् इसी भाव का व्यङ्ग्य श्रीराम सुन्दरकाण्ड में प्रस्तुत भी करते हैं। श्रीराम हनुमानजी से कहते हैं—

कहहु तात केहि भाँति जानकी। रहति करति रच्छा स्वप्रान की।।

सीताजी अपने प्राणों की रक्षा कैसे कर रही हैं? तब हनुमान जी कहते हैं, कि उसमें सीता जी का कोई दोष नहीं है यदि कोई दोष है तो आपके नाम का है क्योंकि आपने अपने नाम को रात दिन का पहरू लगा दिया है और आपके ध्यान का किवाड़ा बन्द है और नेत्रों की ताली उनके चरणों के पास है। प्राणों के जाने के लिये कोई मार्ग ही नहीं मिलता, तो जाएँ कैसे—

नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जन्त्रित प्रान जाहिं केहिं बाट।।

सीताजी अपनी बात स्पष्ट कह रही हैं। हनुमान जी के मुख से सीताजी ने कहा। यहाँ सुन्दरकाण्ड में दो प्रकरण ऐसे अद्‌भुत हैं, जिनके अनुशीलन से मन को एक विचित्र सा आश्चर्य होने लगता है। जब श्रीराम को अपना सन्देश कहना होता है, तब वह हनुमान जी में आविष्ट होते हैं और जब सीताजी को अपना सन्देश कहना होता है तब वह भी हनुमान जी में आविष्ट हो जाती हैं। यहाँ एक रोचक प्रकरण यह भी है कि भगवती सीता, जिस प्रकार छः पंक्तियों में हनुमान जी में आविष्ट होकर अपनी व्यथा प्रस्तुत करती हैं, ठीक उसी प्रकार हनुमान जी में आविष्ट होकर श्रीराम भी सात पंक्तियों में अपनी व्यथा व्यक्त करते हैं। सीताजी ने हनुमान जी में आविष्ट होकर परम विरहासक्ति का स्पष्ट परिचय दिया, प्रश्न किया कि मनसा, वाचा, कर्मणा, आप श्री के श्री चरणानुरागिनी को आपने किस अपराध से छोड़ा? स्वयं पूर्वपक्ष करती हैं कि एक ही मेरा दोष हो सकता है कि आपके बिछुड़ते ही मेरे प्राणों ने प्रयाण नहीं किया, और इसका उत्तर भी देती हैं कि उसमें मेरा कोई दोष नहीं है, नेत्रों ने अपराध किया है। उन्होंने बाधा डाल दी और प्राणों को समझा दिया कि चिन्ता न करो, थोड़े समय के पश्चात् प्रभु के दर्शन हो जाएँगे। विरहाग्नि चरम सीमा पर पहुँची पर उस विरहाग्नि को नेत्रों ने अश्रुवर्षण से शान्त किया—

विरह अगिनि तनु तूल समीरा। स्वाँस जरहि छन माहिं सरीरा।।
नयन स्रवहिं जल निज हित लागी। जरै न पाव देह बिरहागी।।

इस प्रकार परम विरहासक्ति का इतना ज्वलन्त उदाहरण विश्व की किसी भी घटनाक्रम में प्राप्त नहीं होता। अत: नारद जी द्वारा वर्णित ग्यारहों आसक्तियाँ सीताजी के चरित्र में स्पष्ट रूप से देखी जा सकती हैं। यहाँ तो संक्षेप में उनका दिग्दर्शन मात्र कराया गया है। ऐसी परमभक्ति सीता, प्रेम-लक्षणा-भक्ति सीता, जो श्रीराम की सङ्गिनी हैं, उन्हीं की कृपा से श्रीराम प्राप्त किये जा सकते हैं। जैसे भक्ति के बिना मोक्ष नहीं मिलता, उसी प्रकार सीताजी के बिना श्रीराम नहीं मिलते। प्रश्न तो यह है कि वेद तो यह कहते हैं कि—**'ऋते ज्ञानान् न मुक्तिः'**, ज्ञान से मुक्ति होती है। इसका उत्तर यह है कि ज्ञान से मुक्ति होती तो है पर वह ज्ञान किससे प्राप्त होता है? वह ज्ञान भक्ति के बिना प्राप्त ही नहीं हो सकता। भगवत् विषयक ज्ञान, भक्ति-सापेक्ष है। भक्ति माँ है और ज्ञान वैराग्य बेटे हैं—

अहं भक्तिरिति ख्याता इमौ मे तनयौ मतौ।
ज्ञानवैराग्य नामानौ कालयोगेन जर्जरौ।।

इसलिये स्वयं गोस्वामी जी ने यह कहा कि वाक्य-ज्ञान में भी अत्यन्त निपुण व्यक्ति भी भगवद्भक्ति के बिना, संसार-सागर को पार नहीं कर सकता—

वाक्य-ज्ञान अत्यन्त निपुण भव पार न पावै कोई।
निशि गृह मध्य दीप की बाती तम निवृत्त नहिं होई।।

सिद्धान्त का स्पष्टीकरण करते हुए गोस्वामी जी ने कहा—

रघुपति भगति वारि छालित चित बिनु प्रयास ही सूझै।
तुलसीदास यह चिदविलास जग बूझत बूझत बूझै।।

अर्थात् भक्ति के बिना मोक्ष प्राप्त करना सम्भव नहीं है **'विवेक चूड़ामणि'** में शङ्कराचार्य भी कहते हैं—

'मोक्ष साधन सामग्रयां भक्तिरेव गरीयसी।'

भागवत में कपिलदेव भगवान देवहूति से कहते हैं—

अनिमित्ता भागवती भक्तिः सिद्धेर्गरीयसी।
जरत्याशु या कोशं निगीर्णमनलो यथा।

श्रीमद्भा ३/२५/३३

नि:स्वार्थ भगवत्भक्ति, जीव के पाँचों कोशों को शीघ्रातिशीघ्र जला डालती है और वह भक्ति, भगवच्छरणागति से प्राप्त होती है और यहाँ यह कहा जा सकता है कि भगवती सीता जी के दो रुप हैं—

१. भक्तिरूपिणी सीता, और

२. शरणागतिरूपिणी सीता

भगवत् प्राप्ति से पहले भक्तिरूपिणी सीता और भगवत्प्राप्ति के अनन्तर लीला रङ्गमञ्च पर आकर शरणागति प्रपत्तिरूपिणी सीता। सीताजी का स्वभाव शुद्ध शरणागति रूप है। प्रपत्ति शरणागति के बिना जीव, भगवान को नहीं प्राप्त कर सकता—

बहूनां जन्मनामन्ति ज्ञानवान् मां प्रपद्यते

श्रुति कहती है—**मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये।**

जब जीव को मुमुक्षा होती है, तब वह भगवान की शरण में आता है। भगवच्छशरणागत ही मोक्ष को कर सकता है अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करने के लिये शरणागति चाहिये, जो भक्ति और भक्त से अभिन्न ही है, उसी प्रकार भगवान को प्राप्त करने के लिये सीता चाहिये। सीताजी की कृपा के बिना जीव भगवान को नहीं प्राप्त कर सकता, उसी प्रकार भक्ति और शरणागति के बिना जीव मोक्ष को नहीं प्राप्त कर सकता। यहाँ यह बात समझ लेने की है कि भक्ति और शरणागति, ये दोनों ही सम्पुट की भूमिका निभाती हैं। भक्ति, सम्पुट की पूर्वपीठिका है और शरणागति, सम्पुट की उत्तरपीठिका है। जब तक सीताजी को भगवान राम के दर्शन हुए हैं, तब तक उनका व्यक्तित्व भक्ति रूप में है अर्थात् यों कह लो कि भक्ति सीता जी का स्वरूप और शरणागति सीताजी का रूप है। भक्ति, सीता जी का भाव है और शरणागति, सीताजी का स्वभाव है। जिस प्रकार भक्ति और शरणागति के द्वारा मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है, उसी प्रकार भगवती सीताजी भाव और स्वभाव के द्वारा भगवान श्रीराम को प्राप्त किया जा सकता है। वन्दना के प्रकरण में भगवती सीताजी के सम्बन्ध में गोस्वामी जी ने स्पष्ट कहा—

जनकसुता जगजननि जानकी। अतिसय प्रिय करुनानिधान की।।
ताके जुगपद कमल मनावउँ। जासु कृपा निर्मल मति पावउँ।।

सीताजी की कृपा से ही निर्मल मिलती है और तब उस निर्मल निष्कलङ्क बुद्धि के द्वारा भगवान के दर्शन होते हैं—

दृश्यते त्वग्रया बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः।

सूक्ष्म बुद्धि के द्वारा ही भगवान का साक्षात्कार किया जा सकता है। और वह बिना सीताजी की कृपा के प्राप्त नहीं होता। इसलिये वन्दना के प्रकरण में गोस्वामी जी ने कहा कि सीताजी 'सर्वश्रेयस्करी' हैं। वे जीव का प्रेय नहीं करतीं, जीव का श्रेय करती हैं और जीव का श्रेय मोक्ष है न कि भोग। जीव का जीवत्व तत्व जिज्ञासा में कृतकार्य होता है—

जीवस्य तत्व जिज्ञासा नार्थो यस्वेः कर्मभिः।

और तत्वजिज्ञासा मोक्ष के बिना कृतकार्य नहीं होती।

इस प्रकार समग्र सीता चरित्र को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि सीताजी की भूमिका भक्ति की है। भक्ति अपने स्वरूप में तो भक्ति है और जब वह लीला-क्षेत्र में आती है तो वह शरणागति का रूप ले लेती है। भक्ति का अन्तरङ्ग है प्रेम और भक्ति का बहिरङ्ग है शरणागति। प्रेम और शरणागति के द्वारा ही भगवान की प्राप्ति की जा सकती है—

अग जगमय सब रहित बिरागी। प्रेम तें प्रभु प्रगटहिं जिमि आगी।।

और

सरन गए प्रभु ताहु न त्यागा। बिस्व द्रोह कृत अघ जेहिं लागा।।

आज हम इतना ही कहकर इस वक्तव्य को विराम देना चाहेंगे कि कोई भी व्यक्ति भगवत् प्राप्ति के कितने भी साधन करे परन्तु जब तक सीताजी की कृपा उसे नहीं प्राप्त होगी, तब तक उसे भगवान श्रीराम मिल ही नहीं सकते। इसीलिये शास्त्रों ने सीताजी को घटक स्वीकारा है। सीताजी हमारी आद्या आचार्या हैं और आद्य आचार्या भक्ति ही हो सकती है। यहाँ एक बात और भी विचारणीय है और जो शास्त्रीय है। प्रश्न उठ सकता है कि भक्ति का भगवान के साथ सम्बन्ध क्या माना जाएगा? इसका उत्तर यह है कि भक्ति का भगवान के साथ स्वरूप सम्बन्ध स्वीकारा गया है। इसी स्वरूप सम्बन्ध की सरलीकृत व्याख्या करते हुए भक्तमाल के रचयिता नाभा जी ने कह दिया—

भक्त, भक्ति, भगवन्त, गुरु चतुर नाम वपु एक।
इनके पद वन्दन किये नासहिं विघ्न अनेक।।

स्वरूप-सम्बन्ध का तात्पर्य यह है कि भक्ति ही भगवान हैं और भगवान ही भक्ति हैं। प्रेम ही परमेश्वर हैं और परमेश्वर ही प्रेम हैं, इसी प्रकार सीताजी ही राम हैं और रामजी ही सीता हैं। इसीलिये जब ग्राम वधूटियों ने सीताजी यह कहा कि

कोटि मनोज लजावनिहारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे।।

तब सीताजी को सङ्कोच लगने लगा—

सुनि सनेहमय मञ्जुल बानी। सकुचि सीय मन महुँ मुसकानी।। सङ्कोच का यही तात्पर्य था कि मैं भक्ति हूँ और श्रीराम जी भगवान हैं और भक्ति और भगवान के बीच तो कोई दूसरा सम्बन्ध हो ही नहीं सकता। उन दोनों के बीच स्वरूप सम्बन्ध होता है। यदि स्वरूप सम्बन्ध में मैं ही यह कह दूँ कि मैं ही राघव हूँ और राघव ही मैं हूँ तो सखियों को यह रहस्य समझ में आएगा नहीं और उन्हें जब समझ में आएगा नहीं तो उनके मन में परिहास का उदय होगा। अब, इन्हें समझाया कैसे जाए? इसलिये **'सकुचि सीय मन महुँ मुसकानी।'** श्रुति भी यही कहती है—

रामस्सीता जानकी रामचन्द्रो
नित्यानन्दं ये च पश्यन्ति धीराः।

सीता नाम की भगवत् भक्ति, जिसने भगवान की उस भूमिका को निभाया, जिसको कोई निभा नहीं सकेगा। सीताजी राम जी के बाईं ओर रहती हैं। (राम बाम दिसि जानकी) बाईं ओर रहकर भी प्रतिकूल न होना, यह केवल सीताजी का धर्म है। लक्ष्मी भी डरती हैं और वह सदा नारायण के दाहिनी ओर रहती हैं।

दक्ष भाग अनुराग सहित इन्दिरा ललित अधिकाई

विनय पत्रिका-६३

हमारी जनकनन्दिनी तो प्रभु के बाईं ओर रहकर ये कहती हैं, कि हे जीव मैं प्रभु के बाईं ओर इसलिये रह रही हूँ कि मैं तो प्रतिकूलता को सँभाल लूँगी और यदि मैं बाईं ओर नहीं रहूँगी तो तुम इनके (प्रभु के) बाईं ओर आकर प्रतिकूल हो जाओगे। तुम प्रतिकूल न जा सको, बाईं ओर न जा सको, इसलिये मैं बाईं ओर रह रही हूँ। ऐसी भगवती भक्तिरूपिणी सीताजी—

लसत मञ्जु मुनिमण्डली मध्य सीय रघुचन्द।
ज्ञान सभा जनु तनु धरे भगति सच्चिदानन्द।।

हमारे यहाँ दो प्रकार से भक्ति का विवेचन किया जाता है, एक तो साधना भक्ति और दूसरी साध्य भक्ति। साध्य भक्ति ही प्रेमाभक्ति है। 'सात्वस्मिन् परमः प्रेमरूपा' सा तु परानुरक्तिरीश्वरे।' भगवान में परानुरक्ति अथवा भगवान में परम-प्रेम, यही भक्ति है, और यही सीताजी हैं। वह भक्ति से कौसल्या कहा गया, वह साधना भक्ति है।

पन्थ जात सोहहिं मति धीरा। ज्ञान भगति जनु धरे सरीरा।

बाल १४३

शङ्कराचार्य जी ने कहा कि--

स्वस्वरूपाभ्यनुध्यानं भक्तिरित्यभिधीयते।'

स्वस्वरूप का अभ्यनुध्यान भक्ति है। ठीक कहा। पाणिनी ने 'स्व' शब्द के चार अर्थ बताए—

१. स्व का अर्थ-**आत्मा** भी है।

२. स्व का अर्थ-**आत्मीय** भी है

३. स्व का अर्थ-**धन** भी है, और

४. स्व का अर्थ **ज्ञाति** भी है।

यदि किसी को आत्मा मानने में कोई आपत्ति है तो कोई बात नहीं। स्वस्वरूप, अपने आत्मीय परमात्मा के, स्वरूप का अभ्यनुध्यान ही भक्ति है। यह भी बिल्कुल ठीक है। अथवा धन अर्थ कर लो तो स्व अर्थात् अपने धन रूप भगवान आनन्दकन्द श्री राघवेन्द्र के श्रीमद् चरणारविन्द का चिन्तन करना भक्ति है।

रामानुजाचार्य ने कहा—

'प्रीतिपूर्वमनुध्यानं भक्तिरित्यभिधीयते।'

अब रामानन्दाचार्य जी से पूछा गया कि आपके मत में भक्ति क्या है?

यहाँ, आद्य रामानन्दाचार्य जी की बात अभी नहीं कह रहा हूँ, वर्तमान रामानन्दाचार्य की व्याख्या सुना रहा हूँ—

आसक्तिः परमा भक्तिः सा च सीता पतौ मता।

इस प्रकार भगवान आनन्दकन्द के चरणों में परम आसक्ति ही भक्ति है।

कामिहि नारि पियारि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरन्तर प्रिय लागहु मोहि राम।।

चक्रवर्ती जी आज चारों बेटों अर्थात् दैन्य पुरस्सर भगवद् कैंङ्कर्य रूप 'अर्थ' के रूप में श्री शत्रुघ्न जी को और 'सेवा क्रिया' के रूप में श्री श्रुति-कीर्ति जी भगवत्भजन रूप धर्मात्मक लक्ष्मण को और श्रद्धारूपिणी उर्मिला को, भगवत्प्राप्ति इच्छा रूप 'काम' श्री भरत और व्याकुलतारुपिणी श्री माण्डवी को और मोक्ष रूप राम तथा भक्तिरूपिणी सीता को प्राप्त करके मुदित हुए। जिस प्रकार चक्रवर्ती जी प्रसन्न हुए उसी प्रकार हम इसी भगवत्कृपा को पाकर धन्य-धन्य हो जाएँ, यही आज के व्याख्यान की स्थिति है, यही मेरी शुभकामना है, यही आज का प्रसाद है, यही शुभ सम्वाद है और यही मेरा शुभाशीर्वाद है।

।।सीताराम जय सीताराम।सीताराम जय सीताराम।।

नवम वाक् पुष्पाञ्जलि सम्पन्न

।।श्री राघव: शन्तनोतु।।

धर्मचक्रवर्ती श्रीतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य
स्वामी श्रीरामभद्राचार्यजी महाराज द्वारा प्रणीत

भगवान् श्रीसीताराम जी की

नीराजना

वन्दे श्रीरामं प्रभु वन्दे श्रीरामम्।

मुनिजनमनोभिरामं नवमेघश्यामम्।। जय राम जय श्रीराम ।।

पूर्णब्रह्मनिष्कामं पूरितजनकामम् प्रभु पूरितजनकामम्।

निजजनशोकविरामं व्रीडितशतकामम्।। जय राम जय श्रीराम ।।

तरुणतमालमनोहर रघुवर दनुजारे प्रभु रघुवरदनुजारे।

तूणशरासनशरधर दीनं पाहि हरे।। जय राम जय श्रीराम ।।

समरनिहतदशकन्धर सेवकभयहारिन् प्रभु सेवकभयहारिन्।

भवपाथोनिधिमन्दर दण्डकवनचारिन्।। जय राम जय श्रीराम ।।

विधुमुखजलजविलोचन पीताम्बरधारिन् प्रभु पीताम्बरधारिन्।

कोसलपुरजनरंजन हनुमत्सुखकारिन्।। जय राम जय श्रीराम ।।

भरतचकोरनिशेषं रिपुसूदनबन्धुम् प्रभु रिपुसूदनबन्धुम्।

शरणागतसुरधेनुं नौमि कृपासिन्धुम्।। जय राम जय श्रीराम ।।

जय जय भुवनविमोहन जय करुणासिन्धो प्रभु जय करुणासिन्धो।

जय सीतावर सुन्दर जय लक्ष्मणबन्धो।। जय राम जय श्रीराम ।।

दर्शय निजमुखकमलं भवसागरसेतो प्रभु भवसागरसेतो।

हर 'गिरिधर' भवभारम् दिनकरकुलकेतो।। जय राम जय श्रीराम ।।

